अबूझमाड़

इतिहास व संस्कृति

शिव कुमार पाण्डेय

जिला प्रशासन नारायणपुर छत्तीसगढ़

अबूझमाड़

इतिहास व संस्कृति

शिव कुमार पाण्डेय

प्रकाशक :-
जिला प्रशासन नारायणपुर (बस्तर-छत्तीसगढ़)

अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति

लेखक : शिवकुमार पाण्डेय

© शिवकुमार पाण्डेय
पूजा-गृह, मुख्य सड़क,
नारायणपूर (बस्तर-छत्तीसगढ़) 494661,
मोबाईल : 9425260997

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
जिला प्रशासन, नारायणपुर
नारायणपुर (बस्तर-छत्तीसगढ़)
पिन कोड : 494661

मुद्रक एवं पुस्तक सजावट :
योगेश आर्ट, नागपूर

नि:शुल्क वितरण हेतु ।

इस पुस्तक में व्यक्त विचार पुरी तरह लेखक के अपने हैं। विवाद की स्थिति में प्रकाशक अथवा मुद्रक उत्तरदायी नहीं होगा । लेखक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त, परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फिल्म बनाना कानूनी अपराध है ।

स्मृति-शेष दादा स्व. रामशंकर पाण्डेय, बड़े पिता स्व. फरसराम पाण्डेय,
पिता स्व. सत्यनारायण पाण्डेय, चाचा स्व. माता प्रसाद पाण्डेय,
बड़े भाई स्व. अश्वनी कुमार पाण्डेय, बहन स्व. कु. हेमलता पाण्डेय
एवं माता स्व. यशोदा देवी पाण्डेय को सादर समर्पित....

केदार कश्यप

मंत्री
छत्तीसगढ़ शासन
आदिम जाति तथा अनुसूचित जाति, पिछड़ा वर्ग
अल्पसंख्यक कल्याण एवं स्कूल शिक्षा विभाग

अर्द्ध शासकीय पत्र क्र. MP/17/499

निवास: सी-3, एमेरेल्ड कॉलोनी, राजातालाब,
रायपुर (छग.)
दूरभाष (निवास) 0771-2331032, 2331033 (F)
मंत्रालय 0771-2510906, 2221106

रायपुर, दिनांक 17-07-2017

शुभकामनाएँ...

"अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति" के प्रकाशन की सूचना से आत्मीय प्रसन्नता हो रही है।

बस्तर की आदिवासी संस्कृति विश्व प्रसिद्ध है। बस्तर क्षेत्र का लोकजीवन एवं जीवन शैली निराली है। विशेषकर अबूझमाड़ क्षेत्र की पृष्ठभूमि, जनजातीय जीवन, इतिहास, एवं संस्कृति अद्यपर्यन्त शोधकर्त्ताओं, अध्येयताओं के अध्ययन का क्षेत्र है।

मुझे प्रसन्नता है, कि श्री पाण्डेयजी की परिष्कृत एवं शोधपरक कृति "अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति" शोधकर्त्ताओं, इतिहासकारों, शिक्षाविदों एवं भावी शिक्षार्थियों को मानक एवं प्रमाणिक ज्ञान उपलब्ध कराने में समर्थ संदर्भ ग्रंथ होगी।

मेरी कामना है, कि पुस्तक बस्तर जनजातीय जीवन विशेषकर अबूझमाड़ के इतिहास एवं संस्कृति का प्रमाणिक दस्तावेज बने।

सुअवसर पर पुस्तक के लेखक श्री शिवकुमार पाण्डेय को अशेष बधाई एवं सफल प्रकाशन की अग्रिम मंगलकामनाएँ...

(केदार कश्यप)

प्रति,

श्री शिवकुमार पाण्डेय
नारायणपुर

5

टोपेश्वर वर्मा
(I.A.S.)
कलेक्टर एवं जिलादण्डाधिकारी

कार्यालय कलेक्टर, जिला नारायणपुर (छ.ग.)
दूरभाष क्रमांक : 07781-252216 (कार्यालय)
: 07781-252212 (निवास)
फेक्स क्रमांक : 07781-252215
ई–मेल : dmnpur@yahoo.com
narayanpur.cg@nic.in
अर्द्ध शा.पत्र क्रमांक : 239/स्वेनी/2017
नारायणपुर, दिनांक : 27.07.2017

–: संदेश :–

अत्यंत हर्ष का विषय है कि, 'अबूझमाड़ इतिहास व संस्कृति' पुस्तक का प्रकाशन जिला प्रशासन नारायणपुर छत्तीसगढ़ के माध्यम से किया जा रहा है । प्रकाशित पुस्तक के माध्यम से इस वनो से आच्छादित सुगम्य क्षेत्र की वादियों एवं जनजातियों के विषय में जानकारी उपलब्ध होगी ।

जिला नारायणपुर का सम्पूर्ण भू–भाग जो अबूझमाड़ कहलाता है, इस पुस्तक की विषय–वस्तु है। पुरातत्व महत्व के ऐतिहासिक स्थल अवशेष, जनश्रुति आदि जहां इतिहास को समेटे हैं, वहीं जनजाति, कृषि एवं वनोपज हाट–बाजार, तीज–त्यौहार, अन्तराष्ट्रीय ख्याति एवं शिल्प इस पुस्तक को महत्वपूर्ण बनाती है ।

पुस्तक का प्रकाशन जिला प्रशासन द्वारा अंचल में निःशुल्क उपलब्ध कराने के उद्देश्य से किया जा रहा है। इससे नवागन्तुक पदाधिकारियों को, इस क्षेत्र को समझने और कार्य करने में आसानी होगी। अंत में सुधी पाठक स्वयं तय करेंगे की अबूझ क्षेत्र को बुझने में यह पुस्तक कितनी सहायक होगी ।

शुभकामना सहित ।

भवदीय

27.7.17
(टोपेश्वर वर्मा)

टामन सिंह सोनवानी
(I.A.S.)
तत्कालीन कलेक्टर, नारायणपुर

–: संदेश :–

प्रकाशक की कलम से

वनों से आच्छादित विलक्षण संस्कृति से ओत–प्रोत, इस विहंगम क्षेत्र अबुझमाड़ को आज तक अजायबघर बना कर रखा गया था । जिसे कभी बूझा नही जा सका, अबूझमाड़ को इस तरह प्रचारित किया गया । किसी ने भी इस अंचल को जानने का प्रयास नही किया, न ही क्षेत्र के विषय में कोई प्रमाणित जानकारी ही उपलब्ध है। यह पुस्तक "अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति" पहली कृति है जो क्षेत्र के विषय में प्रमाणित जानकारी प्रस्तुत करती है। यही कारण है कि जिला प्रशासन नारायणपुर द्वारा इसे प्रकाशित कर सर्व साधारण के लिये निःशुल्क उपलब्ध कराने का निर्णय लिया है ।

इस अंचल में "अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति" एक समग्र एवं ऐतिहासिक दस्तावेज है, जिसमें इस वनांचल का लुप्त प्रायः पुरातात्विक अवशेष, भूले–बिसरे ऐतिहासिक स्थल, पीढ़ी–दर–पीढ़ी कहे सुने जाने वाली जनश्रुति के साथ अबूझमाड़ को इतिहास के पन्नों में खोजा गया है। पुस्तक में, क्षेत्र की कला–संस्कृति, जनजातियों का शोध परक अध्ययन, अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाने वाली संस्थाओं के अध्ययन के साथ विचारोत्तेजक लेख का समावेश किया गया है, जो पुस्तक को महत्वपूर्ण बनाती है।

'अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति' इस अंचल को जानने में सहायक होगी । शोधार्थी, नृ–शास्त्रीयों, पर्यटकों का मार्ग दर्शन करेगी, क्षेत्र के विकास के लिये नीतिगत निर्णय लेने एवं कार्य करने का अवसर प्रदान करेगी । आशा है यह पुस्तक जितना कहा गया है, उनसे अधिक महत्वपूर्ण साबित होगी।

शुभकामना सहित ।

भ व दी य

(टामन सिंह सोनवानी)
तत्कालीन कलेक्टर
जिला नारायणपुर

पुरोवाक्

बस्तर अंचल के अबूझे क्षेत्र यानी 'अबुझमाड़' को बूझने की कोशिश पहले भी की गयी किन्तु उसमें कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई कमी रह गयी थी। साफ-साफ शब्दों में कहा जाये तो कहना होगा कि बूझने की ईमानदार कोशिश ही नही की गयी। किन्तु अब, जब नारायणपुर (बस्तर-छत्तीसगढ़) के युवा साहित्यकार भाई शिवकुमार पाण्डेय ने उस प्रयास में अपनी भी सहभागिता इस पुस्तक 'अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति' के माध्यम से दर्ज करायी है तो विश्वास करना पड़ता है कि उस कमी को यह पुस्तक काफी हद तक दूर करती है।

आम तौर पर बस्तर को इसकी आदिवासी संस्कृति के नाम से, विशेषत: यहॉ की मुरिया (गोंड) जनजाति के बीच प्रचलित 'घोटुल' संस्था के कारण, अबूझमाड़ के रहवासियों की सहजता-सरलता और फिर बाद में यहॉ की 'घड़वा कला' के कारण जाना जाता है। मुझे यह कहते हुए अत्यंत दु:ख होता है कि अधिसंख्य तथाकथित लेखक-पत्रकार-छायाकार आदि इस क्षेत्र में यदि आते रहे हैं तो किसी सद्भावना के साथ नहीं आपितु 'अबूझमाड़' के सीधे-सादे, सहज-सरल व्यक्तित्व के धनी आदिम समाज के लोगों की उघड़ी देह देखने और उनके फोटो खींचने की ललक के साथ। लिखा भी तो ऊलजलूल। बेसिर-पैर की बातें। फाटो भी उसी तरह के छाप दिये। नामोल्लेख के बिना कहना चाहुँगा कि जिस-जिस से बन सका, उसने अपने तईं इस अंचल के आदिवासियों की छवि बिगाड़ने में कोई कोर-कसर नहीं रख छोड़ी। न तो किसी की कलम ने और न ही किसी के कैमरे ने इस अंचल के इतिहास अथवा संस्कृति पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। बहरहाल, हम बस्तरवासियों को भाई शिवकुमार पाण्डेय का आभारी होना चाहिये कि उन्होंने इस पुस्तक में इस अंचल के इतिहास एवं संस्कृति पर पुरे मनोयोग और परिश्रम पूर्वक एकत्र जानकारी दी है। प्रस्तुत जानकारी के सूत्र रहे है इस अंचल के वही लोग जो यहॉ के माटी-पुत्र हैं और यहॉ की आदिम संस्कृति में रचे-बसे हैं। मुझे इस संदर्भ में सुप्रसिद्ध साहित्यकार कीर्तिशेष लाला जगदलपुरी के वे शब्द याद आते हैं जो उन्होने इसी अंचल के किसी एक साहित्यकार के विषय में उनकी दो पुस्ताकों की भूमिका में कहे थे, "अंचल में जन्म ले कर बुढ़ा जाने से ही अंचल की जानकारीयॉ अपने-आप नही मिल जाती। व्यक्ति में जानकारियॉ जुटाने की जिज्ञासा होनी चाहिए। जिज्ञासु चाहे बाहर का ही क्यों न हो।..... बस्तर के जन्म-जात और जिज्ञासु जानकार हैं । मेरा संकेत साफ है, भाई शिवकुमार पाण्डेय भी उसी तरह बस्तर के जन्म-जात और जिज्ञासु जानकार है।

मेरी दृष्टी में यह पुस्तक अपने-आप में इसीलिये महत्त्वपूर्ण है क्योंकि अबुझमाड़ पर इतनी विश्वसनीय पुस्तक कम-से-कम मेरे देखने-पढ़ने-सुनने में तो नहीं ही आयी है। यह इसीलिये भी महत्त्वपूर्ण है कि आगे इस अंचल के इतिहास और संस्कृति पर कलम चलाने वालों अथवा शोधार्थियों के लिये यह पुस्तक निश्चित तौर पर मार्गदर्शक भी सिद्ध होगी।

नारायणपुर जिला प्रशासन, विशेषत: इसके मुखिया यानी जिला कलेक्टर माननीय श्री टामनसिंह सोनवानी जी भी इस पुस्तक के प्रकाशन के लिये बधाई के पात्र हैं।

उनका अभिनन्दन

..... हरिहर वैष्णव

मेरा निवेदन

अपना पहला प्रयास अबूझमाड़ : इतिहास व संस्कृति आपके हाथ में सौंपतें हुये मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। इस बात से भी ज्यादा संतुष्टि मुझे इस बात की है कि मैं वाचिक परम्परा में समाहित इतिहास और संस्कृति को शब्दों में ढाल कर प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरा सौभाग्य है कि यह माटी मेरी भी जन्म भूमि है और यह इस माटी का कर्ज उतारने का किंचित प्रयास मात्र यह पुस्तक है। साधारण ब्राह्मण परिवार में जन्म लेने और छः वर्ष की उम्र में पिता स्व. सत्य नारायण पाण्डेय का सिर से साया छिन जाने के बाद माता श्रीमती यशोदा देवी पाण्डेय के लोक जीवन की गहरी छाप ने मेरे जीवन को इस दिशा में लाने प्रेरित किया और बहुत लम्बे समय के बाद यह सम्भावना बनी। पुस्तक लिखने में सहयोग देने वाले सभी के मन में एक बात थी कि ऐसी एक किताब आनी चाहिये और सभी ने मुझे समय की परवाह नहीं करते हुये आत्मीय सहयोग दिया।

अबूझमाड़ के संदर्भ में एक ऐसी जानकारी की आवश्यकता सदैव महसूस की जा रही थी, जिसमें यहाँ के विषय में संक्षिप्त जानकारी होने के साथ जनजातियों के विषय में भी जानकारी हो और इस क्षेत्र के बिखरे अवशेष, ऐतिहासिक स्थल, जनश्रुति का समावेश हो, ताकि यहाँ आने वाले पूर्वाग्रह से ग्रसित सैलानी और तथाकथित लेखक भ्रान्तियाँ न परोसे। ऐसी स्वस्थ्य जानकारी देने वाली पुस्तक लिखने की प्रेरणा भाई स्व. बलदेव प्रसाद पात्र (अन्तागढ़) और भाई श्री यशवंत गौतम जी (कोंडागाँव) से मिली, भाई रूद्र नारायण पानीग्राही जी, विक्रम सोनी जी (जगदलपुर) घनश्याम नाग (बहीगाँव) लगातार प्रेरित करते रहे और साहित्य अकादमी से भाषा सम्मान और छ.ग. शासन से पं. सुन्दरलाल शर्मा साहित्य सम्मान से सम्मानित मेरे बड़े भाई श्री हरिहर वैष्णव जी जिनके चरणों मे बैठकर साहित्य का ककहरा सीख रहा हूँ के द्वारा इसे पुस्तक रूप दिया गया। यह कार्य गुरू कृपा बिना सम्भव नहीं था, तब मेरे दीक्षित गुरू

स्व. पं. कृष्णदत्त पाठक, श्री राजेन्द्र देशमुख, लाल बच्चन जी ने मुझे राह दिखलायी।

इस अंचल का लुप्तप्राय: इतिहास खोजना बहुत ही दूष्कर कार्य था किन्तु इस कार्य को नारायणपुर के इतिहास के जानकार युगल प्रसाद देवांगन, हीरासिंह देहारी, बालसाय वड्डे, सत्तेर सिंह नेताम, लक्ष्मण दुग्गा, पण्डी राम वड्डे, रजनूराम नेताम, रैनूराम कुमेटी, देवनाथ उसेन्डी , बलीराम कचलाम, रूपसाय सलाम, कांडेराम मंडावी, सोमारूराम दुग्गा, मोडाराम कौडो, छोटेडोंगर के सुखराम उसेन्डी, तिलक बेलसरिया, हेमचन्द मॉझी, कोहकामेटा के लखमूराम कवाची, मगंडुराम नुरेटी आदि ने आसान बना दिया। कृषि उपज, हाट-बाजार, मेला-मंडई से सम्बन्धित जानकारी वरिष्ठ व्यवसायी विनोदरॉय दीवान, आनन्दराज अग्रवाल, राजेश दीवान, प्रमेश दीवान, त्रिलोक चन्द सुराना, पवन श्री श्रीमाल ने देकर इस कार्य को और अधिक सुगम बना दिया।

लेखन कार्य में मेरे भाई विपिन शर्मा (शा. लोक अभियोजक), बृजमोहन देवांगन, डा. धीरेन्द्र मिश्रा, अजय देशमुख, ने निरन्तर सहयोग दिया, यहाँ "निचोड" पत्रिका के प्रबन्ध सम्पादक बड़े भाई एस. करीमुद्दीन का उल्लेख करना आवश्यक हो जाता है, जिन्होंने मेरे लेखों को लगातार अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर मुझे साहित्य संबल प्रदान किया। नारायणपुर के पत्रकार बन्धु भाई इमरान खान (नई दुनिया) विशाल चौहान (पत्रिका) हेमन्त संचेती (हरि भूमि) का भी अमूल्य सहयोग मिला।

इस पुस्तक की साज-सज्जा इस अंचल के मूर्धन्य लोक साहित्यकार ठाकुर रामसिंह जी के चिरंजीव भाई राकेश आर. सिह का है, जिन्होंने आमुख पृष्ठ के साथ सभी प्रमाणिक चित्रों का संकलन कर इसे और भी सुन्दर बनाया।

परिवार के सहयोग के बिना यह मेरा प्रयास निरर्थक हो जाता, मेरी पुत्री कु. मोनिका पाण्डेय, पुत्र अनुराग, आयुश, आदर्श ने मेरा कम्प्युटर

सीखाने से लेकर समायोजन करने तक में सहयोग किया, मेरी धर्म पत्नी श्रीमती गायत्री पाण्डेय मेरा हर कार्य करने को सदा तत्पर रही, मेरी ३ साल की नातिन पीहू की मुस्कान सदैव मानसिक उर्जा एवं सुकून देती रही।

अन्त में जिला प्रशासन नारायणपुर के मुखिया जिलाधीश श्री मान टामन सिंह जी सोनवानी ने मेरे प्रथम निवेदन पर इसे प्रकाशित करने का आश्वासन दिया, मैं हृदय से आभारी हूँ, अशोक चौबे जिला पंचायत सी.ई.ओ., के. एस. मसराम ए.सी. अशोक पटेल डी.ई.ओ. तथा भाई कमल बघेल पी.आर.ओ. का भी हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके विमल प्रयास से इस पुस्तक का प्रकाशन और लोकार्पण सम्भव हुआ। मैं उन सबका जिन्होंने इस पुस्तक प्रकाशन के लिये प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान किया, उन सब का आभारी हूँ।

शिवकुमार पाण्डेय

मेन रोड नारायणपुर (छ.ग.)

अनुसूचि

		पृष्ठ क्र.
१	अबूझमाड़ बनाम जिला नारायणपुर	१३
२	भौगोलिक स्थिति और जलवायु	१९
३	संक्षिप्त इतिहास	२२
४	जाति-जनजाति और भाषा-बोली	३०
५	ऐतिहासिक स्थल	४२
	अ पलंग गुडरी	४२
	ब गढ़िया गुडरी	४७
	स राव डोंगरी	५०
	द आमदई डोंगरी	५६
	ड कच्च मेटा (तुलाड़)	६२
६	इतिहास के पन्नों से.....	६७
७	अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति	८५
	अ अबूझमाड़	८५
	ब घोटुल	९१
	स मावली मंडई	१००
	द रामकृष्ण मिशन आश्रम	१०६
८	कृषि उपज एवं वनोपज	१११
९	हाट-बाजार	११६
१०	मेला-मंडई	१२०
११	तीज-त्यौहार	१२७

१२	विभूतियाँ :		१३३
	अ	लोक साहित्यकार : राम सिंह ठाकुर	१३३
	ब	समाज सेवी : बापू राम शंकर जोशी	१३८
	स	वैद्यराज हेमचन्द मांझी	१४३
	द	विदेशी फिल्म का देशी हीरो :चेन्दरू	१४७
१३	लोक शिल्पी :		१५२
	अ	देवनाथ पाण्डे : टेरा कोटा	१५२
	ब	बेलगुर मंडावी : भित्ति आर्ट	१५६
	स	पंडी राम मंडावी : काष्ठ शिल्प	१५९
१४	अबूझमाड़:माओवाद		१६२
१५	आदिवासी समाज की चुनौतियाँ		१६८
१६	विकास गढ़ता अबुझमाड़		१७४

13

अबूझमाड़ बनाम जिला नारायणपुर

जिला नारायणपुर बस्तर संभाग का पश्चिमी भाग है, जिसे अबूझमाड़ के नाम से जाना जाता है। यह जिला पहले अविभाजित बस्तर जिले की एक तहसील हुआ करता था, जो दिनांक ०१/०५/२००७ को बस्तर जिले से अलग होकर एक नये जिले के रूप में अस्तित्व में आया। पर्वत श्रृंखलाओं से घिरा अबूझमाड़ सघन वन क्षेत्र है, इस कारण यहाँ जनसंख्या का घनत्व दूसरे जिलों की अपेक्षा बहुत ही कम है। सम्पूर्ण जिले का क्षेत्रफल ५०५२ वर्ग किलो मीटर है। यह दो विकासखण्डों में विभक्त है, जिसमें नारायणपुर विकासखण्ड का क्षेत्रफल मात्र ९७७ वर्ग कि.मी. है तथा अबूझमाड़ का क्षेत्रफल है ४०७५ वर्ग कि.मी.। जिला मुख्यालय नारायणपुर होने से प्रशासकीय तौर पर इसे नारायणपुर के नाम से जानते हैं। क्षेत्रीयता की दृष्टि से इस जिले को अबूझमाड़ कहा गया है। यहाँ मुख्य रूप से मुरिया, माड़िया, हल्बा जन-जातियाँ निवास करती हैं। ऐसे कुछ गाँव आबाद हैं जिनमें दण्डामी माड़िया इंद्रावती नदी के उस पार से आकर बस गये हैं। दण्डामी माड़िया और हल्बा जनजाति का मुरिया और अबूझमाड़िया जनजातियों से किसी प्रकार का कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं है, परन्तु मुरिया और अबूझमाड़िया जन-जातियों का समाजिक सरोकार है। इन दोनों जन-जातियों की आपस में लोक संस्कृति, परम्पराएँ, लोक मान्यताएँ समान है। इन्हें केवल अध्ययन की दृष्टि से अलग किया गया है। इसलिये जिले को अबूझमाड़ कहने से मुरिया जनजाति को कोई आपत्ति नहीं है।

इस जिले की सामाजिक बुनावट भी इस बात की पुष्टि करता है कि यह सम्पूर्ण जिला जिसे चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाये, अबूझमाड़ ही है।नारायणपुर तहसील को आदिवासी समाज ने पाँच परगनाओं में बॉटा है, ये परगने हैं दुग्गाल परगना, करंगाल परगना, बाराजोड़ियान परगना, बेनूर परगना, और छोटे डोंगर परगना। इसी तरह ओरछा तहसील के भी इस समाज ने चार भाग किये हैं, दुग्गाल परगना से लगे गाँव कोलोर परगना के अन्तर्गत आते हैं परन्तु इनके देवी-देवता संबंधी कार्य दुग्गाल परगना में सम्पादित होते हैं। इसके बाद के गाँव महाराष्ट्र सीमा तक जेटिन परगना के अन्तर्गत आते है। इस परगना के दक्षिण. पूर्व में ओरछा तक बड़दाल परगना है और इसके बाद शेष गाँव ओरछा परगना के अन्तर्गत आते हैं। आदिवासी समाज के अनुसार जिला नारायणपुर ९ परगनाओं में विभक्त है। प्रत्येक परगना के देव और, उनके मुखिया अलग-अलग हैं, यह व्यवस्था केवल समाजिक समरसता को बनाये रखने के लिये किया गया है। कोई भी सामूहिक निर्णय लेने के लिये परगनाओं की बैठक आयोजित की जाती है, जिसमें सभी परगनाओं के मुखियों को सूचना दी जाती है। वह अपने पदाधिकारियों के साथ उसमें भाग लेता है। इस तरह एक परगना की बैठक को भूमकाल कहा जाता है और एक से अधिक परगनाओं की बैठक को बड़ा भूमकाल कहते हैं।

आदिवासी समाज के इन परगनाओं का एक मण्डादेव (मुख्य देवता) होता है और इस देवता का सेवादार उस परगना के बहुसंख्यक निवासरत गोत्र के लोग होते हैं। मण्डादेव के द्वारा अपने अन्तर्गत आने वाले देवों को एक-एक गाँव देकर उसमें जिस गोत्र के लोग निवास करते हैं, उन्हें, उनका सेवादार बनाया जाता है। इस तरह एक देव का सेवादार दूसरे देव के सेवादार का विषम गोत्रीय होता है, इस व्यवस्था के पीछे आदिवासी समाज की सोच यह है कि जब उस गोत्र का व्यक्ति उस गाँव में जायेगा तो वह सगा के रूप में सम्मान पायेगा। इसी तरह जब सम गोत्रीय व्यक्ति जायेगा तो वह सहोदर के रूप में मान पायेगा। एक गोत्र के लोग जिन्हे मण्डादेवता के द्वारा देवता का सेवादार नियुक्त किया गया होता है, उस गोत्र के लोग उस परगने के अलावा जिस भी परगने में निवास करते हैं, वे अपने को या अन्य उसे उस देव का सेवादार मानते है और यही उनकी पहचान होती है। इस तरह सब परगने में एक दूसरे गोत्र के लोग निवासरत हैं, जिससे पूरे परगने एक-दूसरें से जुड़े

होते है। यही आदिवासी समाज की सामाजिकता है जिससे वह समाज से इस प्रकार जुड़ा होता है कि उससे वह चाह कर भी अलग नही हो सकता।

नारायणपुर को अबूझमाड़ का प्रवेश द्वार भी.कहा जाता है, कुछ समय पूर्व तक मेरी भी यही सोच थी, किन्तु जब आदिवासी समाज के संदर्भ में इस क्षेत्र को समझने का प्रयास किया तब लगा कि यह प्रवेश.द्वार नहीं बल्कि समूचा अबूझमाड़ ही है। इन ९ परगनो की सामाजिक व्यवस्था के अध्ययन से मालूम होता है कि मुरिया और अबूझमाड़ियों को केवल भौगोलिक दृष्टि से ही बांटा गया है, सामाजिक एवं अन्य तरीके से ये सब समान है। दोनो जनजातियों के खान-पान, रहन-सहन, तीज-त्यौहार, लोक परम्परा में समानता है। परगनाओं को भी देखें तो इस बात की पुष्टि होती है' छोटेडोंगर ८४ परगना के अन्तर्गत आने वाले लगभग १३ गाँव माड़ कहलाते है। आमदई पहाड़ी (ओतम डोंगरी) में स्थित देवताओं को ८४ परगना के लोग मानते है। इसी तरह दुग्गाल परगना के अन्तर्गत कोलोर परगना के गाँव और करंगाल परगना में बहुत से गाँव ऐसे हैं जो अबूझमाड के गाँव होते हुये भी इन परगनों के अन्तर्गत आते है। इन सब परगनों में होने वाले सभी सामाजिक और देवता सम्बंधित कार्य इन परगनों के मण्डादेव की अनुमति से ही सम्पादित किये जाते है। यही कारण है कि भैागोलिक दृष्टि से भी इनमें समानता है।

मुरिया और अबूझमाड़ियों के बीच रोटी-बेटी का सम्बन्ध है, ऐसा मानना है कि पूर्व में अबूझमाड़ के लोगों के पूर्वज मैदानी क्षेत्र में आ गये थे या मैदानी क्षेत्र के लोग पहाड़ में पेन्दा खेती करने के लिये चले गये थे। उन आदिपुरूषों के सन्तान इन दोनों क्षेत्रों में निवास करते हैं, इस कारण इनके सभी क्रिया-कलाप समान हैं। दोनों के गोत्र, मान्य देवी-देवता यहाँ तक कि पूजा करने, देवता बैठाने, देव पूछने आदि सभी प्रक्रिया एक जैसी है। इन सब के कारण इन्हे अलग करके देखा जाना न्याय संगत नहीं है। माड़ क्षेत्र की जनसंख्या बहुत ही कम होने के कारण इस क्षेत्र में निवासरत लोगों को विशेष संरक्षित जनजाति की श्रेणी में रखा गया गया है और उन्हे विशेष सुविधायें प्रदान की जाती है। अबूझमाड़ का यह भू.भाग अत्यन्त सघन वन क्षेत्र, दुर्गम और आवागमनविहीन क्षेत्र होने के कारण यहाँ लोगों की आवाजाही नही के बराबर है। यही कारण है कि यहाँ के लोगों के विषय में जन सामान्य

को बहुत ही कम जानकारी मिली और लोगों ने अबूझमाड़ को अजायबघर मान लिया जबकि मुरिया जनजाति और अबूझमाड़िया जनजाति में कुछ भी अन्तर नहीं है।

इतिहासकारों ने अबूझमाड़ को ज्यादा वृहद रूप दिया, उन्होंने महाराष्ट्र की सीमा से लेकर परलकोट, अन्तागढ़, आमाबेड़ा, छोटेडोंगर, नारायणपुर तथा दन्तेवाड़ा, बीजापुर तक को अबूझमाड़ कहकर पुकारा है। उस काल में इस पूरे भू.भाग के लिये उनके पास अलग से कोई नाम नही था, यही कारण है कि उन लोगों ने **अपने अध्ययन के लिये या यह कहना उपयुक्त होगा कि अपनी सुविधा के लिए बस्तर में निवासरत जनजातियों को अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया और यही नाम आज भी प्रचलन में है।** जैसे मुरिया, माड़िया (अबूझमाड़िया या दण्डामी माड़िया) राजा मुरिया, घोटुल मुरिया आदि। इन जनजातियों के केवल नाम में अन्तर किया गया जबकि इनके रहन-सहन, परम्परा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। इस पूरे वनाचंल को अबूझमाड़ कहा गया। परलकोट से उपजे आन्दोलन को इतिहासकारों ने अबूझमाड़ विद्रोह नाम दिया। इस आन्दोलन की मुख्य विशेषता थी कि इसमें आम की डाली पर मिर्ची बाँधकर घोटुलों में घुमाया जाता था' इससे यह संदेश दिया जाता था कि अपने हक के लिये लड़ने के लिये संगठित हो जाओ' परिणाम स्वरूप आदिवासी लामबन्द होते जा रहे थे। इसका मतलब यह हुआ कि आज जो घोटुल इस क्षेत्र में बचा हुआ है, वह उस समय परलकोट से लेकर बीजापुर तक आबाद था और गाँव के सभी गतिविधियों का केन्द्र था। उस समय का आदिवासी सामान्य राजनीति की समझ रखता था, उसमें भी किसी नेतृत्व के पीछे संगठित होने की प्रवृति थी, जो आज के आदिम समाज की पहचान है कि वे बहुत जल्दी संगठित होते है।

प्रकृति आधारित जीवन-यापन करने वाले इन आदिवासियों को जो मैदानी क्षेत्र में निवासरत हैं, उन्हे मुठीया या मुरिया कहा गया, जिसका अर्थ होता है पूर्वजों के जमाने से और जो पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने लगे उन्हे माड़िया कहा गया, माड़ अर्थात पहाड़। इसी से माड़िया बना, अर्थ है पहाड़ी । कहने का मतलब है यह जाति सूचक शब्द नहीं है, इसका अर्थ भी पूर्वजों के समय से ही होता है। अबूझ का अर्थ गॅवार होता है, यह नाम माड़ियों को उनके मैदानी क्षेत्र के विषम गोत्रीय लोगो ने मजाक में कहा जिसे उनका नाम दे दिया गया। जिस तरह इन्द्रावती नदी के उस पार निवास करने वाली जनजाति

अपने को कोया कहलाना पसन्द करती है, उसी तरह इस अबूझमाड़ में निवास करने वाले जनजाति (मुरिया और माडिया) अपने आपको कोयतोर कहती है। देव संस्कृति को मानने वाले इस अबूझमाड़ में निवासरत कोयतोर के आदिपुरूषों ने आदिवासी समाज की सामाजिकता और देव संस्कृति को आयाम दिया, जैसे लिंगों पेन जिन्हे शंकर भगवान का नटराज रूप माना जाता है के द्वारा लोक गीत, लोक नृत्य और विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाना सीखा, ये मान्यता है। इसी प्रकार आदिवासी समाज में प्रचलित कहानी किस्से इनके आदिपुरूषों की कहानियाँ है जिनके किया-कलापो से इनकी सामाजिकता निर्मित हुई और पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होकर वर्तमान तक पहुँची है। लोक गीतों में अपने आदि पुरूष देवताओं का आव्हान गीत और आराधना गीत है।

अबूझमाड़ की आदिम संस्कृति वाचिक परम्पराओं में समाहित है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित होती आ रही है। इस परम्परा को आदिवासी समाज में प्रचलित घोटुल प्रथा आगे बढ़ा रही है। यह कहना न्याय संगत होगा की आदिम समाज का घोटुल आदिम संस्कृति का वाहक है। यहाँ आदिवासी समाज के नवयुवक-युवतियाँ आदिम संस्कृति की बारीकियों को साथ-साथ सीखते हैं। लोक गीत, लोक नृत्य वाद्य बजाने का अभ्यास करते हैं, कहानी-किस्से कहते सुनते हैं। जीवन से लेकर मृत्यु तक लोक गीतों का विपुल खजाना भरा पड़ा है, लोक नृत्य देवताओं के सम्मान में किये जाते हैं, इनके साथ गाये जाने वाला गीत, देव आव्हान गीत, देवताओं के यश गान होते हैं। अधिकतर कहानी-किस्से देवताओं से सम्बन्धित होते हैं। इस तरह आदिम संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होकर आज भी उस स्थिति में है, जैसे उसके पूर्वजों के समय थी। इसलिये इस अबूझमाड़ का इतिहास लोक कथाओं और किंवदन्तीयों में खोजने का प्रयास किया गया है। पुरातत्व के बिखरे अवशेष को भी इतिहास की विषय वस्तु बनाया गया है। अूझमाड़ के पहाड़ जो किसी न किसी देवी देवताओं के पवित्र स्थान हैं, अपने अंक में क्षेत्र की प्राचीनता को समेटे हुये हैं।

यह पुस्तक इस क्षेत्र को जानने का एक प्रयास मात्र है। यहाँ निवासरत जनजातियों को देखने दूर-दूर से लोग आते हैं, कितना देख पाते हैं कहा नही जा सकता, ऐसे में इस क्षेत्र में निवासरत लोगों को जानने का प्रयास इस पुस्तक के रूप में आपके सामने है।

जिला नारायणपुर नक्शा- भौगोलिक स्थिति व जलवायु

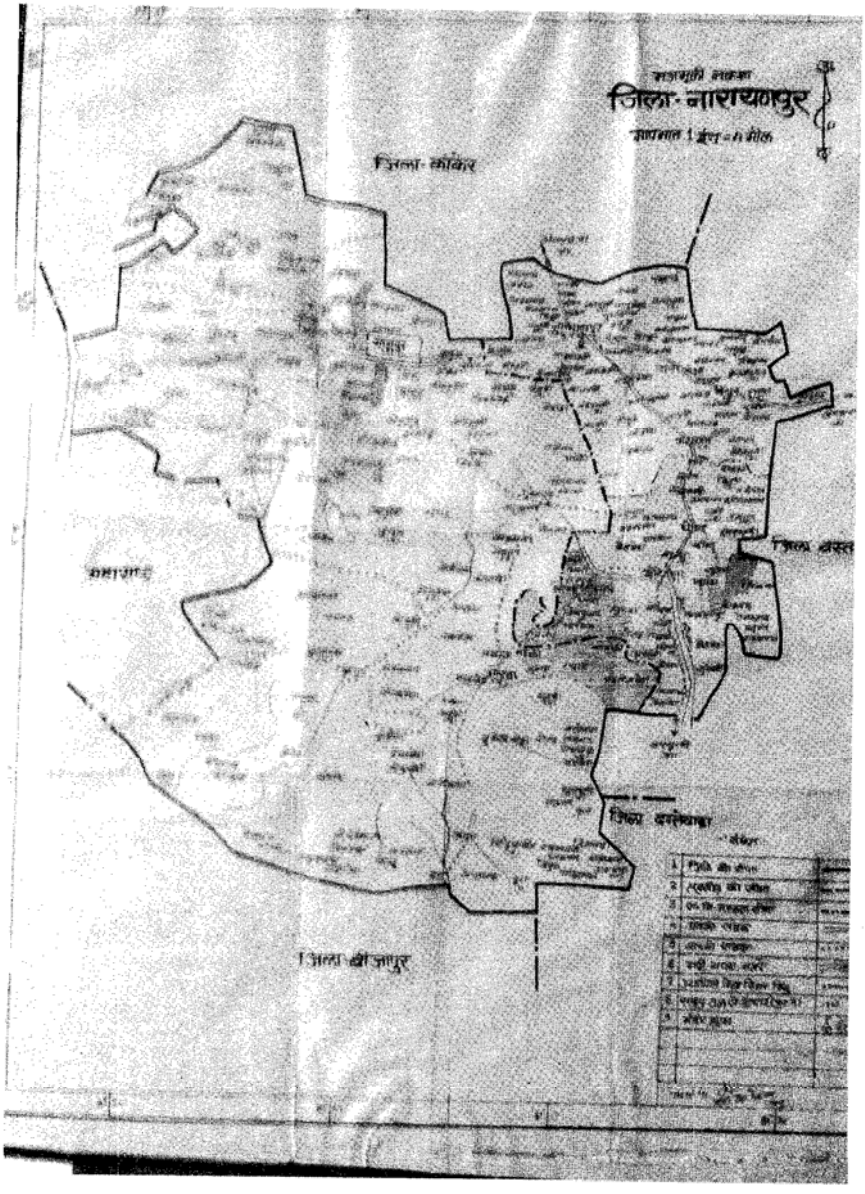

भौगोलिक स्थिति और जलवायु

छतीसगढ़ राज्य के दक्षिण-पश्चिम में नारायणपुर जिला स्थित है। इस जिले का गठन ०१ मई २००७ में बस्तर जिला के सबसे बड़े तहसील नारायणपुर को पृथक करके बनाया गया है। इस जिले के उत्तर में जिला-कांकेर, दक्षिण में जिला- दन्तेवाड़ा पूर्व मे जिला- कोण्डागाँव और पश्चिम में महाराष्ट्र का जिला-गढ़ चिरोली स्थित है। नारायणपुर जिले का विस्तार १९.०५ उत्तरी अक्षांश से १९.५५ उत्तरी अक्षांश तक तथा ८०.४० पूर्वी देशांश से ८१.३१ पूर्वी देशांश तक विस्तारित है। यह जिला राज्य का सबसे छोटा जिला है, जिसे बाद में ब्लाक मुख्यालय ओरछा को तहसील का दर्जा दिया गया इस तरह दो तहसीलों का जिला नारायणपुर (अबूझमाड़) बना है। क्षेत्रफल की दृष्टि से नारायणपुर तहसील का कुल क्षेत्रफल ९७७.६८ वर्ग किलोमीटर तथा अबुझमाड़ ओरछा का क्षेत्रफल ४०७५.५१ वर्ग किलोमीटर है। नैसर्गिक सम्पदा से परिपूर्ण इस जिले के नारायणपुर का लगभग ११४८.६८७ वर्ग कि.मी. वनाच्छादित है, वहीं अबूझमाड़ ओरछा तहसील का सम्पूर्ण भाग वनों से आच्छादित है।

नारायणपुर जिला का अबूझमाड़ ओरछा पहले तीन जिलों में विभक्त था, जिसमे एक रूपता लाने के लिये दन्तेवाड़ा जिला के ८ गाँव और बीजापुर जिला के ३९ गाँवों को इसमें सम्मलित किया गया है। इस तरह नारायणपुर जिला में २६ पटवारी हल्का, २ राजस्व मण्डल १७३ राजस्व ग्राम, २ वन ग्राम और

अबूझमाड़ माड़ के २३७ माड़ ग्राम को मिलाकर ४१२ ग्राम और एक नगर पालिका नारायणपुर से जिला का गठन हुआ है। इसमें अबूझमाड़ क्षेत्र असीमांकित है, इसे राजस्व के नक्शे में लाने के लिये हवाई सर्वे किया गया है परन्तु अभी मूर्त रूप नहीं दिया जा सका है।

जनसंख्या की दृष्टि से नारायणपुर जिला सबसे छोटा जिला है, इसकी कुल जनसंख्या १३९८२० है। इसमें ग्रामीण क्षेत्र में ११७७१४ बहुसंख्यक लोग निवास करते हैं जिसमें महिलाओं की संख्या ५९०६१ और पुरूषों की संख्या ५८६५३ है। शहरी क्षेत्र में निवासरत लोगों की संख्या पुरूष वर्ग ११४५१ और महिलाओं की संख्या १०६५५ कुल जनसंख्या २२१०६ है। जिला नारायणपुर (अबूझमाड़) आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र है, इसे अनुसूचित क्षेत्र घोषित किया गया है और यहाँ संविधान की पाँचवीं अनुसूची प्रभावशील है। आबादी की कुल १८८१६१ बहुसंख्यक अनुसूचित जनजाति जिला नारायणपुर में निवास करती है, जिसमें पुरूषों की संख्या ५३५१८ और महिलाओं की संख्या ५४६४३ है। इसके बाद शेष जनसंख्या सामान्य और पिछड़े वर्ग की है जो लगभग २६६८० हैं। जिले की साक्षरता की दर ४९.५४१ है, जिसमें पुरूष साक्षरता ५८.९७० और महिला साक्षरता ४०.२२१ है।

जिला नारायणपुर में गोण्ड जनजाति की उपजाति मुरिया, माडिया (अबूझमाड़िया) निवास करती है जिनकी बोलीं मुख्य रूप से हल्बी और गोण्डी है। अबूझमाड़ में भी गोण्डी ही बोली जाती है परन्तु बोलने के ढंग में मामूली अन्तर आ जाता है, इसलिये इसे अबुझमाड़ी कहते हैं। गोण्डी भाषी लोग आसानी से एक दूसरे की बोली को समझ जाते हैं। गोण्डी जहाँ द्रविड़ भाषा परिवार की मुख्य बोली है वहीं हल्बी का संबंध भारोपिय भाषा परिवार से है। नारायणपुर के शहरी क्षेत्र में हल्बी और छतीसगढ़ी के मेल से बनी बस्तरी भी बोली जाती है। हल्बा जाति भी अनुसूचित जनजाति है परन्तु गोण्ड जनजाति के साथ उनका रोटी-बेटी का सम्बंध नहीं है।

थाना - जिला नारायणपुर में नारायणपुर, बेनूर, छोटेडोंगर, धौड़ाई, फरसगाँव, झाराघाटी, धनोरा, ओरछा, कुकड़ाझोर, कुरूसानार, और बासिंग मिलाकर ११ थाने है। पुलिस अधीक्षक एवं अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक की पदस्थापना है। नक्सली संवेदनशील क्षेत्र होने से यहाँ जन सुरक्षा के लिये अर्ध

सुरक्षा बलों के केम्प एड़का, नेलवाड़, जेल परिसर, मुंजमेटा, फरसगाँव धौड़ाई, कुरूसनार, कुकड़ाझोर, गाँवों में स्थापित है।

आवागमन - जिले में आवागमन का मुख्य साधन सड़क मार्ग है। नारायणपुर पूर्व में लगभग ५२ कि.मी. पर राष्ट्रीय राजमार्ग कोण्डागाँव से जुड़ता है तथा उत्तर में अन्तागढ़ भानुप्रतापपुर होते हुये राजनांदगाँव दुर्ग जिले से सड़क मार्ग है। नारायणपुर जिला भविष्य में दन्तेवाड़ा और बैलाडिला तथा सोनपुर होते हुये महाराष्ट्र से जुड़ने की अपार सम्भावना है।

वन एवं खनिज सम्पदा - नारायणपुर को साल वनों की अधिकता के कारण साल वनों का द्वीप कहा जाता है। यहाँ इमारती लकड़ी प्रचूर मात्रा में उपलब्ध है, इसीलिये एशिया का दूसरे नम्बर का वन काष्टागार यहाँ पर मौजूद है। खनिज के रूप में का रावधाट और छोटेडोंगर के पास आमदई पहाड़ी में लोह अयस्क का भण्डार है। जिसकी खुदाई की प्रक्रिया जारी है।

जलवायु-: जिला नारायणपुर उष्णकटिबंधिय उपार्द जलवायु वाला क्षेत्र है। यहाँ १५ जून से १५ सितम्बर तक वर्षा होती है। सर्वाधिक वर्षा जुलाई और अगस्त माह में होती है। जिला नारायणपुर में औसतन वर्षा १२० से १२५ से.मी. नापी गई है किन्तु अबूझमाड सर्वाधिक वर्षा वाला क्षेत्र है। यहाँ १८७ से.मी. तक वर्षा होती हैं। जिला नारायणपुर में दक्षिणी पश्चिमी मानसूनी हवाओं से वर्षा होती है। नारायणपुर जिले का तापमान सामान्य होता है सबसे अधिक तापमान ४० डि. सेल्सीयस तथा न्युनतम तापमान ८ डि.सेल्सीयस होता है। अप्रैल, मई में अच्छी गर्मी पडती है। यह साल वनों का द्वीप कहलाता है। अबूझमाड पहाडी क्षेत्र होने के कारण अपेक्षाकृत ठन्ड अधिक लगती है। अक्टूबर, नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी सर्वाधिक ठण्डे माह होते है। यह समूचां क्षेत्र उष्ण कटिबंधीय शुष्क पर्णपातीय वनों से आच्छादित है और यहाँ मिश्रित प्रजाति के वृक्ष पाये जाते है। यह कृषि आधारित और वनों पर आधारित जीवन-यापन करने वाले जनजातिय बाहुल्य जिला है।

संदर्भ-: सांख्यिकी विभाग जिला नारायणपुर छ.ग.

ऐतिहासिक नगरी नारायणपुर अबूझमाड़

इतिहास के पन्ने में - छोटेडोंगर स्थित प्राचीन कालीन मूर्तियां

सम्पूर्ण बस्तर संभाग का लुप्त प्राय: इतिहास पौराणिक व्याख्या, लोक संस्कृति प्रचलित मान्यता, लोक कथा, लोक गीत, किवदंती और पुरातत्व के बिखरे अवशेष के अध्ययन पर आधारित है। क्योकि यहाँ का इतिहास लिखित न होकर वाचिक परम्परा में समाहित है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तानान्तरित होते चली आ रही है। पूरे बस्तर को रामायण काल, त्रेता युग में दण्डकरण्य, महाभारत काल द्वापर युग में कान्तार, गुप्त काल में महाकान्तार, कहा गया है। इसी तरह नाग वंश काल में चक्रकोट और चालुक्य वंश काल में इसे बस्तर नाम दिया गया जो आज तक प्रचलन में है। बाल्मिकी रामायण के अनुसार रधुवंश के चक्रवर्ती सम्राट इक्ष्वांकु ने इस वैभव पूर्ण राज को महामुनि शुक्राचार्य से संधि करके अपने पुत्र दंण्ड को दिया था। ऋषि आज्ञा से राज-काज ठीक चल रहा था। एक दिन राजा दण्ड, सौजन्य भेट करने के लिये मुनि आश्रम आते हैं। शुक्राचार्य महाराज की अनुपस्थिति में वहाँ उनकी मुलाकात उनकी पुत्री अरजा से होती है। अद्वितीय सुन्दरी अरजा को देख कर राजा दण्ड उस पर आसक्त हो जाते हैं और प्रणय निवेदन करते हैं। गुरू पुत्री अरजा द्वारा निवेदन को अस्वीकार करने पर आसक्त राजा उसका बलात्कार करते हैं। मुनि शुक्राचार्य के आने पर अरजा अपने साथ हुई घटना उन्हे बताती है। तब मुनि राजा दण्ड को श्राप देते हैं कि "हे राजन तेरा यह वैभव पूर्ण राज्य कानन हो जाये" इसलिये यह वैभव पूर्ण राज्य बीहड़ में बदल गया और इसे दण्डकारण्य के नाम से जाना जाने लगा।

त्रेतायुग में जब श्री रामचन्द्र जी वन गमन करते समय दण्डकारण्य क्षेत्र से भी गुजरे थे। इन मार्गो को चिन्हांकित कर लिया गया है। (डा. मनु यदु की टीम के शोध के अनुसार) नारायणपुर से दक्षिण पश्चिम में ७ कि.मी. की दूरी पर राकस डोंगरी और रकसा हाड़ा स्थित है, जो करील घाटी में है। उस स्थान को राम वनगमन मार्ग के रूप में चिन्हित किया गया है। ग्रामीण बताते है कि उस जगह रामचन्द्र जी ने राक्षसों का वध किया था, जिनकी हड्डी पत्थर की हो गयी है। जिसे जलाने से आज भी हड्डी जलने की दुर्गन्ध आती है। पुराने जमाने का नारायणकोट बम्हनी गाँव के रूप में इसके पास ही बसा हुआ है और इसके समीप ही ग्राम सीतापाल है। यह एक मात्र गाँव है जिसका नाम पौराणिक किसी देवी के नाम से रखा गया है। जिससे भी इस बात को बल मिलता है कि रामायण काल में इस क्षेत्र का अस्तित्व रहा हैं। राम चन्द्र जी यहाँ चतुर्थ मास बिताये थे। इसी तरह नारायणपुर के छोटडांगर से २० कि'मी. दक्षिण-पूर्व में एक स्थान तोड़मा है, इसे भी राम वनगमन मार्ग के रूप में पहचाना गया है, यहाँ कदली वन (केले का जंगल) है। पुराणों में वर्णन है कि कदलीवन में साक्षात शिव-पार्वती विचरण करते है। यह इस बात को प्रमाणित करता है कि तब अवश्य रामचन्द्र जी ऐसे पवित्र स्थान में जरूर विश्राम किये होगें। यह प्रसंग इसे रामायणकाल से जोड़ता है। (रामगमन मार्ग शोध संस्थान)

इसी तारतम्य में नारायणपुर का सम्बन्ध गुप्तकाल से भी जुड़ता है, यहाँ से पूर्व में भोंगापाल ग्राम है, जहाँ चैत्य मंदिर और भगवान बुद्ध की प्राचीन मूर्ति खोदाई में प्राप्त हुई है। इसी के पास सप्तमात्रिका की मूर्तियाँ एवं दो विशाल शिवलिंग भी खोदाई में प्राप्त हुये हैं। गुप्तकाल में यह स्थान बहुत बड़ा आध्यात्मिक केन्द्र रहा होगा, जहाँ तीनों सम्प्रदाय बौद्ध धर्मावलम्बी, शैव मतावलम्बी और शाक्य समप्रदाय के लोग विहार करते रहे होगें। यह जगह बाराजोड़ियान परगना के अन्तर्गत आता है जहाँ आदिम समाज के आराध्य देव "होच्चे मुत्ते" का स्थान है। नारायणपुर का क्षेत्र प्राचीन काल में सब सम्प्रदायों का समागम स्थल रहा है। बस्तर में नाग शासन काल से पूर्व नल शासकों ने राज किया था, इस बात का प्रमाण इस काल की प्राप्त मूर्तियों से मिलता है। आज के ग्राम छोटेडोंगर के तालाब से प्राप्त मूर्तियों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि ये मूर्तियाँ नलकालीन शिल्पकला का नमूना हैं। इस तालाब में बहुत सारी मूर्तियाँ निकाली गई थीं परन्तु एक मेटाडोर में भरकर अज्ञात स्थान पर ले जायी गई हैं। ऐसा गाँव के

लोगों का कहना है। जो मूर्तियाँ बाकि रह गई हैं वो खण्डित अवस्था मे हैं जो बची हैं उसे ग्रामवासी अपने देख-रेख में गाँव के चौराहे पर रख दिये हैं।

इन मूर्तियों के अध्ययन से पता चलता है कि इनमें गणेश और भैरवी की मूर्ति नलकालीन हैं और दूसरी मूर्तियाँ नागकालीन हैं। तालाब के किनारे चौकोर पत्थरों का एक चबूतरा बना हुआ है, पास में ही चौकोर पत्थर पर आकृति उकेरा जा रहा था जो अधूरी रह गई है। इसके विषय में गाँव के लोगों का कहना है कि शिल्प के देवता विश्वकर्मा चबूतरे पर एक मंदिर का निर्माण करने के लिये इन मूर्तियो को बनाया है। वे इसे बनाने में इतने खो गये थे कि उन्हे पता ही नहीं चला की कब सबेरा हो गया जब लोगों की आवा-जाही होने लगी तो वे काम अधूरा छोड़कर बारसूर चले गये बाद में कभी लौटकर नहीं आये। कुछ मूर्तियों का सम्बन्ध नाग काल से जुड़ता है। तीन शिवलिंग भी है जो नलकालीन हैं। इस तरह नलवंश और नागवंश से नारायणपुर का सम्बन्ध रहा है।

यह समय नलवंश की समाप्ति और नागकाल का उदय का था, सम्पूर्ण क्षेत्र अपने स्वतंत्र अस्तित्व में रहा, और छोटे-छोटे जनपद में बंटा हुआ था, इन जनपदों में हल्बा राजा राज किया करते थे। इन जनपदों को बहुत जल्दी नाग शासकों ने अपने अधीन कर लिया और उनमें उन्ही राजाओं को सौप दिया जो पहले से ही वहाँ राज कर रहे थे। इससे यह हुआ कि इन जनपदों में होने वाले असंतोष अपने आप दब गये। इन जनपदों में सबसे बड़ा नारायणपुर जनपद था, जिसे उस समय नारायणकोट के नाम से जाना जाता था और यहाँ के हल्बा राजा नारायणदेव थे। उस समय यहाँ की राजधानी ग्राम बम्हनी हुआ करती थी, जो नारायणपुर से ७ कि.मी' की दूरी पर स्थित है। इस क्षेत्र के लोग राजा नारायणदेव के विषय में ज्यादा तो नहीं परन्तु अपने पुरखों से सुनी कुछ बाते अवश्य बतातें हैं, कि वे बहुत ही समझदार सज्जन और भद्र पुरूष थे। लम्बे चौड़े अच्छा खासा डीलडौल वाले फूर्तिले व्यक्ति थे और आगे बताते हैं कि जंगली जानवरों का शिकार वे मचान बनाकर नहीं बल्कि आमने-सामने लड़कर किया करते थें। उनका पहनावा अन्य लोगों से थोड़ा हटकर हुआ करता था, वे घुटने तक धोती पहनते, सिर पर पगड़ी और बीच में जंगली पक्षियों के पंख से बनी कलगीं खोचते थे, खुले बदन में लम्बा अगोंछा और कमरबन्द बांधते थे।

नारायणकोट के राजा माता पीकड़ी बुन्दीन आया (माता) के अनन्यय भक्त थे, वे किसी भी कार्य को करने के पहले माता की आज्ञा जरूर लेते थे। उनके मुण्डा-महल में माता जी का मंदिर स्थित था। पहले के लोग मुण्डा-महल मिट्टी और खपरा से बने ढ़ाबा वाले दो मंजिला मकान को कहते थे। इस मुण्डा-महल में उपर के तरफ राजा के परिवार के अलावा मंत्री सलाहकार विश्वस्त लोग रहा करते थे और नीचे के तले में नौकर-चाकर रहते थे। रोशनी के लिए महल में मशालें जलाई जाती थी। उस जमाने में यह राज वैभव पूर्ण राज था, नारायणदेव ने अपने राज्य मे बहुत से तालाब खुदवाये थे, कहते है कि "सात आगर सात कोड़ी तरई कोड़ालो" अर्थात सात से ज्यादा सात कोड़ी (२० की एक कोडी) याने १४७ तालाब खुदवाए, जिसके अवशेष आज भी मौजूद हैं। उन तालाबों के किनारे बहुत सी खण्डित मूर्तियाँ थी अब वे नहीं रही देखने वाले तो यहाँ तक बताते हैं कि तालाब के किनारे एक तिजौरी नुमा बक्सा भी रखा हुआ था, वह भी चोरी कर ली गई। उस काल में नारायणकोट को परलकोट के आधीन माना जाता रहा। यह इस बात से भी प्रमाणित होता है कि परलकोट के राजा का यहाँ आना जाना था और यहाँ के राजा होली-दीपावली में परलकोट मिलने जाया करते थे। यह परम्परा राजाशाही नहीं रहने के बाद भी बहुत वर्षो तक चलता रहा। पहले के लोगों के अनुसार बड़ेडोंगर के राजा को कुम्हड़ाकोटिया राजा और नारायणकोट के राजा को पखनाकोटिया राजा कहते थे। इस प्रकार की किवदंती आज भी प्रचलित है कि जिस तरह से बड़ेडोंगर के राजा का उद्भव कुम्हड़ा (कद्दु) से हुआ था, उसी प्रकार यहाँ के राजा पत्थर तोड़कर उत्पन्न हुये थे।

नारायणकोट के राजा नारायणदेव के विषय में यह कहा जाता था कि वे धीर-गंभीर, बुद्धिमान और स्वाभिमानी आदमी थे। वे आने वाली विपदा को पूर्व में जान जाते थे और मनन-चिन्तन करने लग जाते थे। एक बार वे मनन-चिन्तन के उधेड़बुन में थे जब उनके खासम-खास सलाहकार ने इसका कारण पूछा तो वे निर्लिप्त भाव से कहा "लगता है मेरा आप लोगों के साथ इतने ही दिन का था " और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किये वहाँ से चले गये। यह समय था जब महाराजा अन्नमदेव नागवंश के अन्तिम गढ़ चितरकोट पर विजय प्राप्त करना चाहते थे। इसके लिये उन्होने नारायणदेव के पास अपना एक विशेष दूत संधि प्रस्ताव लेकर भेजा। नारायणदेव ने प्रस्ताव को ध्यान से सुना और बड़ी

विनम्रता से उसे अस्वीकार कर दिया। कारण यह था कि चितरकोट के राजा के साथ नारायणदेव के मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे। अन्नमदेव भी कुटनायिक व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होने फिर से स्वर्ण मुद्रा की थाली के साथ प्रस्ताव भेजा, जिसमे नारायणदेव ने मिट्टी डाल दिया। नाराज होने के बजाय दूत ने कहा " ये क्या राजन आप ने तो हमारे राजा को अपनी मिट्टी याने राज्य दे दिया"। उस रात राजा की आँखों में नींद नहीं थी, उन्होने दृढ निश्चय कर अपनी कुलदेवी पीकड़ीबुन्दिन माता से राज छोड़कर अपने साथ चलने को कहा, माता के इंकार करने पर वे किसी को बिना बताये परिवार के साथ अज्ञात वास मे चले गये। आज तक इस बात का पता किसी को भी नही चला और नारायणकोट के राजशाही का पटाक्षेप हो गया। इसके बाद महिमागवाडी धंवडई छोटेडोंगर ओरछा पर अन्नमदेव ने विजय प्राप्त किया। (आदिवासी: इतिहास और परम्पराएँ डा. राम कुमार बेहार- नर्मदा प्रसाद श्रीवास्तव)

यहाँ पर इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि वर्तमान नारायणपुर और प्राचीन नारायणकोट के बीच एक वैभव पूर्ण राज महल का खण्डहर मौजूद है। यह किस काल का है?इसे किस राजा ने बनवाया था?यह या तो अतीत के पन्नों में कहीं खो गया हैं या यहाँ के काले पत्थरों या एक के ऊपर एक जमे हुये पत्थरों के नीचे दब गया है। एक इतिहास के जानकार युगल प्रसाद देवांगन का कहना था इस किले को एक चन्द्रवंशी राजा ने सन् ३६० ई० में बनवाया था। यहाँ के पत्थर और पके हुये ईंट के टुकड़े अपनी कहानी बयान करना चाहती है पर इनकी कोई सुनने वाला नहीं है। अभी तक ऐसे किसी विद्धान ने यहाँ आकर इसका अध्ययन नहीं किया है जिससे इसके इतिहास के विषय में जानकारी मिल सके । आज इसे गढ़ गुडरा के नाम से जाना जाता है। इसके शीर्ष में नारायणपुर क्षेत्र के पात्र हल्बा समाज ने दन्तेश्वरी मंदिर की स्थापना की है और ऊपर तक आने जाने के लिए सीड़ियाँ बनाया है। आज यह स्थान धार्मिक आस्था का केन्द्र है, परन्तु इसका ऐतिहासिक विवेचना होना अभी भी शेष है। आज जिस रूप में यह खण्डहर मौजूद है, इसी तरह तीन चार सौ साल पहले भी यह इसी स्थिति में रहा है, तभी सन् १७३७ ई० में इस खण्डहर के ऊपर बस्तर के तत्कालीन राजा दलपतदेव ने १८ गढ़ में बांटकर इसे तीसरा गढ़ का दर्जा दिया और अपनी कुल देवी दन्तेश्वरी माई जी की स्थापना कराया था।

उपरोक्त बातें इसकी प्राचीनता की ओर इशारा करते हैं। इसके आस-पास के जितने भी ढाचां रहे हैं वे सब पत्थर के ढेर में परिवर्तित हो चुके हैं, केवल मध्य में यह महल का खण्डहर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में मौजूद है। इसे बनाने की कला इसकी भव्यता की कहानी कह रहा है। इस महल की बनावट पर एक सामान्य दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि महल का मुख्य द्वार या जिसे सिंह द्वार कहते हैं पश्चिम दिशा की ओर था, जिस ओर कुकुर नदी बहती है उस ओर का द्वार लगभग बन्द हो चुका है। आज से ४०-५० साल पूर्व तक यह द्वार बहुत ही सकरा था कुछ निर्भीक और उत्साही लोग अन्दर आते-जाते रहे हैं, उस समय कहा जाता था कि इस पहाड़ी में एक गुफा है और अन्दर मे एक खाण्डा (तलवार) चान्दी की पायल पलंग आदि रखा हुआ है। आज ये सब कहानी हो गई है। यह खण्डहर किसी जमाने में एक मजबूत किला रहा होगा, यदि इसकी बनावट को ध्यान से देखा जाय तो देखेगें की यह तीन प्रखण्डों में बटा है। पहला खण्ड बहुत ही विशाल है, इसका विस्तार उत्तर में चण्डीबढ़ के पास और दक्षिण में बाकुलबाही सड़क तक है। इसका केवल अवशेष मात्र रह गया हैं, इसे मुख्य भाग में ही देखा जा सकता है। दूसरे खण्ड में अभी भी पत्थरों की जोड़ाई को स्पष्ट देखा जा सकता है। वर्तमान में इसमें पहाड़ी मंदिर जाने का रास्ता बना हुआ है। इसके उपर अन्तिम खण्ड है जिसमें आज माता जी का मंदिर बना हुआ है।

इस किले का पृष्ठ भाग जो पूर्व दिशा की ओर है यह मिट्टी के बहुत ही विशाल दीवार से घिरा हुआ है, जिसके अवशेष आज भी देखे जा सकते हैं। इस दीवार की मजबूती का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि इसकी नींव में पत्थर से जोड़ाई की गई है। इस दीवार के अन्दर दाहिने ओर एक विशाल कुआँ रहा होगा जिसे आज भी गढ्ढे के रूप में देखा जा सकता है। यह दीवार पास ही में स्थित एक छोटे से तालाब तक जाती है, जिसे रानी तरई कहतें है। इस रानी तरई की बनावट कटोरे के समान है, जिसके चारो ओर पछरी बनी हुई है। तालाब का नाम उसकी बनावट और मिट्टी की दीवार का उस तक जाना जिससे यह सहज ही अन्दाजा लगाया जा सकता है कि जरूर इसमें रानी उस काल में नहाती रही होगी। इस तालाब के थोड़ी दूरी पर रानी आमा स्थित है, यह इस बात की ओर इशारा करता है कि यहाँ एक बगीचा रहा होगा जिसमें रानी घूमती रही होगी। किसी भी किले का निर्माण सुरक्षा के दृष्टि से बाहरी आक्रमण से बचाव करने और संकट काल में अपने राजा के परिवार

व प्रजाजनों की रक्षा के लिए बनाया जाता था, परन्तु यह किला इससे भिन्न है। इस किले मे महल के आजू-बाजू राज सेवको के रहने के महल रहे होगें, जो आज पत्थर के ढेर में बदल गये है। कुछ भी निशान शेष नहीं रहा है।

इस किले के पार्श्व भाग में बने मिट्‌टी के दीवार के कुछ दूरी पर आज भी चण्डीबड़ स्थित है, जहाँ आज भी माता रण चण्डी की पूजा की जाती है। कहा जाता है कि इस स्थान पर राजा के जमाने से माता रणचण्डी स्थापित है जो उस समय से इस गढ़ की रक्षा कर रही है। आज भी इसी मान्यता के अनुसार मात की पूजा की जाती है कि इस गढ़ में आने वाली आपदाओं से देवी रक्षा करे। चण्डीबढ़ के पीछे इस किले का शस्त्रागार रहा है और उसके सामने रणचण्डी का स्थान होने से इसकी पुष्टि होती है क्योंकि रणचण्डी को युद्ध की देवी माना जाता है। इससे लगे भाग में शस्त्रागार के रक्षक सैनिक रहते होगें, क्योंकि यहाँ बड़े बड़े वृक्ष और झाड़ियाँ उग आई है। इस किले को चारो ओर से एक गहरी खाई बनाकर और भी सुरक्षित कर लिया गया था, जिसमें बारहमाह पानी भरा रहता था ताकि बाहरी आक्रमण से किले की रक्षा हो सके। इससे इस बात को बल मिलता है कि यह किला या महल एक अजेय गढ़ रहा है बस्तर में जिस स्थान पर प्रशासकीय अधिकार केन्द्रित होता उसे गढ़ के नाम से पुकारा जाता है। प्राचीन समय में यह इस क्षेत्र का जाना माना गढ़ रहा होगा, इसलिए इसका नाम गढ़गुडरा पड़ा।

प्राचीन काल में हल्बा जनजाति के लोगों को एक अच्छा लड़ाका माना जाता था, उन्हे राजा महाराजा अपना प्रिय पात्र और विश्वस्त साथी मानते रहे हैं। इसलिये उनको राज्य के सबसे जवाबदेही का काम सौंपा जाता था, अच्छे ओहदे में रखा जाता था वही पद आज उनका उपनाम है। जैसे पात्र, पुजारी, देहारी, मांझी, नायक, आदि ये सभी राजा द्वारा दिया गया पदनाम है। इस गढ़गुडरा में जो राजा रहे होगें उन्होने अपने किले के चारो ओर हल्बा जनजाति के लोगों को बसाया था। जैसे माता मंदिर पारा गढ़ पारा पश्चिम में साकड़ी बेड़ा, डुमरतरई, खड़ीबहार, बाकुलवाही, बेलगाँव उत्तर में कसावाही बम्हनी दक्षिण में कोकोड़ी और खड़कागाँव इत्यादि, ये सभी के सभी गाँव हल्बा बाहुल्य ग्राम हैं। इन गाँवों का इस किले के चारो ओर होना इस बात की पुष्टि करती है कि महल या किला के प्रति यहाँ के राजा कितने सजग रहे। हल्बा जाति के लोग

इस किले से कितना प्रेम करते है यह इस बात से जाहिर होता कि जब नारायणपुर गढ़ में माता दन्तेश्वरी की स्थापना की जानी थी तो उसके लिये इस जगह का चयन किया गया। यह किला ऐसे कितनी कहानी और इतिहास अपने अंक में समटे हुये है, जिसको सामने लाने के लिये पारखी निगाहो की आवश्यकता है।

यह समूचा वन क्षेत्र, दुर्गम और आवागमनविहीन क्षेत्र होने के करण इतिहासकारों के नजरों से अछूता रहा है। यही कारण है कि यहाँ का इतिहास लोक कथाओं में बसी हुई है। नारायणपुर जिला आदिवासी बाहुल्य है। यहाँ आदिवासियों की मिश्रित प्रजाति निवास करती है ये लोग अपने आप को कोयतोर कहते है। यहाँ निवासरत आदिवासी समाज मुनेटोर है जिसका अर्थ होता है पहले जमाने से, इन्हें मुटिया कहा जाता है जिसका अर्थ होता है, पुरखों के समय से, यही मुटिया का अपभ्रंश रूप मुरिया आदिवासियों का जाति सूचक शब्द हैं। इसका मतलब यह हुआ कि आदिवासी समाज यहाँ पुरातन काल से निवासरत हैं। इसी तरह की बात हल्बा समाज के हीरासिंह देहारी भी कहते है कि हम यहाँ के जड़ काटी जड़ माटी हैं, जिसका भावार्थ है कि हम इस माटी के मूल मे हैं और इस माटी में हमें दफन भी होना है। यह सब बातें यह प्रमाणित करने के लिये प्रर्याप्त है कि यहाँ आदिवासी समाज आदिकाल से निवास कर रहा है, यही इसका इतिहास है।

इतिहास के पन्नो से- मावली खोज

इतिहास के पन्ने में - भोंगापाल स्थित बुद्ध की प्राचीन मूर्ति

Rakas-hada, राकस-हाड़ा

जाति-जनजातियाँ और बोली-भाषा

अबुझमाड़िया परिवार

मनुष्य को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिये किसी एक बोली भाषा की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता ने बोली-भाषा का अविष्कार किया होगा। मनुष्य की उत्पत्ति के साथ ही अपनी बात रखने के लिये सांकेतिक भाषा का प्रयोग से प्रारंभ किया होगा, जिसने आगे जाकर बोली-भाषा का रूप लिया होगा। बस्तर का आदिवासी समाज अपने को यहाँ का मूल निवासी मानता है। नारायणपुर में निवासरत जनजातिय समाज गोंडी, हल्बी और अबूझमाड़ी बोली बोलती है। इन जनजातिय बोलियों में इनके लोक गीत, लोक कथा, पहेलियाँ आदि समाहित है जो शनैः शनेः विकसीत हुई होगी। नारायणपुर जनजाति बाहुल्य क्षेत्र है यहाँ हल्बा, गोंड और अबूझमाड़िया जनजातियाँ निवासरत है और अपनी-अपनी भाषा बोलते समझते हैं। किन्तु यहाँ की सम्पर्क बोली हल्बी है। जब दो भाषा भाषी लोग आपस मे बात करते हैं तब वे हल्बी में बात करते हैं। गोंडी और अबुझमाड़ी बोली आपस में समानता लिये हुये है, जब अबुझमाड़ के लोग गोंड़ी भाषी से बात करते हैं तो दोनो एक दूसरे की बात आसानी से समझ लेते हैं। अबूझमाड़ी में बोलने का लहजा में अन्तर है वे शब्दों को संक्षिप्त कर बोलते हैं। इसलिये सुनने वालों को अबूझमाड़ी अलग बोली लगती है। यदि बोलने के शैली में अन्तर नही होता तो दोनो बोलियो में कोई अन्तर नही है।

हल्बी और हल्बा जनजाति

बस्तर संभाग में हल्बा, अनुसूचित जनजातियों में प्रमुख जनजाति है, ये जनजाति नारायणपुर क्षेत्र में भी बहुसंख्यक रूप से निवासरत है। यहाँ के हल्बा जाति के लोग अपने आपको राजा के साथ आये हुये मानते है परन्तु इतिहासकारों का ऐसा भी मानना है कि हल्बा जनजाति चक्रकोट में छिन्दक नागवंश काल में भी आबाद रहे हैं। इसका अर्थ हुआ कि हल्बा जनजाति यहाँ की मूल रूप से निवासरत जनजाति है। नारायणपुर के अलावा इस क्षेत्र में बहुत से हल्बा बाहुल्य गाँव आबाद है। जैसे गढ़पारा, कुम्हार पारा, डुमरतरई, साकड़ीबेड़ा, बाकुलबाही, बेलगाव, जम्हरी बोरंड कुकड़ाझोर, सीतापाल, बम्हनी सरगीपाल, ब्रेहबेड़ा, माहका, पालकी, करलखा, सिगोंड़ीतरई और सोनपुर। इसी तरह छोटेडोंगर के अलावा डुरका डोंगरी, कांकेरबेड़ा, बड़गाँव, पल्ली कन्हारगाँव, सुलेंगा, आदि हल्बा जनजाति बाहुल्य गाँव हैं। इस जनजाति का मुख्य व्यवसाय कृषि है। हल्बा जनजाति की महिलायें चिवड़ा और तिखुर बनाने की विशेषज्ञ मानी जाती हैं। इनका सामाजिक संगठन को बहुत मजबूत माना जाता है। सुरूत, मुरूत नामक दो वर्गो में बटे होने के बावजूद कार्य व्यवहार में यह अन्तर नही दिखता, परन्तु जब वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने की बात होती है, तब यह अन्तर देखा जा सकता है। बस्तर संभाग में इन जनजातियों ने अपने समाज को १८ गढ़ हल्बा समाज में बांटा है और इनके द्वारा पोषित सामाजिक नियम से ये शासित होते हैं।

बस्तर में हल्बा जनजाति का आगमन चालुक्यवंशी राजा अन्नमदेव के साथ माना जाता है, परन्तु बड़ेडोंगर के जयराम पात्र अपने पुरखों को उड़िसा से आये कहते हैं। हीरासिंह देहारी बताते हैं कि हमारे पूर्वज उड़ीसा प्रान्त के क्षत्रिय थे, उन्होने यहाँ पूर्व से निवासरत हल्बा जनजाति के बेसरा गोत्रीय लड़की से विवाह करके हल्बा हो गये। तिलक बेलसरिया छोटेडोंगर का कहना है कि हमारे पूर्वज राजा के साथ वारंगल से आये थे, उन्हे छोटेडोंगर में मांझियों के पुरखो ने यहाँ लाकर अपनी लड़की दी और कमाने खाने के लिये जमीन देकर

बसाया। हल्बा जनजाति को बहुत ही विश्वास पात्र माना जाता है, इसीलिये वे हर समय राजा के कृपा पात्र और अच्छे लड़ाके माने जाते रहे हैं। आज भी उनका उपनाम राजा द्वारा उनके पूर्वजों को दिया गया पदवी ही प्रयुक्त होता आ रहा है, जैसे पात्र,पुजारी, देहारी, बेलसरिया, इन गोत्र के लोग देवी-देवता के कार्यों को करने के लिये नियुक्त किये गये थे, आज भी ये लोग अपने नाम के साथ अपना पदनाम लिखते हैं और इन्ही उप नामों से पुकारा जाना पसंद करते हैं। इसी तरह नायक, मांझी, भण्डारी, समरथ आदि सामाजिक पद थे जो आज भी उपनाम हैं और बघेल, गागड़ा बाकड़ा कुपाल आदि योद्धाओं के पद थे जिन्हे उपनाम के रूप में प्रयोग करके ये जनजाति गर्व महसूस करते हैं।

हल्बा जनजाति के लोगों में किसी भी नेतृत्व के पीछे बहुत जल्दी संगठित होने की प्रवृति होती है। वे जहाँ भी होते हैं, सभी एक साथ मिलकर रहते हैं। अपनी निष्ठा और विश्वसनीयता के कारण वे बस्तर में राजा के अंगरक्षक बनकर आये और राज आज्ञा से अच्छे-अच्छे राजपदों में बस्तर के विभिन्न क्षेत्रो में पदस्थ किये गये। ये जहाँ भी बसाये गये वहाँ अपने रिश्तेदारों के साथ जाकर के बसे। यही कारण है कि हल्बा जनजाति जिस गाँव में है वहाँ उनकी संख्या अधिक है। इनके समाज में सामाजिकता का बहुत ही कड़ाई से पालन किया जाता है, इसलिये इस समाज मे सामाजिक बुराई कम देखने को मिलती है। हल्बा विद्रोह के बाद एक समय ऐसा आया कि लगता था इस समाज का अस्तित्व मिट जायेगा, परन्तु इनकी चालाकी एवं परिस्थिति के अनुरूप कार्य कुशलता ने इन्हे और अधिक संगठित कर स्थापित किया। हल्बा जनजाति का बस्तर में आगमन जहाँ से भी हो परन्तु ये जनजाति घुमन्तु जाति है और इनका फैलाव सभी जगह है। बस्तर के सभी क्षेत्रों के अलावा महाराष्ट्र, उड़ीसा में भी ये लोग आबाद है।

हल्बी बोली

हल्बी बोली बस्तर की जन भाषा है, यहाँ का प्रत्येक निवासरत व्यक्ति इसे बोलता और समझता है। नारायणपुर के अलावा यह अबूझमाड़ क्षेत्र में बोली और समझी जाती है। बस्तर में हल्बी बोली का आगमन छिन्दक नागवंश काल माना जाता है, परन्तु यह अपनी भाषिक योग्यता के कारण तबसे आज तक बस्तर की सम्पर्क भाषा बनी हुई है। सभी भाषा लोगों के द्वारा इसे बोले जाने के कारण चालुक्यवंश काल में इसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त था। बस्तर के सभी क्षेत्रों में यह समान रूप से बोली जाती है, तब इस पर क्षेत्रीयता का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। जब भी दो भिन्न भाषा-भाषी लोग आपस में बात करते है तब वे हल्बी में ही बात करते है। हल्बी हल्बा जनजाति की मातृ भाषा है परन्तु इसे यहाँ निवासरत अन्य जाति के लोग भी अपनाये हुये है। नारायणपुर क्षेत्र में जातीयता के आधार पर कुछ बोलियां प्रचलन में थी, जिनमें पनारी, कोष्टी, घड़वी, अन्दकुरी, आदि जिन्हे इन जाति के लोगों द्वारा बोला जाता रहा है, परन्तु आज ये बोलियां प्रचलन में नहीं हैं, इनका स्थान हल्बी ने ले लिया है। हल्बी आज नारायणपुर में निवासरत कलार, मरार, कोष्टा धाकड़, कुम्हार राउत, केंवट, धोबी नाई, घड़वा और गांडा (गंघर्व) जाति की अपनी बोली बनी हुई है।

हल्बी बोली पर क्षेत्रीयता का प्रभाव स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। यह बस्तर के अलावा दूसरे प्रान्तो में भी बोली जाती है, तब बोलने के ढंग में क्षेत्रीय प्रभाव स्पष्ट झलकता है। महाराष्ट्र में भी हल्बी बोली जाती है, तब इस पर मराठी का प्रभाव तो होता ही है, पर यहाँ यह मराठी की उप बोली कही जाती है। उड़ीसा में बोली जाने वाली हल्बी में उड़िया का प्रभाव होने के कारण भतरी एक अलग बोली का जन्म हुआ, भतरी को हल्बी की उपबोली माना गया है, परन्तु कुछ विद्धान ऐसा नही मानते वे भतरी को स्वतंत्र बोली मानते हैं। जगदलपुर के आस-पास बोली जाने वाली हल्बी में भतरी का प्रभाव देखा जा सकता है। हल्बी जब छतीसगढ़ी के सम्पर्क में आई तब एक नई बोली का जन्म हुआ जिसे विद्धानों

ने नाम दिया बस्तरी। यह सम्पूर्ण बस्तर के कस्बाई क्षेत्रों में बोली जाती है। कांकेर, केशकाल, भानुप्रतापपुर, अंतागढ़, नारायणपुर क्षेत्र में इसका प्रचलन अधिक है। मध्य बस्तर की हल्बी को मानक हल्बी बोली मानी जाती है, कारण यहाँ किसी अन्य भाषिक क्षेत्र की सीमा नही पड़ती इसलिये यहाँ की हल्बी अपने मूल रूप में विद्यमान है। कोण्डागाव, माकड़ी, बड़ेडोंगर, छोटेडोंगर, बयानार, मर्दापाल, भानपुरी, चित्रकोट आदि क्षेत्रों में बोली जाने वाली हल्बी को मानक हल्बी माना गया है।

हल्बी बोली को भाषाविद् पूर्वी हिन्दी की उपबोली मानते हैं, इसका संबन्ध भारोपिय भाषा परिवार से है। हल्बी भाषा विज्ञानियों का मानना है कि हल्बी व्याकरण सम्मत बोली है, इसमें १० स्वर और ३३ व्यजंन है। यह अपने आप में एक सम्पूर्ण बोली है, जिसका समृद्ध लोक साहित्य है। हल्बी के लोक गीतों का अतुल्य भण्डार है, इनमें लेजा गीत, मारीरसोना, धनकुल और छेरता गीत प्रमुख है। हल्बी का लोक साहित्य वाचिक परम्परा में समाहित है, लोक पहेलियाँ का प्रयोग तो हल्बी भाषी लोग बात-बात में करते है। लोक कथा और लोक गाथाएँ भी कही और सुनी जाती है। जो बोली केवल जातिय तथा क्षेत्रीय आधार पर बोली जाती रही है वो अपनी भाषिक क्षमता और माधुर्य भाव के कारण साहित्यकारों की प्रिय बन गई। सबसे पहले हल्बी साहित्यकारों का ध्यान उसकी वाचिक कथाओं की ओर गया और लोक कथाओं का हिन्दी में अनुवाद, लोक गीतों का अनुवाद करने के साथ गीत, कविता, कहानी, निबन्ध, व्यंग आदि विद्याओं में लिखना निरन्तर जारी है।

हल्बी साहित्य लेखन की शुरूआत ठाकुर पूरनसिंह, गणेशी प्रसाद सांमन्त, गणेश प्रसाद पानीग्राही, पं. गंगाधर सामन्त, पं.देवीरत्न अवस्थी "करील", रघुनाथ महापात्र, आदि साहित्यकारों ने किया। इस श्रृखंला को आगे बढ़ाया स्व. लाला जगदलपुरी ने हल्बी में वाचिक परम्परा को शब्दों में सजाया उनके द्वारा लोक कथा संग्रह, हल्बी लोक कथाए, बस्तर की लोक कथाए, बस्तर की मौखिक कथाए, पंचतंत्र का हल्बी अनुवाद, प्रेमचन्द चो बारा कहनी, बुआ चो चिठीमन, रामकथा आदि का हल्बी अनुवाद प्रस्तूत किया। इसी समय ठाकुर रामसिंह जी ने अपने पिता ठाकुर पूरनसिंह की विरासत को आगे बढ़ाते हुये रामचरित्र मानस और श्रीमद्भगवतगीता जैसे महा काव्य का हल्बी

में अनुवाद किया। इस कड़ी में सबसे उल्लेखनिय कार्य किया कोण्डागाँव के मूर्धन्य साहित्यकार हरिहर वैष्णव जी ने उन्होने हल्बी लोक महाकाव्य लछमी जगार, धनकुल, आठे जगार, और ९५ दिन तक चलने वाली बाली जगार का हल्बी और हिन्दी अंग्रेजी में अनुवाद किया, बस्तर के लोक साहित्य, बस्तर के तीज-त्यौहार, राजा और बोल कन्या, बस्तर का आदिवासी एवं लोक संगीत, बस्तर लोक हस्तशिल्प उनकी अमर कृति है। श्री सोनसिंह पुजारी जी का हल्बी गीतों का काव्य संग्रह अन्धार चो देश प्रकाशित कृति है। हल्बी में अभी भी बहुत से काम हो रहे है, श्री रूद्र नारायण पानीग्राही, विक्रम सोनी, सुभाष पाण्डेय, यशवंत गौतम, जोगेन्द्र महापात्र जोगी, दादा जोकाल (सिकन्दर खान), घनश्याम नाग,खेम वैष्णव बलवीर कच्छ, नारायण बघेल, नरेन्द्र पाढ़ी, गिरजानन्द सिंह ठाकुर श्रीमती शकुनतला तरार, शिवकुमार पाण्डेय आदि रचना धर्मी साहित्य रचना कर रहे हैं। हल्बी बोली का एक समृद्ध साहित्य विद्यमान है।

गोंडी और मुरिया जनजाति

नारायणपुर आदिवासी बाहुल्य जिला है, यहाँ गोंड जाति की उप जनजाति मुरिया और अबूझमाड़िया जनजाति निवासरत है। मुरिया जनजाति बस्तर के प्राय: सभी क्षेत्रों में निवास करती है और क्षेत्रीयता के आधार पर इनकी बोली-भाषा, खान-पान, रहन-सहन आदि में कुछ अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है। नारायणपुर क्षेत्र में निवासरत मुरिया, अबूझमाड़िया, ये दोनो जनजाति यहाँ आदिकाल से निवास करते आ रही है। बस्तर में आदिवासियों को मुरिया कहा जाता है जो इनका जाति सूचक शब्द है। यह गोंडी शब्द मुठिया का अपभ्रंश रूप है, जिसका हिन्दी में अर्थ पुरखों के जमाने से होता है। वैसे भी यहाँ निवासरत आदिवासी समाज अपने आप को मुनेटार कहलाना पसन्द करता है, जिसका अर्थ पहले जमाने से या आदिकाल से निवास करने वाले होता है। इसका यह मतलब हुआ कि नारायणपुर या बस्तर में आदिवासी समाज आदिकाल से निवास करता है,यही यहाँ का मूल निवासी है।

यहाँ के आदिवासी समाज के बालसाय वड्डे और लक्ष्मण दुग्गा बताते है कि जब जलप्लावन जिसे गोंडी में "बूम बूड़ना" कहते हैं, हुआ था तब भाई बहन एक तुमा (जिसमें आदिवासी समाज पेज सल्फी रखता है) के अन्दर थे और पानी में तैर रहे थे। वे अन्दर से अपने पिता को आवाज देते थे तब तुमा के मुँह से हवा टकराकर हुँकार की आवाज आती थी, भाई बहन को लगता था कि उनका पिता बाहर है। इसके बाद जब पृथ्वी का उत्थान हुआ तुमा उससे टकराकर फूट गया तब दोनो भाई बहन बाहर निकले। उन्होने बाहर आकर देखा कि केवल पानी पेड़ पौधे और पहाड़ थे। वे भटकने लगे तब उन्हे भूख लगी, बताते हैं कि खाने के लिये भाई मछली पकड़ रहा था, तो उसके हाथ में कैना (जलपरी या जल की देवी) लगी जिससे वह शादी किया और इसी तरह उसकी बहन जंगल में भटक रही थी तो उसकी कौडो (लड़के की पवित्र आत्मा) से भेंट हुई वह उससे शादी कर ली। इस तरह इनकी सन्ताने विषम गोत्रीय होने से इनके मध्य विवाहोत्तर संबंध बना और यही सम्बंध आज भी आदिवासी

समाज में जारी है। सम गोत्राय विवाह सम्बन्ध इस समाज में वर्जित है, इनके वंश वृद्धि से आदिवासी समाज बना, इसलिये आदिवासी अपने आप को इस भूमि के मूल निवासी मानते है।

प्रकृति आधारित जीवनयापन करने वाला आदिवासी जन्म के बाद जब होश सम्हालता है, तब सबसे पहले उसका सामना प्रकृति से होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक उसकी सारी आवश्यकता की पूर्ति प्रकृति से होती है। उसके आस्था विश्वास और परम्पराओं का प्रकृति के साथ इस कदर घाल-मेल हो गया है कि इनको अलग कर पाना असंभव है। नारायणपुर (अबूझमाड़) का आदिवासी समाज अपनी आवश्यकता की पूर्ति प्रकृति से प्राप्त नि:शुल्क उपहार और अपने श्रम से उपजाये उपज से करता है। वह श्रम से कोदो, कुटकी मंडिया, कोसरा (धान्य प्रजाति की उपज) तथा धान, उड़द, अलसी, कुल्थी,सरसों आदि अपनी बाड़ी या खेत में उपजाता है। इन उपज का वह स्वयं उपयोग करता है परन्तु उसका मुख्य व्यवसाय वनोपज संग्रहण करना है। जो उपज उसके बाड़ी और गाँव के आस-पास मिलते हैं उन्हे लघुवनोपज और जो जंगल से प्राप्त होता है उसे वनोपज कहते है। हर्रा, बेहड़ा, आँवला, सालबीज, कोसा (काऊन) शहद, औषधीय उपज वनोपज और आम, ईमली, महुआ टोरा, तेन्दूपत्ता आदि लघुवनोपज के अन्तर्गत आते हैं। एक दो सप्ताह इन उपजो को संग्रहण कर सुखा लिया जाता है, फिर उस अपने गाँव के आस-पास लगने वाले हाट बाजार में बेंच कर क्रय शक्ति अर्जित करते हैं, इससे वे अपनी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। हाट-बाजारों का आदिवासी समाज के जीवन में बहुत ही महत्त्व है, इनमें अपने द्वारा संग्रहित उपज तो वह बेचता ही है, तेल, कपड़ा, नमक, साबुन जैसी जरूरत के सामान भी खरीदता है। हाट-बाजार में आदिवासी परिवार के लोग कुछ न कुछ सामान लेकर अवश्य जाते हैं। यहाँ वे अपने सगा-सहोदर से मिलते हैं, सुख-दु:ख बांटते हैं, सूचना का आदान प्रदान होता है। प्रकृति के बीच रहने वाले इन आदिवासियों के जीवन में मनोरंजन के अवसर बहुत ही कम आते हैं।, इसलिये इन हाट-बाजारों में लोगों के साथ मिलना-जुलना के अलावा मनोरंजन भी हो जाता है। अपने-अपने साथ लाये हुये सल्फी (ताड़ी के समान रस) मंद (शराब) लांदा (चाँवल से बनी शराब) को एक गोल घेरे में बैठकर सभी लोग पीते हैं, सुख-दु:ख की बाते करते हैं।

बस्तर का आदिवासी समाज सामुदायिक जीवन-यापन करता है, वह अपना प्रत्येक कार्य एक साथ समूह में करता है, जिससे लगता है कि वह कोई उत्सव मना रहा है। उत्सव प्रेमी आदिवासी अपने व्यक्तिगत कार्यो को भी सामूहिक रूप से इतनी खूबसुरती से करता है कि देखने वालों को लगता है गाँव में कोई त्यौहार हो रहा है। इसे बैठीया बनाना कहा जाता है, एक व्यक्ति जिसका काम होता है, वह किसी बकरा काटकर माँस का भाग रखता है, उस भाग को लेने वाला निर्धारित दिन उस व्यक्ति के काम करने के लिये वचनवद्ध होता है। इसी तरह किसी व्यक्ति का दूसरे गाँव में काम होता है, तब वह जानकार लोगों से निवेदन करता है, उनके सम्मान में शराब परोसता है, शराब पीते हुये सब सलाह करते हैं तथा उस काम को सभी मिलकर करते हैं। आदिवासी समाज में कोई बड़ा या छोटा नही होता सबकी समान भागीदारी होती है। सामाजिक कार्यो को करने से पहले सामाजिक बैठक आयोजित किये जाते हैं और सामूहिक निर्णय लेकर काम किया जाता है। इसी तरह धार्मिक कार्यो को करने के लिये बैठक कर देवताओं की अनुमति ली जाती है, तब उस कार्य को किया जाता है। आदिवासी समाज अपने काम को करने के पहले देवताओं से अनुमति जरूर लेता है और देवता के बताये अनुसार उस काम को करता है।

प्रकृति आधारित जीवन-यापन करने वाला आदिवासी समाज, उत्सव प्रेमी होता है, वह कोई भी कार्य को इस ढंग से करता है कि त्यौहार जैसा लगे। इन कार्यो को वह अपने धार्मिक आस्था से इस कदर समाहित कर लिया है कि उसमें सभी लोगों की समान भागीदारी हो। सबसे पहले इस समाज का त्यौहार अमुस तिहार (अमावस्या या हरियाली) होता है, इसके बाद वह सबसे बड़ा त्यौहार नवाखानी का मनाता है। बस्तर के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में इसे मनाया जाता है, यह लगभग डेढ़ माह तक चलता है। फिर पहुँचानी या बोहरानी, दीवाड़ (दीपावली), उड़िद सेमी जोगानी (पुपुल साड़) माटी तिहार या आमा जोगानी मनाया जाता है। आदिवासी समाज अपने त्यौहारों में कोई न कोई उपज की जोगानी करता है। जोगानी का अर्थ जागृत करना होता है। जोगानी में आदिवासी समाज किसी भी उपज को चाहे वह प्रकृति से प्राप्त नि:शुल्क उपहार हो या जिसे वह अपने श्रम से उपजाता है, उसे सबसे पहले अपने देवी-देवताओं में अर्पित करता है, फिर उसे स्वयं ग्रहण करता है, इसे जोगाना कहते है। जोगाने से पहले किसी भी उपज को तोड़ना खाना तो क्या उसे छूना तक वर्जित होता है।

इसके पीछे आदिवासी समाज की मान्यता है कि जोगाने से पहले किसी भी उपज को तोड़ने खाने से गाँव में देवी प्रकोप होगी, जिससे महामारी फैलेगी, या शेर किसी पालतू पशु को मार कर खा जायेगा, ये सब देवताओं की नाराजगी से होगा। ये सब नियम उनके पुरखों ने बनाये है, जिसे वह आज भी पालन करता आ रहा है। इसके पीछे उसके पूर्वजों की सोच रही कि प्रकृति से प्राप्त फसल पर सबका अधिकार होता है, यदि इस प्रकार के नियम नही बनाये जाते तो लोगों में स्वेछाचारिता के कारण उन फसलों का कच्ची अवस्था में तोड़ने की प्रवृति होती और फसल खराब हो जाता। इन उपायों को करने से उपज को फलने-फूलने का प्रर्याप्त अवसर मिलता है जिससे उसकी उपयोगिता बनी रहती है और उसके बीज परिपक्व होकर अच्छी उपज देते हैं। इस तरह आदिवासी समाज के त्यौहारों का धार्मिक आस्था से गहरा सरोकार होता है।

गोंडी बोली

आदिवासी समाज जिस तरह अपनी उत्पत्ति आदिकाल से मानता है उसी तरह वह अपनी बोली गोंडी को भी आदिकाल से व्यवहार में ला रहा है, ऐसा मानता है। प्रकृति के साथ आदिवासियों के पुरखों ने अपनी बोली स्वयं ही बना ली होगी, जिसे वे आज भी बोलते और समझते है। विद्वानों के मतानुसार सबसे पहले प्राकृत भाषा को व्यवहार में लाया गया था, इसका अर्थ यही हुआ कि प्रकृति के ध्वनियों से आदिकाल में भाव अभिव्यक्ति की जाती रही होगी और इसी से प्राकृत भाषा बनी होगी। इसी से वैदिक संस्कृत फिर संस्कृत और इसके अपभ्रंश से अन्य भाषा बनी। ये सब भाषा आर्यो के द्वारा अपनाई गयी, जिसका सर्वागींण विकास हुआ। इन भाषाओं में वेद, पुराण शास्त्रों की रचना हुई। प्राकृत भाषा से ही गोंडी का भी जन्म हुआ जिसका संबंध द्रविड़ भाषा परिवार से है। आदिवासी विद्वानों का मत है कि आर्यो की उपेक्षा के चलते गोंडी का विकास उस तरीके से नहीं हो पाया जिस तरह से अन्य बोलियों का विकास हुआ। गोंडी आज भी उसी तरह से बोली जाती है, जिस तरह से आदिकाल के लोग बोला करते थे। गोंडी द्रविड़ भाषा परिवार की बोली है इसमें १० स्वर और ३३ व्यजंन होते है। गोंडी के विद्वानों ने इसकी लिपी बनाई है और व्याकरण भी लिखा जा चुका है।

नारायणपुर और अबूझमाड़ में रहने वाले आदिवासियों को दो जनजाति माना जाता है, पर इनमें क्षेत्रीयता का अन्तर हैं। इनके बीच आपस मे रोटी-बेटी का संबंध है। इनके गोत्र, कुलगोत्र में समानता है। देवी-देवता, पूजा पद्धति, रहन-सहन, खान-पान, रिस्तेदारी आदि सभी कुछ समान है। इन्हे अध्ययनकर्ताओं ने अपनी सुविधा के लिये अलग-अलग किया है। मुरिया जनजाति की बोली और अबूझमाड़ियों की बोली दोनो समान है, केवल बोलने के लहजे मे फर्क है। अबूझमाड़ियों द्वारा बोली गई भाषा को मुरिया जनजाति के लोग आसानी से समझ जाते हैं और आसानी से बोल भी लेते हैं। इसी तरह मुरिया जनजाति के लोग अबूझमाड़ियों से आपस में बातचीत कर

लेते हैं बिना परेशानी के। हम यह कह सकते है कि मुरिया और अबूझमाड़िया एक ही बोली बोलते हैं और वह गोंडी है। गोंडी बोली की वाचिक परम्परा काफी समृद्ध है। लोक गीत तो जन्म से लेकर मृत्य तक गाया जाता है और इन गीतों के रस्म के अनुसार नाम तय है। जैसे पुटुल पाटा (जन्म गीत) सटींग पाटा (छटी गीत) माहला पाटा (सगाई गीत) मरमिंग पाटा (विवाह गीत) और आमुर पाटा (मृत्यु गीत) आदि। इसी तरह देव आराधना के भी लोक गीत हैं जैसे पेन पाटा (देव गीत) करसाड़ पाटा (देव आव्हान गीत) ढोल पाटा (देव आराधना गीत) कोकरेंग पाटा (देव उपासना गीत) आदि इसके अलावा भी खेल गीत, हुलकी पांटा, छेरता गीत, गारी गीत गाये जाते हैं।

गोंडी बोली में लोक कथायें आदिकाल से कही सुनी जाती रही हैं, वाचिक परम्परा में समाहित ये कथायें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है। गोंडी कहानियाँ कविता की तरह गाकर सुनाई जाती है। इन कहानियों को सुनने वाला भी उसी राग में जिस राग में ये सुनाई जाती है हुँकारू भरता है। खेत में काम करने के समय, रखवाली करने के समय, घोटुल में या गाँव से बाहर काम में गये लोग रात के समय इन कहानियों को कहते है। गोंडी लोक कथायें हिन्दी में अनुवाद की जा रही है। गोंडी बोली बस्तर से बाहर भी बोली जाती है। इसकी लिपि बना ली गई है और साहित्य भी रची जा रही है। महाराष्ट्र मंडला जबलपुर बालाघाट में गोंडी बोली पर बस्तर के लिहाज से ज्यादा काम हो रहा है। गीत, कविता, कहानी तो बस्तर में भी लिखी जा रही है परन्तु अभी कोई ठोस काम होना बाकी है। स्व. गयाप्रसाद तिवारी ने रामचरित्र मानस के उत्तर काण्ड का अनुवाद गोंडी बोली में किया था जो अप्रकाशित रहा। पीलसाय पट्टावी ने भी गोंडी में काम किया है जिसके प्रकाशन की प्रतीक्षा है। रामचन्द्र शुक्ल, एम. मरकाम, जयमति कश्यप उग्रेस मरकाम आदि गोंडी बोली पर काम कर रहे हैं। इन सबके बावजूद इसमें और काम किया जाना अपेक्षित है।

संदर्भ ग्रंथ-:
बस्तर : लोक कला और संस्कृति लेखक स्व. लाला जगदलपुरी
बस्तर की लोक कथायें संपादक स्व. लाला जगदलपुरी – हरिहर वैष्णव

नारायणपुर (अबूझमाड़) के ऐतिहासिक स्थल पलंग डोंगरी (पोल मट्टा)

आदिवासी समाज के लिए कोई स्थल इतना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि उनके धार्मिक आस्था और विश्वास उससे जुड़ते चले जाते हैं और वह स्थान उनके लिए पवित्र जगह बन जाती है। ऐसी ही एक जगह है नारायणपुर के पश्चिम में दो कि.मी. की दूरी पर पलंग गुडरी है। यह छोटी सी पहाड़ी है जिसका व्यास लगभग एक दो कि.मी. तक विस्तारित है। ऊपर का भाग सपाट समतल है और इस समतल भाग में खण्ड खण्ड बना है, जिनमें देवताओं को स्थान दिया गया है। इस जगह पर एक कुँआ और एक तालाब भी है। तालाब को गोण्डी में पेन बन्धा (देव तालाब) और कुँआ को पेन सुँआ (देव कुँआ) कहा जाता है। इस स्थान को देवताओं का विश्राम स्थल और मिलन स्थल माना जाता है। इसलिये यह आदिवासी समाज के लिए बहुत ही पवित्र जगह है और गोण्डी में इसे "पोल मट्टा" अर्थात "पूजा पहाड़ी कहते हैं। वस्तुतः यह "पोलंग मट्टा" है, पोलंग गोंडी शब्द का अर्थ दखल रहित और मट्टा का छोटी पहाड़ी है। इस शब्द को अगोण्डी भाषी लोग पोलंग को पलंग और मट्टा का हिन्दी अर्थ पहाड़ी को हल्बी में गुडरी बोलने से इसका नाम पलंग गुडरी हो गया। आदिवासी समाज का पोलंग (दखल रहित) से तात्पर्य था कि इस स्थान पर मनुष्यों द्वारा किसी भी प्रकार के काम नही करना है। इस मान्यता का पालन बहुत ही कड़ाई से किया जाता है।

इसके एक स्थान पर पोलंग राव विराजित है, जो यहाँ पर पूर्ण विश्राम की स्थिति में है। ऐसा माना जाता है कि ये देवता अपनी थकान उतारने के लिये यहाँ आते हैं, उनके विश्राम में किसी प्रकार का विघ्न नहीं हो इसलिए इस जगह पर कोई भी कार्य करना वर्जित है। रावबाबा आदिवासी समाज के

रक्षक देव है वे सदा स्थान बदल-बदल कर घूमते रहते हैं, इसलिए जिस जगह पर वे विश्राम करते हैं, वह स्थान आदिवासी समाज और अन्य समाज के लिए पवित्र स्थान हो जाता है। रावबाबा एकान्त प्रिय एवं ब्रम्हचारी देव हैं और ऊचें स्थान पर रहकर सभी जीव की रक्षा करते और जहाँ भी वह स्थान होता है वह पवित्र माना जाता है, वहाँ महिलाओं का जाना सर्वथा वर्जित है। इस मट्टा का नाम गोण्डी में पोलंग अर्थात काम नहीं करने की जगह दिया गया और अपनी सुविधा के अनुसार हल्बी और हिन्दी भाषी इसे पलंग गुडरी कहते हैं।

आदिवासी समाज ने देवताओं की आज्ञा से नारायणपुर को छोटे-छोटे कई परगना में बांटा है, यह स्थान पलंग गुडरी दुग्गाल परगना के अन्तर्गत आता है। प्रत्येक परगना का एक मंडादेव (मुख्यदेव) होता है जो अपने कुल के अन्तर्गत जितने भी देव होते है, उनकी सेवा के लिये एक-एक गाँव देकर उन्हे मान देते है और एक-एक गोत्र के लोगों को उन देवों का सेवादार नियुक्त करते हैं। दुग्गाल परगना के मंडादेव (मुख्यदेव) बुढा देव हैं। उन्होने इस स्थान को जो ग्राम माहका और ब्रहेबेड़ा के संध (सीमा) में स्थित है को माहका के कुमेटी गोत्र के लोगों को दिया है और इन्हे देवी "जैते मालो" का सेवादार बनाकर यहाँ पर इसी देवी को स्थापित किया गया है। देवी जैते मालो बुढ़ा देव की धर्म पत्नी हैं। इसलिए इस जगह का महत्त्व आदिवासी समाज के लिए और भी बढ़ जाता है क्योकि सम्पूर्ण आदिवासी समाज बुढ़ादेव को अपना आराध्य मानता है। बुढ़ादेव के सेवादार दुग्गा गोत्र के लोग हैं, जो कुमेटी गोत्र का समधियान पक्ष (विषम गोत्रीय पक्ष) है। इस क्षेत्र के लोगों का मानना है कि कभी कभार आते-जाते इस गाँव में रूकने और सगा मानने के लिये उनके देवता ने ऐसी व्यवस्था की है। इस प्रक्रिया को हल्बी बोली में पाँय धोवतो ठान (पैर धोने का स्थान) और गोण्डी में काल नोहीना डेरा कहते हैं।

इस जगह को हल्बी भाषी लोग पलंग गुडरी और गोण्डी भाषी पोल मट्टा के नाम से पुकारते हैं। इस स्थान पर एक देवी और स्थापित की गई हैं, जिनको आदिवासी समाज "पूगांर मालो" कहता है। दुग्गाल परगना के बाद अबूझमाड़ का क्षेत्र लग जाता है। जिसका विस्तार महाराष्ट्र की सीमा तक है, इसको "जेटीन परगना" कहा जाता है। इस परगना का मंडादेव (मुख्यदेव)" वेसूर कौडो" हैं और पूगांर मालो इनकी धर्म पत्नी है। इस देवी को पोल मट्टा पर स्थापित करने के बाद आदिवासी समाज ने इनका विग्रंह आंगादेव बनाकर

यहाँ पर एक गुड़ी (मंदिर) बनाया और ब्रहेबेड़ा के लोगों को इस देवी का सेवादार नियुक्त किया। इस देवी को कुमेटी, नुरेटी, कवाची, गावड़े वड्डे गोत्र के आदिवासी मानते हैं और सेवादार ध्रुवा गोत्री लोग को बनाया गया है। माड़ परगना के इस देवी को यहाँ स्थापित करने के पीछे भी आदिवासी समाज का यही आशय था कि जब माड़ क्षेत्र के लोग पहाड़ से उतर कर मैदानी क्षेत्र में आयेगें तो उनके पैंर धोने का एक स्थान (काल नोहीना डेरा) हो। गोण्डी शब्द माड़ का अर्थ पहाड़ होता है। यहाँ आकर वे सगा मानते हैं, ठहरते हैं, एक-दूसरे से मिलते हैं, सुख-दुख बाटते हैं और फिर अपनी दुनिया में लौट जाते हैं। माड़ के लोगों का यहाँ नमक, कपड़ा और तेल की जरूरत को पूरा करने के लिए आते हैं। ग्राम ब्रहेबेड़ा में अपना बिड़ार (सामान) रखकर आवश्यकता के सामान की खरीददारी करते हैं, सगा मानते हैं और वापस लौट जाते हैं।

पोल मट्टा पलंग गुडरी में स्थापित दोनो देवियों के जातरा (विशेष पूजा) के समय इन दोनों परगना दुग्गाल और जेटीन परगना के देवी-देवताओं को आमंत्रित किया जाता है, तब भी ये लोग आते हैं। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि दुग्गाल परगना के देव कार्यो में करगांल परगना के देव आमंत्रित नहीं किये जाते, न ही करगाल परगना के देव काम में दुग्गाल परगना के देव जाते हैं। इसके पीछे कारण यह बताया जाता है कि बुढ़ादेव और करगाल परगना के मंडादेव (मुख्यदेव) "हाडे हिडमा" राजटेका जिन्हे कोकोड़ी करिया भी कहा जाता है भाई-भाई हैं। एक दिन कोकोड़ी करिया अपने बड़े भाई से मिलने उनके घर जाते हैं, वहाँ उनके बड़े भाई नहीं होते। वे देखते हैं कि पास में बुढ़ा देव का सुन्दर घोड़ा घास चर रहा होता है। कोकोड़ीकरिया अपनी भाभी जैत मालो से घोड़ा में सवारी करने की अनुमति मांगते हैं, तो ये मना करती है। कहती है कि "तुम्हारे भाई इस घोड़े में किसी को सवारी करने नहीं देते"। फिर भी कोकोड़ीकरिया बात नहीं मानते और सवारी करते हैं। उन्हे घोड़ा इस कदर पसन्द आता है कि वे उसे चोरी कर अपने गाँव ले आते हैं। इस बात की खबर जब बुढ़ा देव को लगती है तब वे उसे घोड़ा वापस मांगते हैं मगर कोकोड़ी करिया घोड़ा वापस नहीं करते। इसी बात को लेकर दोनो भाइयों के बीच आज तक द्वेष बना हुआ है और एक-दूसरे के घर दोनो का आना जाना बन्द है।

दोनों परगना की यह दुश्मनी इतनी बढ़ गई है कि एक दूसरे के देव काम मे दोनों मंडा के देवों का आना-जाना नहीं होता है। एक परगना का देव

किसी जगह पर यदि उपस्थित है तो दूसरे परगना का देव उस जगह नहीं जायेगा। कभी-कभी विचित्र स्थिति निर्मित हो जाती है नारायणपुर में एक स्थान है जो तीनों परगना, करगांल परगना दुग्गाल परगना और बारा जोड़ियान परगना का संधि स्थल है। इस जगह को "देव कोठार" कहते हैं। यहाँ किसी देव कार्य के पहले सभी देवता एकत्रित होते हैं। वर्तमान में यह जगह महावीर चौक के पीपल वृक्ष में स्थित है। इस जगह पर कभी भी एक साथ करगाल परगना और दुग्गाल परगना के देव एकत्रित नहीं होते हैं। मंडादेव के देव काम में उसके अन्तर्गत आने वाले सभी देवों को निमंत्रण दिया जाता है। इसके लिये उस गाँव के लोगों की एक एक टोली बना दी जाती है जिस गाँव के मंडादेव हैं। वे लोग देवता का प्रतीक तोड़ी (दुदुंभी) लेकर प्रत्येक गाँव से बजाते हुये निकलते है। इस आवाज से सबको ज्ञात हो जाता है कि "पेन जाड़िंग"(देव निमंत्रण) वाले हैं और देव काम के लिये निमंत्रण दे रहे हैं। इस टोली को नारायणपुर स्थित देव कोठार तक आना ही पड़ता है। कभी-कभी दोनों परगना के टोली एक साथ इस जगह पहुँचते हैं तो इनका आपस में झगड़ा हो जाता है। इस तरह की अप्रिय स्थिति कई अवसरों पर निर्मित हुई है इससे बचने का प्रयास किया जाता है।

पोल मट्टा या पलंग गुडरा बुढ़ादेव जो आदिवासियों के आराध्य बुढ़ादेव की धर्मपत्नी का स्थान होने से उनका आना-जाना यहाँ होते ही रहता है। बुढ़ाबाबा की सवारी घोड़ा है और इस मट्टा में एक स्थान है जहाँ घोड़ा बान्धा जाता था, इस जगह पर घोड़े का जीन, देवता की मूर्ति और एक फरसा रखा हुआ था जो आदिम समाज में प्रचलित मान्यताओं का समर्थन करते हैं कि यहाँ विश्राम करने बुढ़ाबाबा आते हैं। दुग्गाल परगना के बुढ़देव के ७ लड़कियाँ १२ लड़के है, और उन सबके बाल बच्चे हैं। वे सभी जैते मालो देवी के जातरा में तो आते ही हैं परन्तु वे सब अपनी नानी या दादी से मिलने आते हैं। दादा-दादी, नाना-नानी से मिलकर अपना सुख-दुख बांटते हैं। यह पहाड़ी सभी देवताओं का मिलन स्थल है। जानकार बताते है कि जब ऐसा अवसर आता है तो लगता है कि इस पहाड़ी में हलचल है और आदिवासी समाज के रक्षक देव कैना (पानी की देवी) कोडो (लड़के की पवित्र आत्मा) रावबाबा ऐसे व्यक्ति को जो इन पर अगाध श्रद्धा रखता है प्रमाण दिखाने के लिये उस जगह लेकर जाते हैं। इन्ही लोगों के द्वारा बताया गया है कि साल भर ऐसे कई अवसर आते है जब इस जगह पर देवता इकठ्ठे होते हैं। आज भी बहुत से ऐसे लोग मौजूद है जिन्होने तोड़ी

और नंगाड़ा बजने की आवाज सुनी है।

यह स्थान आदिवासी समाज की धार्मिक आस्था का केन्द्र है, क्योकि दुग्गाल परगना के मंडादेव की पत्नी का स्थान होने के साथ, जेटीन परगना के मंडादेव की पत्नी का भी स्थान है। इसके अलावा इस जगह पर समय-समय पर दोनों परगना के देव मिलते हैं। यह मिलन देवी जातरा से अलग मिलन होता है। इस मिलन को आदिवासी समाज भी अलौकिक मानता है क्योकि ऐसा देव मिलन देवों के द्वारा ही आयोजित किये जाते हैं। इस समारोह में मनुष्य की भागीदारी नहीं होती है। इसे आदिवासी समाज देवहाट (देवताओं का बाजार) बैठना कहता है। जानकार बताते हैं कि बस्तर के आम बाजारों की तरह यहाँ भी खरीदी-बिक्री होती है। वे देव जो मंडादेव के हर समय सेवा में होते हैं, वे इस हाट में आवश्यक सामानों की बिक्री करते हैं और सब देवता उन समानों को खरीदते हैं। किस माध्यम से संव्यवहार होता है, यह तो ज्ञात नहीं हुआ परन्तु हाट भरने से इस पोल मट्टा के आस-पास बहुत चहल-पहल का एहसास होता है। कई बार ऐसा भी हुआ है कि कोई सिरहा जिसे देव चढ़ता है उस पर देव आरूढ़ होकर उस स्थान पर लेकर जाते हैं। वह देव वहाँ सब कौतुहल देखता है, उस हाट का हिस्सा बनता है, जैसे हाट-बाजार में सब एक-दूसरे से मिलते हैं वह भी सबसे मिलता है। फिर अचानक देव उतरने पर वह अपने आप को अकेला पाता है, उसे लगता है कि वह सपना देख रहा था। ऐसे लोगों के बताये अनुसार ही आदिवासी समाज अपनी धारणा बनाया है।

ऐसी ही एक बार फिर सब देव पोल मट्टा में जमा होते हैं, उस समय जिस प्रकार आदिवासी समाज अपने बीच होने वाले विवाद को बैठककर निपटाता है उसी प्रकार देवगण भी समय-समय पर बैठक का आयोजन इसी स्थान पर करते हैं। यह विवाद प्राय: देवताओं द्वारा एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण करने का होता है। इस प्रकार का विवाद होने पर उसके लिए दण्ड का प्रावधान किया जाता है। आदिवासी समाज के पूर्वज भी ऐसी ही प्रचलित मान्यताओं से सीख लेकर अपनी जीवन पद्धति बनाये थे। जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है।

ऐसे स्थान कहीं-कहीं पर होते हैं, जो आदिवासी समाज के आस्था और विश्वास के केन्द्र होते है, इसलिए इस जगह को ऐतिहासिक माना गया है।

गढ़िया गुडरी

नारायणपुर के पूर्व में बखरूपारा से लगा, उत्तर में एक ऐतिहासिक महत्व का देव स्थल है जिसे गढ़िया गुडरी के नाम से जाना जाता है। आज वर्तमान में इस छोटी पहाड़ी के चारो ओर बस्ती बैठ गई है। इसके किनारे पर एशिया का दूसरे नम्बर का वन काष्टागार स्थित है। इस टेकरी में गढ़ियाबाबा विराजमान हैं। जैसे इनके नाम से ही मालूम होता है कि गढ़िया अर्थात गढ़ने वाला, या बनाने वाला। नारायणपुर गढ़ को बाबा ने गढ़ा है या बनाया है, इसी तरह गढ़या या गढ़ का मुखिया भी अर्थ लगाया जाता है। नारायणपुर के लोग गढ़िया बाबा के ऊपर अगाध श्रद्धा रखते हैं। बाबा गढ़ के मुखिया होने के कारण वे सब प्राणियों की रक्षा करते हैं। ऐसा माना जाता है कि बाबा स्वातिक देव हैं, जो बलि नहीं लेते, केवल नारियल, सुपारी से प्रसन्न हो जाते हैं, इसलिए सभी लोग बाबा को मानते हैं।

गढ़िया बाबा के अवतरण के विषय में एक कहानी कही जाती है जिसे "राण्डी माय टूरा बेटा" के नाम से जाना जाता है। दादी और नाती के सम्बन्ध को बताने के लिए हल्बी मे इस शब्द को मुहावरा के रूप में प्रयोग किया जाता है, जिसका भावार्थ है कि जिस बच्चे का दादी के सिवाय और कोई नही है। इस कहानी में भी दादी और उसके पाँच साल का नाती गढ़िया बाबा हैं, इसलिए इसका नाम "राण्डी माय टूरा बेटा" है। बात बहुत पुरानी है उस समय नारायणपुर का यह क्षेत्र बीहड़ था और इस समय नारायणपुर का साप्ताहिक बाजार कुम्हार पारा के पास चंडीबड़ में लगता था। प्रति सप्ताह लगने वाला इस बाजार से एक बच्चा गायब हो जाता था, लोग परेशान थे। सब तरह के उपाय किये गये, देव बैठाये अपने इष्ट देवी, ग्राम देवी, क्षेत्र के पाट देव सभी से गुहार किया गया, परन्तु इसका हल नहीं निकला। ग्रामवासी मन बना लिये की अब यह जगह को छोड़ना पड़ेगा। गाँव वीरान होने की नौबत आ गई। इस समय बीहड़ जगंल होने से प्राय: पारद (शिकार) खेलने का चलन था, एक बार गाँव के लोग शिकार खेलने बहुत दूर निकल गये, उन्होंने वन में एक कौतुक देखा। उस बीहड़ वन में लगभग एक सौ साल की बुढ़िया बैठी है और

पाँच साल का बच्चा पास में खेल रहा है। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होने उसके पास जाकर पूछा " ऐ माई तुम कौन हो और इस बीहड़ जंगल में क्या कर रही हो?तब उस बुजुर्ग महिला ने बताया कि "उसके पूर्वजों उसे यहाँ रहने का आदेश दिया है, इसलिए वह अपने नाती के साथ यहाँ रह रही है"

गाँव वालों को और भी आश्चर्य हुआ कि इस घने वन में हम एक साथ होने के बाद भी डरते हैं और यह अकेली बूढ़ी महिला एक अबोध बालक के साथ कैसे रह रही है? अभी वे लोग विचार कर ही रहे थे कि वह बूढ़ी महिला बोली "तुम लोग हमारे लिये फिकर मत करो हमारे पास पुरखों की शक्ति और अस्त्र-शस्त्र है, उसके बल पर हम यहाँ रह रहे हैं।" उसने उनकी शंका को दूर करने के लिए पास में रखा हुआ झापी खोलकर दिखाया (झापी, बाँस के कमची से बना संदूक है जिस पर ढक्कन होता है और ताला भी लगाया जा सकता है।) उसमें कुछ शस्त्र और देवता के पहनने वाले कपड़े रखे हुये थे। इन सब बातों पर गाँव के लोगों को विश्वास नही हुआ, उन्होंने बुढिया से कहा " हम तुम्हारे पुरखों से मिलना चाहते हैं हमारे गाँव का भी एक काम है। "बुढ़िया ने कहा उनसे मिलने की जरूरत नहीं है, मुझे काम क्या है बताओ? यह सुनकर ग्रामवासी ने अपनी परेशानी बताया कि कैसे प्रति सप्ताह बाजार से एक बच्चा गुम हो जाता है। तब बूढ़ी माई ने अपने नाती को देव बिठाया और उससे इसका कारण पूछा साथ में निदान भी। उस बालक में आरूढ़ देव ने बताया कि " एक शरारती देव की यह करनी है मेरे सामने उसकी एक नही चलेगी मैं उसे काबू में कर लूगां "। उस देव के कथन पर विश्वास कर गाँव वालों ने कहा कि "हमे इस परेशानी से मुक्ति दिला दो तुम जो कहोगे हम मानेगें" कहकर गाँव वाले वापस आ गये।

इस बात को कुछ माह बीत जाने के बाद गाँव के लोगों ने महसूस किया कि उनके बाजार से बच्चा गुम हाने का सिलसिला खत्म हो गया है। लोगों ने विचार किया कि यह उस बुढ़िया के पुरखों के देवों का चमत्कार है। गाँव के लोग उपकार मानने के लिए सेवा चाँवल, फूल-पान, नारियल आदि लेकर सभी महिला-पुरूष उस जगह पहुँचे जहाँ वह बूढ़ी माँ विराजित थी। सेवा चाँवल अर्पण कर सभी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि "हे देव अपके पुरखों की कृपा से हमारा संकट टल गया है, अब हमारे लिये क्या आज्ञा है?आप जो भी बलि या पूजा कहेगें हम देने को तैयार हैं।" तब उस बुढ़ी महिला ने फिर अपने

नाती को देव बैठाया, उस बालक में आरूढ़ देवता ने कहा " मुझे नरबलि पशुबलि या किसी भी प्रकार की बलि नहीं चाहिये, मैं धर्म का देवता हूँ तुम्हारे गाँव में आपदा लाने वाले देव को मैने बस में कर के उसे संकल में बाँध दिया हैं अब वो तुम्हे कभी भी तंग नहीं करेगा। मैं तुम्हारे सेवा से प्रसन्न हूँ यदि तुम सब मेरी सेवा करना चाहते हो तो मेरा एक मंदिर (गुड़ी) बना दो, मेरे साथ चलो स्थान मैं दिखाता हूँ" इस तरह सब ग्रामवासी उस बालक पर आरूढ़ देवता के पीछे चलने लगे। वर्तमान समय में जिसे आज पटेलपारा कहा जाता है वहाँ एक स्थान पर सरई (साल) वृक्ष था। देवता ने उसी स्थान में टंगिंया मारकर चिन्हाकिंत किया। गाँव के लोगों ने बहुत ही श्रद्धा से उस स्थान पर उस देवता का मंदिर (गुड़ी) बनाया और देवता और उनके पूर्वजों की झापी को स्थापित किया।

इस कथा का श्री युगल प्रसाद देवागंन विस्तार करते हुये बताते थे, नारायणपुर के चंडीबड़ के पास एक सेमल का वृक्ष है उसी में बच्चों को गायब करने वाला देव का वास था। जिसे गढ़िया बाबा ने अपने मंत्र-तंत्र शक्ति से अपने वश में कर लिया और गाँव के बीच के सेमल वृक्ष में उल्टा लटका दिया। वह देव वास्तव में महाभारत काल में चित्रसेन गंधर्व कुल के थे और गढ़िया बाबा उस काल के अर्जुन (नर नारायण रूप) माने जाते हैं। बाबा ने विचार किया कि इस देव की भी पूजा होनी चाहिये इसलिये गंधर्व जाति के अन्दकुरी (दलित समाज) के व्यक्ति को इनका सेवादार बनाया। ताकि इस देव को अपने वश में रख सके और देव की सेवा भी होती रहे। (इति गढ़िया पुराण)

इस प्रकार गढ़िया गुडरा एक ऐतिहासिक स्थल है जिसका अपना एक अलग महत्त्व है।

राव डोंगरी (रावघाट)

नारायणपुर के उत्तर में अन्तागढ़ मार्ग पर १७कि'मी. की दूरी में स्थित है राव डोंगरी, इस स्थान को गोण्डी भाषी राव मट्टा हल्बी बोली में राव डोंगरी और प्रशासकीय तौर पर रावघाट कहा जाता है। खनिज सम्पदा से भरपूर इस पहाड़ी पर लोह अयस्क का अकूत भण्डार है। पहाड़ी की तलहटी से गुजरती सड़क खाई में बहती कलकल करती मेंडकी नदी और सघन वन, इस जगह को ऐतिहासिक होने के साथ मनोहारी बना देते हैं। इन सुरम्य वादियों में आदिम समाज के रक्षक देव रावबाबा विचरण करते हैं और यह उनका प्रिय स्थान है। वे यहाँ अपने पूरे संसाधनों के साथ विराजित है। यह स्थान आदिवासी समाज के अलावा अन्य समाज के लोगों के लिए आस्था का केन्द्र है। नारयणपुर-अन्तागढ़ मार्ग पर होने से सभी मुसाफिर सभी सवारी गाड़ी यहाँ स्थापित रावबाबा को रूककर प्रणाम करने के बाद ही आगे बढ़ते हैं। इस पहाड़ी के दोनो ओर तीन चार कि.मी. तक सर्पीली सड़क होने से एवं उतार-चढ़ाव उतार होन से बोलचाल में इसे राव घाट नाम दिया गया, जो आज प्रचलनशील है।

इस पहाड़ी के बहुत ऊंचे में रावदेव बाबा के स्थापित होने से यहाँ से वे नारायणपुर के पूरे क्षेत्र को देख सकते हैं। जैसे रावदेव बाबा के विषय में सर्वविदित है कि वे आदिवासी ही नही अन्य समाज के भी रक्षक देव हैं। वे

जहाँ भी रहते हैं, वह स्थान निर्जन वन या पहाड़ी क्षेत्र होता है। क्योकि बाबा एकाकी और ब्रम्हचारी देव हैं, उन्हें किसी भी प्रकार का व्यवधान पसंद नहीं है। ऐसे स्थान में जहाँ रावबाबा विराजित होते हैं, वहाँ औरतों का जाना सर्वथा वर्जित है। इसलिये पहले बाबा को वर्तमान मंदिर के किनारे विराजित किया गया था, परन्तु आवाजाही बढ़ जाने से तथा अनजाने में महिलाओं के उस जगह में आने-जाने से उस जगह से बाबा का स्थान हटाकर वहाँ से बायीं ओर थोड़े ऊंचे में स्थान दिया गया था, मगर वहाँ भी लोगों की आवाजाही होने लगी तब स्थान को राव डोगंरी के शीर्ष पर स्थापित किया गया। नारायणपुर से अन्तागढ़ के बीच यात्रा करने वाले यात्री आते-जाते बाबा को अपनी यात्रा शुभ होने के लिये अगरबत्ती, नारियल अर्पित करते हैं। यहाँ चढ़ाये गये प्रसाद को केवल पुरूष वर्ग ही ग्रहण करते हैं, महिलाओं को इसे नही दिया जाता, जानकारी रखने वाली महिलायें इसे बाबा के सम्मान में खुद ही ग्रहण नही करती हैं।

इस पहाड़ी (राव डोगंरी) में रावबाबा राजा के रूप में स्थापित है, इसलिए इन्हे यहाँ राजा राव कहा जाता है और बाबा भी एक राजा की भांति अपनी प्रजा जीव- जन्तु की रक्षा करते हैं। उत्तर दिशा से होने वाले किसी भी प्रकार की आपदा से राजाराव बाबा रक्षा करते है, इसलिये इन्हे नारायणपुर गढ़ का प्रहरी भी माना जाता है। इस दिशा से होने वाले किसी भी प्रकार के आक्रमण चाहे वह महामारी बीमारी हो या प्रायोजित हमला हो सबसे बाबा रक्षा करतें है। आदिवासी समाज मौसम परिवर्तन के संधिकाल में अनचाहे देवों को अपने-अपने गाँव से विदा करता है, इसे बोहरानी या पहुँचानी कहते हैं। एक गाँव से दूसरे गाँव विदा करते इन देवों को रावबाबा के संरक्षण में सौंपा जाता है, बाबा इन्हे अपने में समाहित कर लेते हैं। इन अनचाहे देवों को महामारी बीमारी लाने वालें देव माना जाता है, इन देवों को अपने में समाहित करके बाबा प्राणियों और पालतू-पशुओं की रक्षा करते हैं। इसी तरह बाबा उन राहगीरों की जो उस मार्ग से गुजरते है, उनकी भी सतत निगरानी करते हुये सहायता करते हैं। यह बात कई लोगों ने प्रत्यक्ष देखी और महसूस की है। बात उस समय की है जब आवागमन के लिए बैलगाड़ी के अलावा अन्य कोई साधन नहीं था। उस समय प्राय: लोग पैदल या बैलगाड़ी से ही आना जाना करते थे। उस समय रावबाबा अपने लोगों को शेर के रूप में दर्शन देते

थे। बैलगाड़ी से हाट-बाजार करने वाले बताते हैं कि जैसे ही वे रावबाबा के क्षेत्र में पहुँचते थे तब बैल अचानक ही चमकते थे और उन्हें मालूम हो जाता था कि आस-पास शेर के रूप में बाबा मौजूद हैं और इस बियाबान भयानक जंगल में उनके साथ-साथ चल कर उनकी रक्षा कर रहे हैं। कभी-कभी तो इन व्यापारियों का हौसला बढ़ाने के लिये बाबा शेर के रूप में साक्षात दिख भी जाते थे। ऐसा अवसर आने पर वे रावबाबा से प्रार्थना करके मन्नत मांगते थे और किसी समय उसे पूरा करते थे।

राव डोंगरी (रावघाट) आदिम समाज के लिये आस्था का केन्द्र है, यहाँ राजाराव के साथ झरनबुन्दीन आया विराजित है। फूलपाड़ नामक पहाड़ी के शिखर पर एक आम झाड़ के जड़ से मीठे पानी का स्रोत फूटता है, जो १०० फुट की ऊंचाई से एक समतल चट्टान पर गिरकर जलप्रपात बनाता है। यहाँ पर एक प्राकृतिक शिवलिंग था जिसका इस जल से निरन्तर जलाभिषेक होता था। अज्ञात लोगों ने इस शिवलिंग को हटा दिया तब नारायणपुर के जमीदार जो कोलर गाँव में रहते थे उन्होने यहाँ दूसरा शिवलिंग की स्थापना कराया। यहाँ से गिर कर जलप्रपात बनाने वाला पानी झरना के रूप में राव डोंगरी के नीचे बहने वाली मेंडकी नदी में मिलती है। इसी झरने के किनारे पर झरनबुन्दीन आया को आदिवासी समाज ने स्थापित किया है। इस माता की सेवा नुरूटी गोत्र के लोग करते है। यह झरना मेंडकी नदी में जहाँ मिलती है, वहाँ एक जलकुण्ड है जिसे स्थानीय बोली में दरहा कहा जाता है। यह देखने में केवल एक गढ्ढा सा दिखाई देता है परन्तु विशाल पत्थर के नीचे बहुत ही गहरा खोह है। जानकार लोगों का कहना है कि इस दरहा में कैना रहती है। आदिम समाज में कैना को जल वृद्धि करने वाली देवी या जलपरी माना जाता है। ये कुवाँरी कन्यायें होती हैं, वे भी रावबाबा की तरह पुरूषों का दखल पसन्द नही करती हैं। ऐसी कई घटना हो चुकी हैं, परन्तु एक घटना का जिक्र करना आवश्यक है।

एक बार की बात है, बस्तर राजा के द्वारा राजदेव की उपाधि से विभूषित पाटदेव बाबा जिसे आदिम समाज हनुमान भगवान का प्रतिरूप मानता है। यह आंगादेव हैं और अपने पिता कुडुमतुल्ला बाबा के जातरा में सम्मलित होने के लिये ग्राम कोलर जा रहे थे। साथ में बहुत सारे देवी-देवता और नारायणपुर के

लोग थे, सब रास्ते की थकान उतारने और दोपहर का भोजन करने के लिये इस मनोरम स्थान पर रूके। पाटदेव को भी ससम्मान उतारकर एक स्थान पर रखा गया सब हाथ मुँह धो कर विश्राम करने लगे, कुछ लोग भोजन बनाने की तैयारी कर रहे थे कि अचानक एक अनहोनी हुई। सबने देखा की पाटदेव (आंगादेव) उस झरने से बहते हुये जलकुण्ड (दरहा) में जाकर ओझल हो गये। किसी को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था कि क्या हो रहा है? पाटदेव कहाँ चले गये। ऐसे में कुछ उत्साही नवयुवक उस दरहा में उतर कर अपने इष्टदेव को खोजने लगे, नतीजा कुछ भी नहीं निकला, थक हार कर सबके सब इन्तजार करने लगे। एक दिन दो दिन बीत जाने से लोगों की चिन्ता बढ़ने लगी, सियान लोग देव बैठा कर पूछा कि "हमारे देवता का क्या हुआ?तब देवता ने बताया पाटदेव को इस दरहा में रहने वाली कैना ले गई हैं।

इस तरह एक दिन दो दिन करते आठ दिन हो गये, यह बात जंगल में आग की तरह पूरे क्षेत्र में फैल चुकी थी, सबके सब उस दरहा के समीप इकठ्ठे हो गये थे। आठ दिन बाद अचानक पाटदेव उस दरहा से निकले और किनारे पे आ गये। सबके सब खुशी से झूम उठे और पाटदेव की जयकार करने लगे। पाटदेव नारायणपुर के देव हैं इन्हें आदिम समाज टिमनारिया कहता है। सब हँसी-खुशी देव को ले कर कुम्हार पारा स्थित उनके स्थान पर आये और विशेष पूजा (जातरा) बनाया। इस जातरा से देव प्रसन्न हुये सिरहा के ऊपर आरूढ़ पाटदेव ने गाँव के लोगो को बताया कि "बहुत ही शक्तिशाली कैना ने मुझे उस दरहा में कैद कर लिया था और मुझसे शादी करना चाहती थी। मै उससे झूठ बोलकर की अपने सब रिश्तेदारों से सलाहकर बारात लेकर आने का वादा करके बड़ी मुश्किल से आया हूँ। उस दिन के बाद से पाटदेव कभी उस रास्ते से नही जाते, उन्हें यदि कभी जाना होता है तो वे अंजरेल के रास्ते से जाते हैं। इस तरह रावबाबा के पास के स्थान में बहुत ही शक्तिशाली कैना का वास है।

रावडोंगरी के नीचे बहने वाली मेंढकी नदी के किनारे पर मावलीगुड़ी (माता मावली मंदिर) है। यहाँ पर स्थापित मावली माता का रावबाबा को भैरव माना जाता है। मावली माता को नारायणपुर क्षेत्र की आराध्य देवी हैं, जो इस गढ़ की सदैव रक्षा करती हैं और नारायणपुर क्षेत्रवासी माता की कृति को अलग नाम देकर उस जगह पूजा करते हैं। यहाँ माता मावली ने एक बार मराठा आक्रमण

से नारायणपुर गढ़ की रक्षा की थी। जानकार लोग बताते हैं कि एक बार नागपुर से मराठा सैनिकों की एक टुकड़ी नारायणपुर में हमला करने की नीयत से आ रही थी, माता ने आसन्न खतरे को जान लिया कि इन सैनिको द्वारा नारायणपुर में खून-खराबा किया जायेगा, तब माता ने अपनी शक्ति से एक स्थान पर सुन्दर बाजार की रचना की, तरह-तरह के दुकान सजे हुये थे। नानाप्रकार के पकवान कन्द-मूल, फल वगैरह से बाजार भरा पड़ा था। मराठा सैनिक बहुत दिनों से चल रहे थे, उन्हे थकान भी थी और भूख भी लग रही थी। वे सब उस जगह विश्राम किया और उस बाजार से फल, पकवान लेकर खाया, इस बाजार के सामानों को खाने से सभी सैनिको की मृत्यु हो गई। इस घटना की जानकारी जब मराठा शासकों को हुई तो उन्होने इस चमत्कार को प्रणाम कर हमला करने का अपना इरादा बदल दिया।

इस प्रकार उत्तर से होने वाले आक्रमण से मावली माता ने नारायणपुर के गढ़ की रक्षा की, प्रमाण स्वरूप इस स्थान पर मावली माता के पैर के चिन्ह पत्थर पर बने हुये हैं और इस जगह को मावली मोड़ के नाम से जाना जाता है। रावघाट में बहने वाली मेंढकी नदी के किनारे माता जी का मंदिर बनाकर उनकी पूजा का करने की जवाबदारी एड़का ग्राम के कुम्हारों को दिया गया। एड़का के कुम्हार बताते है कि जब उनके पूर्वज चारगाँव की ओर से आये तब सबसे पहले रावघाट में डेरा जमाया। ये पाँच भाईयों का परिवार था, जो पहले नारायणपुर क्षेत्र में आये थे और आकर रावघाट में रूके थे। उनके पूर्वजों को देवी ने सपने में आकर कहा कि "यहाँ पर मेरी पूजा का अधिकार तुम्हारा है, तुम सब अपने व्यवसाय के लिये नारायणपुर के पास जाकर रहो"। इस तरह वे सब आकर एड़का में रहने लगे और यहाँ रहते हुये मावली माता की सेवा करते हैं।

इसी रावडोंगरी में डुमामुदिया का भी स्थान है, आदिम समाज में डुमादेव को पितृदेव माना जाता है। यदि कोई व्यक्ति अपने समय का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है या उसकी कोई विशेष योग्यता होती है, ऐसे व्यक्ति को मृत्योपरांत जागृत कर देव माना जाता है। यहाँ विराजित डुमामुदिया के विषय में बताते हैं कि वे एक क्षत्रीय योद्धा थे। वे मावली माता के अनन्य भक्त भी थे माता हर

पल उनके साथ रहा करती थी, यही कारण है कि कोई उन्हे युद्ध में परास्त नही कर पाता था। मराठा शासक इस योद्धा से काफी परेशान थे किसी ऐसे अवसर की तलाश में रहत थे कि उसे मौत के घाट उतारा जा सके। उन्हे यह भी ज्ञात था कि हर समय देवी इनके साथ होती है, इसी कारण इन्हे कोई पराजित नहीं कर पाता। मराठा शासकों को इस बात की जानकारी हुई कि इस योद्धा के नहाने के समय देवी इनके साथ नही होती,। ये क्षत्रीय योद्धा मेंडकी नदी के एक स्थान पर नहाया करते थे, जिसे तलाचेर कहा जाता है। इनके नहाने के समय एक मराठा सैनिक ने इनका सिर धड़ से अलग कर दिया, इनका सिर टेमरू गाँव में जाकर गिरा। देवी को जानकारी होने पर वे अपनी शक्ति से उस सिर को फिर से जोड़ने के लिये बुलवाई। जब सिर आने लगा तो सिर के ऊपर एक टेमरू (तेन्दू) लकड़ी का खुंटा गाड़ दिया गया और सिर धड़ से नही जुड़ पाया। इस योद्धा को आदिवासी समाज ने जागृत कर डुमामुदिया बनाया, जिसकी पूजा करने का अधिकार भैंसगाँव के सलाम गोत्रीय लोगों को है।

इस तरह रावडोंगरी ऐतिहासिकता लिये हुये बडे शान से अपने स्थान पर विराजित है। इस पहाड़ी पर लौह अयस्क का भण्डार है, जिसका सर्वे सन् १९६६ में दल्लीराजहरा के साथ हुआ था, परन्तु खोदाई का कार्य आज तक प्रारंभ नहीं हो पाया है। वर्तमान समय में कार्य प्रारंभ करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

आमदई घाट (ओतम डोंगरी)

नारायणपुर से ४५ कि'मी. पूर्व में छोटे डोंगर के पास स्थित है, आमदई डोंगरी। यह ओरछा (अबुझमाड़) जाने के मार्ग में है, छोटे डोंगर से दो कि.मी आगे जाने के बाद से सर्पिल रास्ता प्रारंभ हो जाता है और इस पहाड़ी को घेरते हुये राजपुर ग्राम तक घाट का निर्माण करती है। तब से इसे आमदई घाट के नाम से जाना जाता है और यह नाम आज भी प्रचलन में है। इस पहाड़ी के नीचे माड़िन नदी बहती है, नदी और पहाड़ी के बीच से छोटेडोंगर से ओरछा आने जाने का मार्ग बनाया गया तब यहाँ स्वमेव ही घाट बन गया। वैसे आस-पास के निवासरत जनजाति के लोग इसे ओतम डोंगरी के नाम से पुकारते है। यह बहुत ही मनोहारी जगह है, वनों से आच्छादित, पास बहती माड़िन नदी बीच से रास्ता, यहाँ से देखने में प्रकृति का खूबसुरत नजारा दिखलाई देती है जो मन को बरबस ही मोह लेती है। अबूझमाड़ से होकर बहने वाली नदी ठीक इस पहाड़ी के नीचे आकर एक प्राकृतिक झील बनाती है और किनारे पर लाल रंग के चट्टान झील की सुन्दरता को और भी बढ़ा देते है। स्थानीय बोली में इस झील को दरहा कहते है।

इस झील के विषय में जानकार लोगों का कहना है कि यह अथाह है इसकी कोई थाह नहीं है। एक बार एक अंग्रेज ने इसकी गहराई पर अविश्वास करके रस्सी में पत्थर बाँध कर नापने के लिये झील में उतारा, रस्सी खत्म हो

गई मगर थाह नहीं मिली। लोग इस झील में मगरमच्छ होने की बात भी कहते है परन्तु किसी ने देखा नहीं है। यह बात इस अनुमान से कहा जाता है कि आस-पास घास चरने वाले जानवर पानी पीने के समय अचानक इस झील में समा जाते हैं जिनकी कोई खोज खबर नहीं होती। इसलिए यहाँ मछली मारने से भी लोग घबराते हैं। एक और किस्सा इस झील के विषय में कहा जाता है, एक बार एक शिकारी और केंवट (मछुआरा) में इस बात को लेकर बहस हो रही थी कि जंगल में बड़े जानवर होते हैं। केंवट कह रहा था कि नही पानी में बड़े जानवर होते हैं। शिकारी के अनुसार हाथी से बड़ा और कौन जानवर हो सकता है? केंवट ने कहा "हाथी से भी बड़ा जानवर इस दरहा में है"। दोनों अपनी-अपनी बात को साबित करने की कोशिश करते हुये इस झील के पास आये, दोनो ने देखा कि झील के किनारे का केऊ वृक्ष (कहुआ वृक्ष) जिसे हिन्दी में अर्जुन वृक्ष भी कहते है। पानी में चलने लगा, जैसे वह किसी प्राणी के पीठ पर उगा हो और वह पानी में तैर रहा हो। इन दोनो ने देखा उन्हें बहुत ही आश्चर्य हुआ तब दोनो ने माना कि इस दरहा में जंगल से भी बड़े जानवर रहते है।

आमदई डोंगरी के नीचे बहने वाली माड़िन नदी पहाड़ी के दो स्थान पर झील का निर्माण करती है। एक का वर्णन उपर किया गया है और दूसरा जो माड़ क्षेत्र में आता है, उसे माड़दरहा कहते है। बताते है कि इस दरहा में बहुत मछलियाँ होती थी, एक बार गाँव के लोगों ने मछली मारने के लिये इस झील में जाल डाला, जब जाल पानी से बाहर निकाला गया तो देखा कि जाल में मछली के बजाय छोटे-छोटे मगरमच्छ के बच्चे जाल में फंसे हुये हैं। इस चमत्कार को देख कर गाँव के लोग डर गये और यह मानते हुये कि देव को जो इस दरहा में विराजित है को यहाँ मछली मारना पसन्द नहीं है इस विचार से इस झील में आज तक कोई भी मछली नहीं मारता। माड़िन नदी में इन दो झील निर्माण के विषय में जानकार बताते है कि इसका निर्माण आमदई डोंगरी को काटकर बनाया गया है। एक बार देव जातरा के लिये इस क्षेत्र में आदिवासियों के आंगादेव कानाहुर्राल का आगमन हुआ था, क्षेत्र के लोगों ने उनसे नदी को अविरल बहने देने के लिये उपाय करने का निवेदन किया, ताकि मैदानी क्षेत्र के लोगों को निस्तार की सुविधा मिल सके। तब आदिवासियों के आराध्य देव काना हुर्राल नें नदी के बहाव को बाधित करने वाले इस आमदई पहाड़ी को बीच से काट दिया। इस तरह पहाड़ दो भागों में विभक्त हो गया और बीच से माड़िन नदी अविरल बहने लगी। इस नदी के ऊपरी भाग माड़ अर्थात पहाड़ क्षेत्र में

तथा वर्तमान हिस्सा मैदानी क्षेत्र आता है।

इस आमदई घाट या ओतम डोंगरी को नारायणपुर और अबूझमाड़ क्षेत्र के विभाजन रेखा के रूप में देखा जा सकता है। इस पहाड़ी के बाद से अबूझमाड़ का क्षेत्र लग जाता है। इसके पूर्वी तराई में निवासरत जनजाति मुरिया और पश्चिमी तराई में रहने वाली जनजाति अबूझमाड़िया कहलाती है। यहाँ इन दोनो जनजातियो में कोई विशेष अन्तर नही है, केवल नाम से या अध्ययन के लिये ही यह अन्तर किया गया है। क्योकि खान-पान, रहन-सहन, देव-धामी सभी लगभग समानता लिये हुये है। माड़िन नदी के ऊपरी भाग में बने झील (दरहा) को जो माड़ (पहाड़ी) क्षेत्र में बना है उत्तमकशा और नीचे में बने झील जो मैदानी क्षेत्र में बना है उसे कालकशा कहा जाता है। ये दोनो नाम यहाँ विराजित कैना अर्थात जलपरी या जलवृद्धि करने वाली देवियों का है। जो इन झीलों में रहती हैं और तरह तरह के चमत्कार करती हैं। ये कैनायें कुवाँरी कन्याओं का प्रतिरूप हैं, जिनके विषय में आदिम समाज की मान्यता है कि वे अपने स्थान में पुरूषों का दखल पसन्द नहीं करती हैं। यही कारण है कि कोई भी इन झीलों पर नहाने या मछली मारने से कतराता है। कालकशा कैना को ज्यादा खतरनाक माना गया है, इसलिये मैदानी क्षेत्र के दरहा पर जहाँ इसका निवास माना जाता है उस दरहा में कोई भी प्राणी नही जाता है। मान्यता है कि इस दरहा में एक सोने का खम्बा है जिसमें कालकशा कैना विराजित है।

यह समूचा क्षेत्र छोटे-डोंगर परगना के अन्तर्गत आता है इस परगना में ८४ गाँव आते हैं, परगने की आराध्य देवी माँ दन्तेश्वरी है। जिसे यहाँ निवासरत दोनों जनजाति अपने आराध्य देवी के रूप में मानती है। देवकाम और सामाजिक कामो में दोनों जनजातियों की सामूहिक जवाबदारी होती है। आमदई घाटी में आदिवासी मुरिया समाज की देवी विराजित है जिसे वे घाटमुण्डी के नाम से पुकारते है। इस देवी का स्थान पहाड़ी पर है परन्तु उसके सामने में सड़क के किनारे पर इस देवी को मानने वाले या इस क्षेत्र के लोग आते-जाते देवी के सम्मान में किसी भी झाड़ी की डाली तोड़कर चढ़ाते है। इस डगाली को हल्बी, गोन्डी में डारा कहते है, इसलिये इस देवी को डारा डोकरी भी कहा जाता है और यही नाम इनका प्रचलनशील है। इस देवी के सेवादार दोदी गोत्र के आदिवासी है। यह देवी जिस कुल के अन्तर्गत आती है, उसका मण्डादेव कोवाल मुत्ते है जिनका वास धुरबेड़ा के कोवाडोंगरी में है। इस मण्डा मे १३

गाँव आते है, और इन्ही गाँवों में डाराडोकरी तीन-तीन साल एक-एक गाँव में निवास करती है। इस देवी का जातरा प्रत्येक तीन साल में एक बार आमदई डोंगरी में होता है और जातरा के बाद वो अपने मन पसन्द गाँव में निवास करने के लिये चली जाती है। वे गाँव निम्नानुसार है। एहनार, झारा, हिरंगई, बेड़मा, कंगाली, बड़गाँव, तोयनार, अमलावाड़ा, ताड़ोनार, तिरवली, आकोड़ी, कुरूसनार, परपा, और धुरबेड़ा है। (ये सब माड के गाँव हैं।)

आमदई डोंगरी को हल्बा जनजाति के मांझी गोत्र के लोगों का गढ़ माना जाता है, इस पहाड़ी के शीर्ष में समतल भाग है। बताते हैं कि इस पहाड़ पर मांझी लोग पहले के जमाने में निवास करते थे। वहाँ आज भी उनके देवी-देवता विराजमान हैं। ऊपर के समतल भाग में घर बाड़ी में लगाये जाने वाले पेड़ जैसे आम ईमली अमरूद नीम सलफी आदि के पेड़ आज भी मौजूद हैं, जो साबित करते है की इस पहाड़ पर लोगों का निवास रहा है। इस पहाड़ी के बाँयी ओर एक स्थान का नाम मांझी पदर भी है, इसी स्थान पर मांफीयों की बस्ती थी। बताते हैं कि वर्तमान में जो छोटडोंगर है उसे मांफीयों ने आबाद किया था, जो पहले इस आमदई डोंगरी में रहा करते थे। उन्हे उनकी कुलदेवी माता दन्तेश्वरी ने आज्ञा दी कि वे इस घाटी की तराई में रहकर उसकी सेवा करें। उस दिन से वे वर्तमान छोटेडोंगर में आकर रहने लगे। परन्तु देवताओं की मूर्ति खांडा, (तलवार) ढाल, बरछी आदि आज भी पहाड़ के ऊपर मौजूद है। जानकार लोगों का कहना है कि इन देवी के भक्तों के ऊपर जब-जब संकट की धड़ी आती है, उसका उन्हें देवी की कृपा से पूर्व से ही भान हो जाता है और वे आमदई डोंगरी में पनाह लेते हैं, जब तक संकट टल न जाये अपना जीवन-यापन करते हैं। कई समय पर इन जनतातियों पर यह संकट आया है और वे इस पहाड़ी पर चले गये हैं।

छोटे डोंगर काकतीय वंश के पूर्व से एक गढ़ रहा है, जहाँ हल्बा राजाओं के द्वारा राज किया जाता था। इस बात का कि राजा का राज था दो तरह के मत हैं। पहला यह कि राजा करनाकर और उनकी रानी नारंगी यहाँ राज करती थी, परन्तु दूसरा मत है कि राजा और रानी यहाँ अज्ञात वास में आये थे। इसका प्रमाण आमदई घाट के पास कोटेम पखना के रूप में मौजूद है कोटेम पखना का अर्थ है धान कूटने का पत्थर, इसे गोन्डी में उसमल कल कहा जाता है। यहाँ पास मे हाथी खोदरा (हाथी के बैठने की जगह) है। इस

स्थान पर दो झाड़ उगे है जिन्हे राजा रानी का प्रतीक माना जाता है इनमें संतरा जैसा फल लगते हैं, इसे खाते नहीं हैं पर इन वृक्षों को नारंगी और करना के नाम से पुकारते हैं, जो राजा-रानी का नाम है। नल वंशीय या नाग वंशकाल में इन नामों के राजाओं का कोई उल्लेख नहीं मिलता इसलिये माना जा सकता है कि ये जिस प्रकार बड़ेडोंगर और नारायणपुर में हल्बा राजा थे उसी प्रकार छोटेडोंगर में भी हल्बा राजा रहे होगें। इस स्थान का सम्बन्ध राजाशाही जमाने से था यह इस बात से साबित किया जा सकता है कि आज भी विश्व प्रसिद्ध दशहरा जगदलपुर से इस गढ़ के देवताओं की वापसी होती है तब इसी स्थान में जातरा किया जाता है। काकतीय वंश के अन्तिम शासक राजा प्रवीरचन्द्र भंजदेव तब छोटे-डोंगर आते जाते रहे हैं, उस जमाने के हाथी बाँधने की जगह को आज भी गजभारन जो उस समय गज बांधन रहा होगा कहा जाता है।

आज छोटेडोंगर में निवासरत हल्बा और गोन्ड जनजाति के पूर्वज अच्छे लड़ाके रहे हैं, ऐसा कई अवसरो पर सुनने में आया। बड़े-डोंगर का हल्बा विद्रोह की आग यहाँ तब नही पहुँची परन्तु हल्बा जनजाति का गढ़ होने के कारण सजा दिये जाने के लिये राज सैनिक आये थे परन्तु उस समय इस जाति के लोग खतरे को भांप कर पहले से अन्यत्र चले गये थे। छोटेडोंर मूलत: मांझी और नाईक गोत्र के लागों का बसाया गया गाँव है, दूसरे गोत्र के लोगों को इनके पूर्वज द्वारा यहाँ लाकर बसाया गया है। तिलक बेलसरिया बताते है कि उनके पूर्वज वारंगल से देवी के सेवादार के रूप में आये थे, उन्हे छोटेडोंगर में निवासरत मांझी और नाईकों के पूर्वजों ने लाया। राजा दलपत देव ने जब नई राजधानी जगदलपुर को बनाया और वहाँ दलपत सागर की खोदाई करवाई, उस समय यहाँ से भी खोदाई करने मांझी और नाईक लोगों के पूर्वज गये थे, उन्होने बेलसरिया लोगों को लाकर रिस्तेदारी जोड़ी और कमाने खाने के लिये जमीन आदि देकर बसाया और राजा ने इन्हें हिकमी का पद दिया, आज भी इनका हिकमी आमा के नाम से आम बगीचा है।

एक प्रसंग और इसे सन् १९१० ई० के भूमकाल विद्रोह से जोड़ता है,जानकार बताते है कि उस विद्रोह को कुचलने के लिये अंग्रजों ने लाव लश्कर के साथ माड़िन नदी के किनारे में डेरा जमाया था। उस समय यहाँ के हल्बा और गोण्ड जनजाति के लड़ाकों ने नदी के दूसरे छोर में मोर्चा सम्हाले हुए

थे। बन्दूक और तीर-धनुष की लड़ाई थी मगर आदिवासी लड़ाके कहीं से कमजोर नहीं थे। अंग्रेज सैनिकों को ईंट का जवाब पत्थर से दे रहे थे। दो तीन दिन लड़ाई चलने के बाद अंग्रेज सैनिकों ने चालाकी दिखाई, वे अपने साथ रखे पेट्राल को पानी में डालकर आग लगा दिया। पानी में पेट्रोल जलने लगा, आदिवासी योद्धाओं के लिये यह किसी चमत्कार से कम नहीं था। आश्चर्य मिश्रित भय ने उन्हे अपने कदम पीछे खीचने के लिये विवश होंना पड़ा और अंग्रेज नदी के इस पार आ सके। इस तरह के कई उदाहरण और कहानी किस्से आमदई घाट (ओतम डोंगरी) के विषय में प्रचलित हैजो इसके इतिहास की थाती है।

कच्च मेटा (तुलाड़)

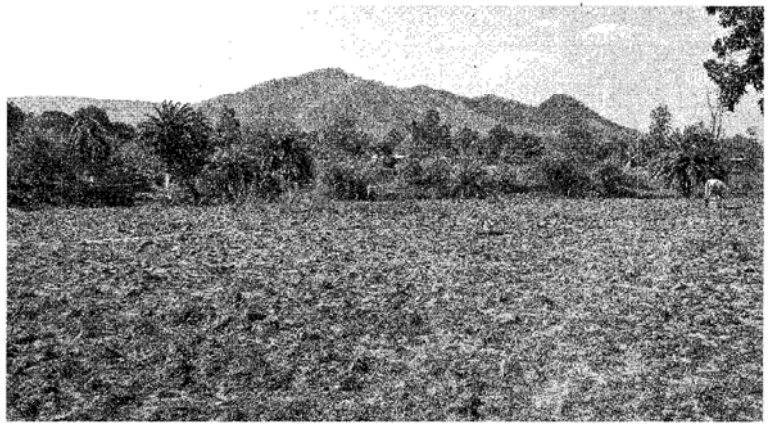

नारायणपुर के पश्चिम से लेकर दक्षिण होते हुये पूर्व तक अबूझमाड़ का क्षेत्र विस्तारित है। नारायणपुर के दक्षिण-पूर्व में छोटेडोंगर के २० कि.मी. से अबूझमाड़ का क्षेत्र लग जाता है। छोटेडोंगर से दक्षिण-पूर्व में स्थित है तोड़मा, इस स्थान को रामवनगमन मार्ग के रूप में चिन्हाकिंत किया गया है। यह जगह लोगों की धार्मिक आस्था का केन्द्र है। क्योकि इस जगह पर श्री रामचन्द्र जी का आगमन हुआ था। इस स्थान का महत्त्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि यहाँ कदली वन है। कदली वन से आशय केले के जंगल से है शास्त्रों में वर्णन है कि कदली वन में साक्षात शिव-पार्वती विहार करते है और इसके आगे स्थित है कच्च मेटा। कच्च गोण्डी शब्द का अर्थ होता है लोहा और मेटा गोण्डी शब्द का अर्थ पहाड़ होता है मतलब है लोहे का पहाड़। यह कहना ठीक रहेगा कि इस लोहे के पहाड़ की तलहटी में रामगमन का पवित्र स्थान तोड़मा स्थित है। इस पहाड़ को तुलाड़ के नाम से जाना जाता है, इस शब्द तुलाड़ का अर्थ तो ज्ञात नही हो सका परन्तु यह कहा जाता है कि इस लोहे के पत्थरों में रूसी अर्थात घुन लग जाता है। कहने का मतलब यह है कि एक प्रकार के कीड़े के द्वारा इसमे छेद किया जाता है। तो क्या इस पहाड़ में पत्थर नहीं है? तब ऐसा हो सकता है कि श्री राम जी यहाँ रूके होगें तब उन्होने राक्षसों का वध किया होगा और उनही हड्डीयों का यह विशाल पहाड़ तुलाड़ बन गया होगा।

यह स्थान छोटडोंगर परगना और उससे लगे माड़ परगना का प्रमुख स्थान है जहाँ बारसूर की ओर से भी जाया जा सकता है, यह बारसूर से नजदीक है। दोनों ओर से यहाँ पहुँचना बड़ा ही कष्टप्रद है क्योंकि दोनों ही ओर से बीहड़ पैदली रास्ता है। जो बरसाती पानी द्वारा बनाया गया है। माड़ परगना और छोटेडोंगर परगना में निवारत माड़िया, मुरिया, हल्बा और अन्य जाति के लोगों के लिये यह तुलाड़ बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसमें इनके आराध्य देव राजा डोकरा का वास है। इस देवता का इस पूरे क्षेत्र में काफी मान है इनके सम्बन्ध में बताया जाता है कि इन्हे इस स्थान से नही हटाया जा सकता है। दूसरे देवी-देवता को एक स्थान से दूसरे स्थान लेकर जातें हैं, या उन देवताओं के सिंगराम (प्रतीक) को लाते ले जाते हैं परन्तु इन देव के सिंगराम (प्रतीक) को भी यहाँ से नही हटाया जा सकता, ये एक स्थिर देव हैं। छोटेडोंगर निवासी सुखराम उसेण्डी बताते हैं कि राजा डोकरा का जब तक वाहवा नहीं होता तब तक पूरे क्षेत्र में जातरा या कोई देव काम सार्वजनिक रूप से नहीं मनाया जाता है। वाहवा भी जातरा के जैसी एक देवता की विशेष पूजा है, जिसमें उसके अन्तर्गत आने वाले सभी परगना के देव-देवता आकर पूर्व में किये गये कराड़ की पूर्ति करते हैं। कराड या करार एक प्रकार की वचनबद्धता है, जो उस देवता को प्रसन्न करने के लिये पूर्व में किया गया है। यह अलग-अलग गाँव के देवी-देवताओं द्वारा किया गया कराड़ है, जिसकी पूर्ति वाहवा में की जाती है, उसके बाद ही दूसरे देव काम किये जाते हैं।

इस कच्च मेटा के पास ही एक स्थान है जुवांड़ा, बताते हैं कि यह माड़ का वह जगह है जहाँ सब माड़ के लोग जमा होकर अलग-अलग जगहों पर गये थे। कुछ लोग ओरछा, मण्डाली, आलनार, पावगुण्डा तालबेड़ा, बोगदेव, और जाटलुर, धोबा की ओर गये। जुवांड़ा भी एक पवित्र स्थान है, यहाँ भी केले का जंगल (कदली वन) हैं। जिसका अर्थ यह हुआ कि यहाँ भी देवी-देवताओं का वास है और यहीं से इन देवी-देवताओं को एक-एक ग्राम आबंटित किया गया। कहा जाता है कि ओरछा में ओरियाये अर्थात ओरछा में सबको सहेजा गया, या जमा किया गया, मंण्डाली में माण्डे अर्थात मण्डाली ग्राम में सबको स्थिर स्थान आबंटित किया गया, हांसनार में हांसें अर्थात हंसलनार में सभी ने खुशियाँ मनाई, बोगदेव में बागे अर्थात इस गाँव में सबके बीच आपस में लड़ाई-झगड़ा हुआ, रायनार में सबने आपस में राय मसविरा कर सुलह किया और धोबा में

धोये अर्थात धोबा में सबने नहाया अपने वस्त्र हथियार धोये। यह वे प्रमुख ग्राम हैं, जहाँ इन देवों ने कुछ कार्य किया था। इसके अलावा भी अन्य ग्रामों में देवी-देवताओं को स्थान दिया गया। इन्हे स्थान देने के बदले में किये गये कराड़ को वाहवा में दिया जाता है। कच्च मेटा में विराजित राजा डोकरा इस पूरे क्षेत्र का मण्डा देव है, जिसने अपने मण्डा के अन्तर्गत आने वाले सभी देवों को स्थान देकर मान दिया है। इसलिये इन देवों के अनुयायी राजा डोकरा के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने के लिये कराड़ देते हैं। इस मण्डा के अन्तर्गत आने वाले देवी-देवताओं के अनुयायी पूरे बस्तर में ही नहीं, उड़ीसा और आन्ध्र तक बसे हुये हैं और वाहवा के लिये सब जगह से लोग आते हैं।

सुखराम उसेण्डी बताते हैं कि उनका राजा डोकरा आराध्य देव हैं, पहले हमारे पूर्वज जुवांड़ा के थें। पहले हमारी जाति गंर्धव (गांडा) नहीं थी, हम लोग भी माड़िया थे, हमारे पुरखे तीन भाई थे और माड़ में निवास करते थे। एक बार की बात है कि किसी काम से तीनों भाई माड़ से निकल कर मैदानी क्षेत्र में आये, उन्हें खाना बनाने के लिये आग की आवश्यकता हुई। आग लाने के लिये सबसे छोटे भाई को भेजा। उस समय घर दूर-दूर हुआ करते थे, वह छोटा भाई आग लेने के लिये दूर निकल गया, उस समय आग जलाने के लिये एक लकड़ी में छेद कर दूसरी लकड़ी से रगड़ कर आग पैदा की जाती थी। इन सारी प्रक्रिया करते और दूर से आग लाने में उस छोटे भाई को अनावश्यक विलम्ब हुआ। जब वह आग लेकर आया तब नाराज बैठे भाईयों ने देरी होने का कारण पूछा। तब उस छोटे भाई ने सारी बात बतायी जिसे उन्होंने नही माना और पता साजी किया तब उन्हे मालूम हुआ कि उनका भाई आग एक गांडा (गन्धर्व) परिवार की लड़की के पास से लाया है और यह भी परिकल्पना किया कि उनका भाई उस गन्धर्व लड़की के साथ बिगड़ गया है। तब उन्होने अपने छोटे भाई का परित्याग किया और उसे छोड़ कर माड़ लौट गये। उस दिन से उस छोटे भाई का परिवार छोटेडोंगर में बस गया और उन्हे गांडा जाति का माना गया। तीन भाई में एक भाई ओरछा में और एक भाई जाटलूर में बस गये आज भी हम तीनों भाई के देवी-देवता एक ही हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि हम उनके देवी-देवता का काम कर सकते हैं परन्तु वे हमारे देवता का काम नही कर सकते।

छोटेडोंगर को मांझी लोगों ने आबाद किया है, वस्तुत: हल्बा जनजाति

के मांझी, राजा के साथ वारंगल से आये थे। फिर वे माड़ में आकर बस गये, बताते हैं कि मांझी परिवार पहले ओतम डोंगरी (आमदई डोंगरी) में रहते थे। वहाँ आज भी उनके देवी-देवता का स्थान है और अस्त्र-शस्त्र रखे हुये हैं। इस डोंगरी के उपर में सपाट मैदान है जिसमे एक बस्ती बैठ सकती है और पहले मांझी लोगों की बस्ती रही है। यहाँ आज भी ऐसे वृक्ष उगे हुये हैं जो गाँव में लगाये जाते हैं। जैसे आम, इमली नीम, पीपल वट आदि, इससे लगता है कि पहले यहाँ गाँव आबाद रहा है। मांझी कुल का देवता महिमा कोला यहाँ पर विराजित है और देवाज्ञा से मांझी लोग माड़ अर्थात पहाड़ से नीचे उतरकर कमाने खाने मैदानी क्षेत्र मे आये। पहले वे प्राचीन राजा के स्थान कोटना पखना के पास रहने का प्रयास किया। इस स्थान पर एक पथ्तर है जिसमे एक बड़ा छेद है, बताते है कि राजशाही के समय इसमे धान कूटा जाता था। इस स्थान पर राजा-रानी का निवास रहा है राजा का नाम करक सिंह और रानी का नाम नारंगी था। उनके प्रतीक के रूप में आज भी दो वृक्ष करक और नारंगी के नाम से यहाँ है। जिसमे संतरा जैसे फल लगता है, परन्तु इसे नहीं खाया जाता है। इस स्थान में आज भी राजा-रानी के सम्मान में जातरा किया जाता है। जगदलपुर दशहरा से जब गाँव के देवी-देवताओं की वापसी होती है तब पहली फुर्सत में इस जातरा का आयोजन किया जाता है। इस स्थान को समूल के नाम से भी जाना जाता हैं। माड़ से उतरकर मांझी लोग पहले यहाँ बसने का प्रयास किया परन्तु समय-समय पर शेर खोरी होने के कारण इस जगह को छोड़ कर वे टार-भाटा में आ गये, जहाँ वे आज भी आबाद हैं।

छोटेडोंगर के पास ओतम डोंगरी जिसे आज आमदई घाटी के नाम से जाना जाता है स्थित है। यह पहाड़ी अपने अंक में कितने ही इतिहास समेटे हुये है। इसके पास एक स्थान को मांझी पदर कहा जाता है। बताते है कि मांझी पदर में माड़ से उतर कर मांझियों ने डेरा डाला था। यह स्थान इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह मांझियों के दूर्दिन का साक्षी है। वर्तमान छोटेडोंगर का टारभाटा यहाँ देवाज्ञा से जीवन-यापन के लिये बाद में मांझी लोग रहने लगे। ऐसे कई अवसर आये जब वे इस स्थान पर शरण लिये। मांझी पदर के पास हाथी खोदरा नामक जगह है, यहाँ हाथी को मार कर गाड़ दिया गया था। हल्बा विद्रोह के बाद जब राज गद्दी पर राजा दरियावदेव बैठे तब उन्होने हल्बा जनजाति का सफाया करने के लिये तरह-तरह के हथकंडे अपनाये, पहले तो उसने सजा

देने के लिये ताड़ के वृक्ष को काटकर हल्बाओं को उसे झोकने (थामने) के लिये कहा जो असम्भव था, जो भी ऐसा प्रयास करता उसकी मृत्यु हो जाती। इस सजा को इतिहास में ताड़ झोकनी नाम दिया गया है। इसी प्रकार पूरे गाँव को हाथी देकर कहा जाता कि इसे ऐसा छूपाओ की खोजने से नहीं मिले, हल्बा जनजाति के लोग बुद्धिमान और तार्किक होते हैं। उन्होंने हाथी छूपाने का अर्थ समझ गये कि यह असम्भव है और मौत निश्चित है। विचार करके हाथी को मारकर गढ्ढे में दफना दिया, जिसे बाद में नहीं खोजा जा सका और सबकी जान बच गई।

ऐसा ही एक स्थान मांझी पदर के पास है जो ऐसी ही किसी घटना को प्रमाणित करता है। इस हाथी खोदरा के एक छोर में कपाट पानी और दूसरे छोर पर उपजन पानी नाम के स्थान है। कई अवसर ऐसे आये जब हल्बा जनजाति को छूपकर जान बचाने की नौबत हुई, तब वे वर्तमान छोटेडोंगर के टारभाटा से मांझी पदर चले जाते थे। जब वे छूपकर रहते थे तब कपाटपानी का पानी पीते थे और जब वे मांझी पदर में रहा करते थे तब उपजन पानी पीने के लिये उपयोग में लाते थे। हल्बा जनजाति के लोग अच्छे योद्धा माने जाते हैं। बड़ेडोंगर के राजा आजमेरदेव के पक्ष में लड़ने के लिये छोटेडोंगर से भी लड़ाके गये थे, इसीलिये इस विप्लव को कुचलने के लिये छोटेडोंगर में भी कत्लेआम किया गया था। भूमकाल के समय भी इस क्षेत्र की जनजातियों ने बड़ी वीरता से लड़ाई लड़ी थी, जिसे दबाने के लिये अंग्रेजी सेना को पसीना आ गया था। मांझी लोगों का देवता महिमा कोला माड़ के ग्राम जुवांड़ा में है। यहाँ साल में एक बार जातरा मनाया जाता है, जिसमें सब जनजाति के लोग जरूर जाते है।

इतिहास के पन्नों में.....

नारायणकोट (नारायणपुर जनपद) के राजा नारायणदेव के अपने राज से निर्वासित होकर अज्ञातवास में चले जाने के बाद से नारायणपुर का इतिहास मौन है। संभवत: यह नागकाल का अन्त और नारायणपुर के राजतंत्र का भी अन्त काल था। कहा जाता है कि यहाँ के राजा का सम्बन्ध परलकोट के राजा से था, वे आपस में भाई थे, यहाँ से निर्वासित होकर वे सीधा परलकोट ही गये होगें। उनके साथ उनका परिवार और विश्वस्त सहयोगी भी उनके साथ चले गये और जो बचे हुये लोग थे वे आस-पास के गाँव में शरण लेकर गुमनामी का जीवन जीने लगे। चमरूराम पात्र बताते हैं कि उनके पुरखे नारायणदेव के दीवान थे और वे भी परलकोट राजा के साथ चले गये थे। इस तरह नारायणकोट की राजधानी जो आज का ग्राम बम्हनी था, वह वीरान हो गया। एक वैभव पूर्ण राज्य तिल-तिल कर खत्म हो गया था, और उस राज्य के ओहदेदार अपने अपने स्थान में रहते हुये अपनी पहचान के लिये संघर्षरत थे। यह वह समय था जब चालुक्यवंश का उदय हो रहा था, नारायणकोट के लोग समझ नही पा रहे थे कि वे किस ओर जायें। उनके सामने दो विकल्प थे, एक तो वे अपने पुराने रियासत परलकोट के साथ संबंध बनाकर रखें और दूसरा अन्नमदेव के साथ रहकर उनकी आधीनता में जीवन-यापन करें। उन लोगों ने बीच का रास्ता चुना और जब बड़े-डोंगर में अन्नमदेव महाराज का राज तिलक हुआ तब वे वहाँ उपस्थित रहे।

अन्नमदेव ने अपने राज संचालन के लिये बस्तर को बारह जमींदारी, अड़तालीस गढ़, बारह मुकासा, बत्तीस चालकी, और चौरासी परगना में बांटा उसमें कहीं नारायणपुर जो बाद में बस्तर रियासत का तीसरा गढ़ कहलाया, नहीं था। इसका अर्थ था कि परलकोट के साथ संधि के समय नारायणकोट को परलकोट के साथ कर दिया गया होगा। यह बात इसलिये भी सम्भव है कि चक्रकोट के विजय के लिये नारायणदेव के योगदान के फलस्वरूप ऐसा किया गया होगा। नारायणदेव के पलायन के बाद यह समूचा क्षेत्र नेतृत्व विहीन हो गया था और यहाँ के रहवासियों ने कभी भी किसी सत्ता के करीब जाने की

कोशिश नहीं की, यही कारण है कि इस काल में यहाँ का इतिहास कुछ नहीं कहता। परलकोट नारायणकोट बड़ेडोंगर, छोटेडोंगर और महाराष्ट्र के झाड़ाफाफड़ा में हल्बा राजाओं का शासन था। ये सारे राज्य हल्बा जनजाति बाहुल्य रियासत थे। हल्बा जनजाति के लोग कुशल लड़ाके थे, ऐसा माना जाता है कि उनमें आने वाली परिस्थिति की समझ पहले से हो जाती है और उसके अनुरूप वे युक्ति बनाया करते हैं। इनमें संगठन की क्षमता ओर नेतृत्व के पीछे लामबन्द होने की प्रवृति होती है। वे विश्वस्त होते हैं, यही कारण है कि रियासतों के सभी बड़े पदों में हल्बा जनजाति के लोग लम्बे समय तक पदासीन रहे थे।

हल्बा विद्रोह का मुख्य केन्द्र बड़े-डोंगर था, जिसका वर्णन इतिहास के पन्नों में मिलता है। इससे पहले बस्तर के इतिहास में नारायणपुर क्षेत्र के विषय में ज्यादा कुछ नहीं लिखा गयाा है। बस इतना कि १७०९ ई. में बस्तर के राजगद्दी मे राजपाल देव आसीन हुये, उनकी दो रानियाँ रूद्रकुवँरिन बघेलिन और रामकुवँरिन चन्देलिन थी। पहली रानी से दो पुत्र दलपतदेव एवं प्रतापसिंहदेव हुये। राजा अपनी रानी राजकुवँर को अत्यधिक प्रेम करते थे, उन्होने अपने बड़े बेटे दलपतदेव को कोरापुट और प्रतापसिंहदेव को अन्तागढ़ मुकासा का अधिपति बनाया। इस काल में नारायणपुर अन्तागढ़ मुकासा के अन्तर्गत आता था, किन्तु प्रतापसिंह के शासन काल के सम्बन्ध में क्षेत्र से कोई जानकारी नही मिलती है। ऐसा इसलिये भी सम्भव है कि यह काल बस्तर राजनीति में बहुत ही उथल-पुथल भरा रहा है। दोनों रानियाँ अपने-अपने पुत्रों को बस्तर के राजसिहांसन में आसीन देखना चाहती थी। बड़ी रानी के दोनों पुत्र राजधानी से बाहर थे और छोटी रानी का पुत्र भंयकर बीमारी से स्वर्ग सिधार गये। इसी सदमें में एक वर्ष बाद राजा राजपालदेव का भी स्वर्गवास हो गया, इस मौके का फायदा उठाकर छोटी रानी रामकुवँर चन्देलिन ने अपने भाई को राजा बनवा दिया। दलपतदेव ने जसपौर के राजा की मदद से पुनः अपना खोया राज प्राप्त कर लिया। (संदर्भ- बस्तरके जननायक -राजीव रंजन प्रसाद)

दलपतदेव का शासन काल १७३१ से १७७४ ई. माना जाता है। उन्होने अपने शासनकाल में बाहरी आक्रमण से बचाने के लिये राजधानी को बस्तर से हटाकर जगदलपुर ले आये। इसी समय राज महल का निर्माण किया गया और

समुन्द के नाम से विख्यात दलपत सागर की खोदाई करवाई। इस खोदाई का संबन्ध नारायणपुर से भी था, राजज्ञा से इस क्षेत्र के हल्बा जनजाति के लोग दलपत सागर की खुदाई करने के लिये गये थे। तिलक बेलसरिया बताते हैं कि "हमारे पूर्वज राजा के साथ वारंगल से आये थे और जगदलपुर के आस पास बस गये थे। छोटेडोंगर को वर्तमान मांझी परिवार और नायक परिवार के पुरखों ने आबाद किया था। यहाँ से दलपत सागर की खोदाई करने के लिये मांझी और नायक लोग भी गये थे, वहाँ हमारे पुरखों के साथ इनकी भेंट हुई, और सजातीय होने के कारण मांझी और नायक परिवार ने हमारे पुरखों को छोटेडोंगर ले आये अपनी बेटी ब्याही और उन्हे कमाने खाने के लिये जमीन दी, उस समय का राज पद हिकमी का पद दिया, आज भी हिकमी आमा (आम बगीचा) इस बात का प्रमाण है, तबसे हमारा खानदान यहाँ बसा है। पूरा क्षेत्र हमारे खानदान को जमाता परिवार होने के कारण बहुत सम्मान देता है।" इसी तरह नारायणपुर क्षेत्र के लोग भी दलपत सागर और महल बनाने के लिये मजदूर के रूप में गये थे और इनका डेरा वर्तमान गंगामुण्डा के पास था। नारायणपुर के पात्र हल्बा जनजाति के पूर्वजों ने भी बेलसरिया लोगों को वहाँ से लाकर बेटी देकर उन्हे मावली माता के पूजा करने का अधिकार दिया और मावली बेड़ा कमाने खाने के लिये दिया। इसी तरह कोलर के कुपाल गोत्र के लोगों ने देहारी परिवार को अपनी बेटी देकर माटी पुजारी और कुडुमतुल्ला का पुजारी बनाया।

सन् १७७० ई. में जब जगदलपुर का दुर्ग बनकर तैयार हो गया उसी काल में मुगल सेना ने इसे चारो ओर से घेर लिया था और आक्रमण होने से पहले माँ दन्तेश्वरी की कृपा से मुगल सैनिकों बीच कोई अज्ञात बीमारी फैल गई उनका रसद खत्म हो गया मजबूरन उन्हे पीछे हटना पड़ा। इतिहास के पन्ने में दर्ज इस कहानी से मिलती जुलती एक कहानी नारायणपुर क्षेत्र मे कही जाती है। बताया जाता है कि "जब नारायणपुर में हमला करने और खून-खराबा करने के उदेश्य से मुगल सैनिक आगे बढ़ रहे थे तब गढ़ मावली माता ने अपने गढ़ की रक्षा की थी। नारायणपुर की गढ़ मावली गढ़बेंगाल की पहाड़ पर स्थित है। उसने गढ़ की रक्षा करने के लिये केंवटीन का वेश धारण करके सूखी जगह पर डोंगा (नाव) चलाया यह अलौकिक घटना मुगल सैनिकों को आश्चर्य में डाल दिया और वे किसी अनहोनी के डर से आगे नही बढ़ पाये

अपना कदम पीछे हटा लिये। इस तरह गढ़ मावली माता ने अपने गढ़ की रक्षा की और उस नाव को लाकर नारायणपुर के मध्य राजीव चौक में रख दिया, जो कालान्तर में सेमल का वृक्ष बन गया था, आन्धी-तुफान में गिर गया। तबसे उन्हे यहाँ आड़ मावली के नाम से पूजा किया जाता है। नारायणपुर मावली मेला की पूर्व रात्री इनकी पूजा की जाती है।

नारायणपुर, छोटे-डोंगर और बड़ेडोंगर एक त्रिभुज के आकार में बसे हुये हैं। जहाँ पश्चिम में नारायणपुर, तो इसके दक्षिण-पूर्व में छोटेडोंगर तथा उत्तर-पूर्व में बड़ेडोंगर व्यवस्थित है। अन्नमदेव के शासन काल के समय से ही बड़ेडोंगर प्रशासनिक केन्द्र रहा है उसी समय से नारायणपुर और छोटेडोंगर का भी महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। बड़ेडोंगर में होने वाली किसी भी घटना का प्रभाव इन दोनों गढ़ में पड़ना स्वाभाविक है। क्योंकि इन तीनों गढ़ की बसाहट और रहन-सहन आपस में समानता लिये हुये है और हल्बा जनजाति का बाहुल्य है। १७७४ ई.में बड़ेडोंगर दुर्भिक्ष (अकाल) का प्रभाव इन दोनों गढ़ में भी पड़ा था। उस समय के लोगों के बताये अनुसार आज के बुजुर्ग बताते है" बहुत भयानक अकाल पड़ा था। जंगली कन्द-मूल के अलावा खाने के लिये कुछ भी नहीं था, लोगों का जीवन त्राहि-त्राहि हो गया था, ऐसे समय बड़ेडोंगर में लड़ाई शुरू हो गयी। अपने भाइयों का साथ देने के लिये दोनों गढ़ से हल्बा और गोंड लड़ाके निकल पड़े। "लड़ई ने आमचो जीत होली" (लड़ाई में हमारी जीत हुई : वैद्यराज हेमचेद मांझी) बड़ेडोंगर का राजा जगदलपुर की राजगद्दी में बैठा। फिर हमारे हल्बा राजा को दूसरी लड़ाई में मार दिया गया और हल्बा जनजाति के ऊपर मुश्किलों का पहाड़ टूटा, हमारे लोगों को खोज-खोज कर मारा गया, हमारे लोग जान बचाने के लिये जंगल में भाग गये, कुछ लोग गोंड गाँव में गये, छोटेडोंगर के मांझी और नायक लोग आमदई डोंगरी के उपर चले गये और मुरिया लड़ाके माड़ में चले गये। (वैद्यराज हेमचन्द माझी)

नारायणपुर के हीरासिंह देहारी बताते है कि हमारे लोग इस संकट की घड़ी में कोलर, परलकोट, सोनपुर और महाराष्ट्र के झाड़ाफाफड़ा अपने-अपने रिस्तेदारी में चले गये। कुछ लोग सिहावा नगरी कांकेर रियासत में भाग गये। आज जो हल्बा जनजाति के लोगों की स्थिति दिखाई दे रही है वो हमारे समाज की एक महिला के कारण से बची हुई है। वे आगे बताते हैं कि वह महिला

गर्भवती थी, उसने हल्बा जनजाति के उपर किये जा रहे कत्ले आम से बचने के लिये एक धाकड़ (क्षत्री) परिवार में शरण ली, उस परिवार ने भी उसे अपने परिवार की तरह रखा और उसकी देखभाल की। उसका बच्चा पैदा हुआ, जिसकी भी परवरिश उस परिवार ने किया और जैसे ही यह संकट खत्म हुआ उसने सब जगह खबर भिजवा कर अपने-अपने लोगों को बुलवाया। उनके आने के बाद फिर से हमारा समाज बड़े संघर्ष के बाद यहाँ अपनी वर्तमान स्थिति को प्राप्त कर सका। यह समय हल्बा जनजाति के लिये परीक्षा का समय था, हमारे पूर्वजों ने इस कठिन घड़ी में जो सामाजिक समरसता की नींव डाली वह बस्तर में वह आज भी देखी जा सकती है। हीरासिंह देहारी कहते हैं कि आज भी हमारे समाज में किसी भी नेतृत्व के पीछे संगठित होने की प्रवृति मौजूद है, इसके लिये हम आगे-पीछे या लाभ-हानि की परवाह नहीं करते।

नारायणपुर और छोटेडोंगर क्षेत्र की आदिवासी जनता ने रियासत के दमन का वह रौद्र रूप देखा था, जिसकी कल्पना आज की पीढ़ी नहीं कर सकती। चाहे हल्बा जनजाति हो या मुरिया जनजाति सबका बस्तर के राजघराने से मोह भंग हो गया था। बची खुची जनता इन सबसे अलग-अपना जीवन जीने के लिये संघर्ष कर रही थी। वनोपज संग्रहण और कृषि को जीवन-यापन का माध्यम बना लिया था और किसी तरह जीवन जी रहे थे। यह इन दोनों क्षेत्र के लिये बहुत ही दुख का समय था, किसी तरह की कोई हलचल का जिक्र नहीं मिलता। दोनों ही समाज अपने-अपने पुरखों के वीरता की कहानी-किस्से बच्चों को सुना कर समय व्यतीत कर रहे थे। बृज मोहन देवांगन ने बताया के उनके पुरखों को राजा के चवंर डुलाने और माता जी के वस्त्र बुनने के लिये कोण्डागाँव से नारायणपुर राजाज्ञा से लाया गया था। इतिहास की खामोशी ने ४०-५० साल का यह समय शून्यता से भर दिया है। कभी कभार मराठा या अंग्रेज अधिकारी का आना जाना होता रहा है और यहाँ की निर्लिप्त जनता उनका डोला उठाकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाया करती थी। बताते हैं कि इस समय बेगार प्रथा का चलन बड़े जोर पर थां इसलिये गाँव के प्रमुख लोग अपना घर, गाँव के अन्तिम छोर में बनाया करते थे। मराठा अधिकारी और अंग्रेज अधिकारियों को जगदलपुर परलकोट या नागपुर आना जाना यही से होता था, तब उन्हे यहाँ से कोलर या कुतुल तक डोला में बिठाकर पहुँचाया जाता था। अबुझमाड़ का कुतुल ग्राम का थानागुड़ी, नारायणपुर के बाद दूसरा पड़ाव था।

लखमु नुरेटी कोहकामेटा बताते हैं कि जब मराठा या अंग्रेज अधिकारी आते थे तब हमारे दादा परदादा डोला में बोह कर उन्हे छोड़ने जाते थे। यह स्थिति स्वाभिमानी आदिवासियों के लिये बड़ी ही शर्मनाक थी, जो उन्हे नापसंद थी। राजेन्द्र सिंह राठौर बताते हैं कि यही वो समय था जब परलकोट के राजा ने हमारे परदादा को परतापुर से नारायणपुर का बहीदार बनाकर भेजा था। जिनका नाम बैजनाथ राठौर था जिन्हे लोग वैदार कहकर बुलाते थे। उन्होंने ही उड़ीसा से जगन्नाथ भगवान की मूर्ति और वैरागी परिवार को लाया था।

इस क्षेत्र के लोगों में जिस तरह से उनके विद्रोह को कुचला गया था कि जनजातियों के सामने अस्तित्व का संकट उत्पन्न हो गया था। उसके लिये सबके मन में कहीं न कहीं आक्रोश तो था ही इस बेगार प्रथा ने इस चिंगारी में घी का काम कर रही थी। समूचा क्षेत्र कसमसा रहा था, बस इन्तजार था तो एक ऐसे नेतृत्व की जो अपने झण्डे के नीचे सबको इकठ्ठा कर सके और वह घड़ी परलकोट के जमींदार गेंदसिंह के रूप में सबके सामने था। यह वह समय था जब जनजाति समाज सबसे कठिन परिस्थिति में जी रहा था। उसे गेन्दसिंह के नेतृत्व में शस्त्र उठाने में कोई देरी नहीं किया। आदिवासी समाज में सूचना के आदान प्रदान के लिये कई तरह के उपाय किये जाते हैं, उन सबकी जानकारी परलकोट के जमींदार को थी और उन्होने वे सब उपाय इस आन्दोलन के विस्तार करने के लिये किया। उन्हें मालूम था कि प्रत्येक गाँव में एक सामाजिक संस्था घोटुल के रूप में मौजूद है। जहाँ गाँव के लोग एकत्रित होकर अपने दुख-सुख की बातें करते हैं। यह संस्था अपनी बात पहुँचाने के लिये गेन्दसिंह को सबसे अच्छा साधन लगा और उन्होने एक प्रतीक के रूप में आम की डगाली मिर्ची बन्धी प्रत्येक धोटुल में भेजना प्रारंभ किया। इस डगाली का घोटुल में आने का अर्थ होता था कि परलकोट के जमींदार के द्वारा उनके लिये किये जाने वाले आन्दोलन में उनका साथ देने का निवेदन, इसका प्रतिसाद अच्छा मिलना स्वाभाविक था। प्रत्येक घोटुल से आदिवासी लड़ाके इस आन्दोलन में अपने पारम्परिक हथियार के साथ जुड़ते चले गये।

इस आन्दोलन को इतिहासकारों ने नाम दिया अबूझमाड़ का विद्रोह, क्योंकि अध्ययनकर्ताओ नें अपनी समझ के अनुसार बस्तर के आदिवासियों को कई भागों में बाटा है। राजा के करीब रहने वाले मुरियों को राजा मुरिया और

इन्द्रावती नदी के उस पार बसने वाले माड़ियों को दण्डामी माड़िया। इसी तरह महाराष्ट्र के सीमा से लगे ग्राम को, नारायणपुर परलकोट से लगे क्षेत्र को जो बेहद बीहड़ थे वहाँ बसने वाले माड़ियों को अबूझमाडिया कहा गया। इसीलिये इस आन्दोलन को अबूझमाड़ विद्रोह का नाम दिया गया। जबकि बस्तर मे निवासरत आदिम समाज में बुनियादी फर्क करना न्याय संगत नहीं है। क्योंकि इनका रहन-सहन और जीवन स्तर लगभग समानता लिये हुये है। यह एक लड़ाई थी, जिसमें आदिवासियों ने अपने अधिकार के लिये हथियार उठाया था। यह पहला अवसर था, जब आदिवासियों ने अपने हक की लड़ाई लड़ी थी। वह यह आन्दोलन किसी राजा के लिये नही बल्कि प्रजा अपने लिये एक इतिहास लिख रही थी। कई मायनों में यह आन्दोलन अहम था। क्योकि यह लड़ाई राज सत्ता पाने के लिये नही थी, जबकि एक शान्ति से जीवन-यापन करने के लिये थी और इसके लिये इस क्षेत्र का आदिम समाज गेन्दसिंह के नेतृत्व के तले संगठित हो गया। इस लड़ाई में आदिम समाज बेगार प्रथा के अन्त के साथ अपनी कई दुस्वारियों का खत्मा देख रहा था। यहाँ यह कहना समाचिन होगा कि आदिवासी अपनी अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे थे।

यही वह समय है जिसके कहानी किस्से इस क्षेत्र का आदिवासी समाज बड़े गर्व से बयान करता है। अपने बुजुर्गों के बताये अनुसार देवनाथ उसेण्डी बताते हैं कि "जैसे ही घोटुल में आम की डगाली लेकर खबरिया आता था, तब जवान लोगों की टोली पारम्परिक हथियार तीर, धनुष, टंगिया, फरसा लेकर निकल पड़ते थे। सबके सब खाने पीने के साथ लेकर चल रहे थे, जैसे सोच लिया हो कि यह लड़ाई जीत कर ही आना है।" जमींदार गेन्दसिंह हल्बा जनजाति के होने से इस आन्दोलन के लिये हल्बा जाति के लोग बढ़ चढ़ कर भाग लेने के साथ सबको प्रेरित भी कर रहे थे। इस क्षेत्र के समूचे गाँव में आज भी घोटुल मौजूद है, जहाँ जुटकर आज भी लोग आपस में विचार-विमर्श करते हैं। आन्दोलन का केन्द्र घोटुल होने से और आदिवासियों के सूचना तंत्र से जैसे तोड़ी फूँक कर या ढोल बजाकर सूचना देने से आश्चर्यजनक रूप से इसका विस्तार हुआ और बहुत जल्दी परिणाम सामने आने लगे। मराठा सैनिकों के रसद और हथियार लूटने जैसी घटना आम होने लगी। कभी-कभी व्यापारियों के भी काफिले इन आन्दोलनकारियों के निशाने पर होते थे। बुधराम कवाची कोहकामेटा के अनुसार "हमारे दादा बताते थे कि नलसनार में भयंकर

लड़ाई हुई और अबूझमाड़ियों ने लड़ाई जीत लिया।" बहुत जल्दी क्रिया की प्रतिक्रिया सामने आने लगी, मराठा सैनिक बड़ी तत्परता से इस आन्दोलन के नायक गेन्दसिंह को खोजने लगे। जहाँ कहीं भी अबूझमाड़िया या गाँव का आदमी दिखता उसकी खैर नहीं होती थी मार-मार कर अधमरा कर गेन्दसिंह का पता पूछा जाता, नहीं बताने से उसे मार दिया जाता। दोनो ओर से लुक्का-छुप्पी का खेल चल रहा था।

बस्तर रियासत के नागपुर में बैठे आकाओं ने इस आन्दोलन को अभी तक गम्भीरता से नहीं लिया था। इसी बीच नारायणपुर के पास एक घटना हुई जिसे इस क्षेत्र के लोग मावली मोड़ के नाम से जानते हैं और मावली माता की कृपा के रूप में कहानी बताते हैं। बताया जाता है कि उत्तर दिशा से मराठा सैनिकों की एक टुकड़ी रावघाट पार करके नारायणपुर की ओर बढ़ रही थी। आसन्न खतरे को भांप कर मावली माता ने अपने प्रभाव से एक क्रित्रिम बाजार की रचना की, जहाँ तरह-तरह के खाने-पीने के पकवान फल आदि बिकने के लिये रखे गये थे। मराठा सैनिक दल भी बहुत दिनों से चल रहा था और उन्हें भी यह स्थान रूकने के लिये अच्छी लगी और वे अपना यहाँ शिविर बना लिया। उस बाजार से खाने-पीने का समान खरीदा और सबने खाया, और आराम करने लगे। जितने लोगों ने भी उस बाजार के पकवान खाये वे सब वहीं पर मर गये। एक व्यक्ति जो बच गया था वो कहुआ वृक्ष में लिख कर चला गया कि इससे आगे बढ़ने से खतरा है। इस कहानी के सच्चाई के लिये माता जी ने अपने पैर का निशान पास ही पत्थर पर छोड़ा है जो आज भी मौजूद है। इस जगह को मावली मोड़ के नाम से जाना जाता है। इसे इतिहास लापरवाह मराठा सैनिकों पर आदिवासियों का भयानक हमला कहता है। इसके बाद परलकोट के जमींदार गेन्दसिंह को फाँसी दिये जाने की बात भी क्षेत्र में कही सुनी जाती है। इसके बाद यह आन्दोलन नेतृत्व विहीन होने से धीरे धीरे समाप्त होता गया और अपने पीछे जनजातियों की वीरता के कई किस्से छोड़ गया।

इतिहास में परलकोट के जमींदार को फाँसी दिये जाने का जिक्र सन् १८२५ ई. माना गया है। इसके बाद अबूझमाड़ के विद्रोहियों के दमन किये जाने का एक लम्बा अध्याय है। जिससे आदिवासी जनता अपने आप को पहाड़ों की तलहटी में या बीहड़ तक सीमित कर लिया और बाहरी दुनिया से कट गये।

वैसे भी नारायणपुर क्षेत्र के आदिवासियों की आवश्यकता सीमित होती है, वे अपनी आवश्यकता की वस्तयें स्वयं उपजाते है। उन्हे केवल नमक और कपड़ा के लिये बाहरी दुनिया से सरोकार रहता है। इस समय उन्हे नमक, कपड़ा, तेल की जरूरत की पूर्ति बंजारा लोगो कें द्वारा किया जाता था और इनकी पूरी बस्ती नारायणपुर के पश्चिम में ग्राम ब्रहेबेड़ा के पास स्थित बंजारा डोंगरी थी। इस डोंगरी में इनकी देवी का भी स्थान था जहाँ वे प्रतिवर्ष जुट कर देवी की जातरा करते थे। यह सिलसिला आज से ७०-८० वर्ष पूर्व तक चला फिर वे अपने देवता का स्थान बड़ेडोंगर ले गये । क्योंकि इनकी एक बस्ती बड़ेडोंगर के पास और कुछ लोग बेनूर के पास निवासरत हैं। यहाँ से वे आज भी व्यापार करते हैं, वर्तमान में इनका मुख्य व्यवसाय कृषि है, परन्तु व्यापार वे आज भी करते हैं। बंजारा डोंगरी के लोग नारायणपुर के दुगाल परगना, करंगाल परगना और अबुझमाड़ के जेटीन परगना में नमक तेल कपड़ा बेचते थे और बदले में वनोपज खरीदते थे।

इतिहासकारों ने भले ही पूरे नारायणपुर क्षेत्र को अबूझमाड़ कहा हो पर छोटेडोंगर, सोनपुर, नारायणपुर, ताड़ोकी, अन्तागढ़, कोयलीबेड़ा, परतापुर परलकोट और आमाबेड़ा इस क्षेत्र के बड़े गाँव थे, जिन्हे प्रशासकीय दृष्टिकोण से जाना जाता था। अन्नम देव से संधि के बाद से परलकोट के राजा को इस क्षेत्र का जमींदार बनाया गया और मुकासा अन्तागढ़ को। इतिहासकारों के अनुसार सन् १८५४ ई. में बस्तर रियासत नागपुर के आधीन होन के बाद पूर्णरूप से अंग्रेजों के आधीन हो गया और सन् १८६१ ई. में बस्तर रियासत को मिलाकर मध्यप्रान्त का गठन किया गया। इस समय बस्तर रियासत में राजा नाम मात्र हुआ करते थे और प्रशासन अंग्रेजों के आदेश से दीवान चलाया करते थे। सन् १८७८ में बस्तर दीवान ने पटेली प्रथा प्रारंभ किया, उस समय नारायणपुर में किसे पटेल नियुक्त किया गया यह तो ज्ञात नहीं हो सका परन्तु अपने जीवन काल तक ग्राम पटेल रतन देहारी थे और चेतन मेढ़िया मालगुजार थे नारायणपुर के चलते-फिरते इतिहासकार युगल प्रसाद देवांगन बताते थे कि मालगुजार बाकुलबाही के थे और नारायणपुर घोड़ा में चढ़कर आते थे इस समय ग्राम पटेल के पास सारे प्रशासनिक अधिकार होते थे। ग्राम पटेल गाँव का मुखिया हुआ करता था तथा पटेल बनाने की प्रकिया सर्वसम्मति से चुने जाने की थी। यह पद वंशानुगत होता था, पटेल की मृत्योपरान्त उसके परिवार के

किसी सदस्य को पटेल बनाया जाता था। रतन देहारी की मृत्यु के बाद उसके परिवार के सदस्यों द्वारा इंकार करने के बाद मंगलराम बाकुलबाही को पटेल बनाया गया, यह परिवार पूर्व से मालगुजार परिवार था।

बस्तर रियासत काल के प्रतिष्ठित परिवार और नारायणपुर इतिहास के जानकार युगल प्रसाद देवांगन रियासत कालीन दस्तावेज दिखातें हैं जिसमें उनके दादा सरजू प्रसाद देवांगन को परलकोट क्षेत्र का मुख्तियार खास नियुक्त किया गया था, स्टाम्प पेपर पर लिखे इस दस्तावेज में रियासत कालीन मुहर के साथ तत्कालीन दीवान के हस्ताक्षर है और यह सन् १९०३ ई. को जारी किया गया था। इसके तहत वे परलकोट अन्तर्गत पैसे कौड़ी का सारा हिसाब किताब देखते थे। सुरजू प्रसाद देवांगन इस क्षेत्र के सबसे ज्यादा पढ़े लिखे व्यक्ति थे, वे सातवीं कक्षा तक बिलासपुर में पढ़े थे यही कारण है कि उन्हे वहाँ से बुलाकर यह पद दिया गया था। उस समय नारायणपुर के लोग उन्हें कोठीया सवकार कहते थे। वैसे नारायणपुर में बड़े और सम्पन्न परिवार को सवकार अर्थात सरकार कहने का चलन रहा है। बड़े गुरूजी के पिता और विश्वनाथ देवांगन के दादा लक्ष्मी नाथ देवांगन को बड़े सवकार और सहदेव, जगदेव परिवार को नानी सवकार आज भी कहा जाता है। कोठीया सवकार कहने के पीछे यह कारण रहा होगा कि उस समय जो पटेली जमा किया जाता था, वह अन्न के रूप में या उस समय प्रचलित रूपया कौड़ी के रूप में जमा किया जाता था। जिसे या तो बाँस से बने ढोंलंगी में या पैंरें की रस्सी से बनी ढुसी में रखा जाता था और इन्हे अलग से कोठी में रख दिया जाता था। कोठी में रखने वाले को कोठीया कहा गया।

इस समय आवागमन बैल गाड़ी से हुआ करती थी, सन् १९०५ ई. में कोण्डागाँव, नारायणपुर, अन्तागढ़ मार्ग का निर्माण प्रारंभ किया गया था। गाड़ी राहन (बैल गाड़ी रास्ता) के उपर बड़े-बड़े बोल्डर बिछाया जा रहा था। यह मार्ग को बनने में तीन वर्ष का समय लगा। सन् १९०९ में राजस्व मंडल का गठन किया गया और मुकासा अन्तागढ़ को तहसील का दर्जा दिया गया, इस समय नारायणपुर, अन्तागढ़ तहसील के अन्तर्गत आता था। इन सबके बीच जनजाति समाज में दबी हुई आक्रोश फिर से स्फुटित हो रही थी। अंग्रेज और मराठा शासन के विरूद्ध आदिवासियों में असंतोष था, इसे मात्र हवा देने की

जरूरत थी और वह समय आया जब सड़क मार्ग से तत्कालीन राजा और उनकी सौतेली माता ग्राम ताड़ोकी आई। उस समय के लोग लाल कालेन्द्र सिंह को राजा ही बुलाते थे और रानी सुबरन कुवाँरी देवी को राज माता कहते थे। इतिहास के जानकार युगल प्रसाद देवांगन बताते हैं कि "यह एक महान भूमकाल था (आदिवासी समाज बैठक को भूमकाल कहते हैं) इसमे राजा और रानी शामिल हुये थे। रानी ने ओजस्वी भाषण दिया था, जिसका सार था कि हमारे आदिवासियों पर अंग्रेज बेहताशा जुल्म कर रहे हैं और हमारे राजा रूद्र प्रताप देव कुछ नहीं कर पा रहे हैं। ऐसे में हमारी इष्टदेवी हमसे रूठ जायेगी इसलिये इस जुल्म से हमे लड़ना है और अंग्रेजी राज्य को खत्म करके मुरिया राज की स्थापना करना है।

इस सभा में हजारों आदिवासी उपस्थित थे, रानी के भाषण ने सबमें अपूर्व जोश भर दिया था। इस बैठक को लाल कालेन्द्र सिंह ने भी सम्बोधित किया था। लोगों में अभूतपूर्व उत्साह था। सभा में नारायणपुर से अन्य लोग के साथ प्रमुख रूप से रामधर बहीदार कुम्हार पारा भी उपस्थित थे वे वरिष्ठ समाज सेवी स्व० भोपाल प्रसाद कुपाल के पिता थे जिनका परिवार आज भी कुम्हार पारा में निवासरत है। इस बैठक को जिसे गोण्डी भाषी लोगों के भूमकाल कहने से इसे भूमकाल के नाम से जाना गया, इसमे नारायणपुर और अन्तागढ़ के हल्बा और मुरिया जनजाति के लोगों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया। यहाँ से लौटने के बाद सभी अपने-अपने गाँव और आस-पास के लोगों को आन्दोलन से जोड़ने लगे। इस बैठक में गुण्डाधुर के भी शामिल होने की बात कही जाती है। क्योंकि राजा और राज माता गाड़ी में बैठकर गये और गुण्डाधुर अपने साथियों के साथ नारायणपुर के चण्डीबड़ में कुछ दिन रूके थे। उनके विषय में पहले के लोग अलौकिक कथा सुनाया करते थे, लम्बा चौड़ा व्यक्तित्व था जब वे चलते थे तो ऐसा लगता था कि उड़ रहे हो हर समय तीर-धनुष और टंगिया कंध पे लिये रहते थे। इनकी वीरता के किस्से भी कही जाती है कि वे अकेले ही अंग्रेज सैनिको को मारा करते थे उनके रहने से आदिवासियों में जोश भर जाता था आदि आदि। यहाँ से गुंण्डाधंर का काफिला छोटेडोंगर की ओर निकल गया। इसके एक दो माह बाद नारायणपुर और छोटेडोंगर में आगजनी और मारपीट की छुटपुट घटनायें हुई पर किसी बड़ी वारदात के बारे में कोई जानकारी नहीं मिल पाई।

अंग्रेजों के शासन काल को स्टेट का शासन कहा जाता था, जहाँ से राहत कम और आफत ज्यादा आती थी। यही करण था कि आम जनता इस शासन से नाखुश थी और इस बलवा में भाग ले रही थी। जैसा की इतिहास में एक मुसलमान व्यापारी की हत्या विद्रोहियों द्वारा किये जाने की बात दर्ज है। ऐसी कोई घटना के बारे में क्षेत्र की जनता अनभिज्ञता प्रगट करती हैं। तो क्या? ऐसी अफवाह विद्रोहियों को उकसाने के लिये या स्टेट के अधिकारियों को डराने के लिये फैलाई गई थी। कुछ भी हो पर इतना जरूर था कि अन्तागढ़, नारायणपुर और छोटेडोंगर का बीहड़ में विद्रोहियों का सामना करने की ताकत स्टेट सैनिकों में नहीं थी। युगल प्रसाद देवांगन के अनुसार नारायणपुर और अन्तागढ़ से इस विद्रोह का नेतृत्व आयतु माहरा को सौंपा गया था, और वे बड़ी कुशलता से इसका संचालन कर रहे थे। इस सम्पूर्ण क्षेत्र में आदिवासी विद्रहियों का कब्जा हो चुका था। विद्रोही सेना बड़ी वीरता से लड़ रही थी, ऐसी खबर आ रही थी कि बस्तर की रियासत में अब तब मुरिया राज स्थापित होने ही वाला है। स्टेट गवर्मेन्ट ने अंग्रेजी सेना बुला ली है। बड़े जोर-शोर से विद्रोह को कुचला जा रहा था और कुछ दिन बाद खबर आई कि बहुत सारे विद्राहियों को मार दिया गया और कुछ लोगों को पकड़ लिया गया है।

इस समय आयतु महारा अपने साथियों के साथ छोटेडोंगर की ओर मोर्चा सम्हाला था। इसी ओर से अंग्रेजी सेना आने की संभावना थी और अनुमान सही निकला, इसी ओर से अंग्रेजी सेना ने विद्राहियों पर आक्रमण किया। छोटेडोंगर के लोग बताते हैं कि बहुत जोरदार लड़ाई हुई। एक ओर अंग्रेजी सेना बन्दुक से गोली बरसा रहे तो एक ओर से विद्रोही सेना तीर बरसा रही थी। अपने बुजुर्गो के बताये अनुसार तिलक बेलसरिया छोटेडोंगर बताते हैं कि माड़िन नदी के एक किनारे पर विद्रोही सेना और दूसरे किनारे पर अंग्रेजी सेना लड़ाई लड़ रही थी, कोई पीछे हटने के लिय तैयार नहीं थी। कुछ विद्रोही मारे भी गये थे मगर तीर गोली पर भारी पड़ रही थी। इसी बीच अंग्रेजी सेना की सहायता करने के लिये और सेना आ गई। अग्रेजों ने चालाकी किया, माड़िन नदी में अपने साथ लाये पेट्रोल को बहा दिया और उसमें आग लगा दी। बहते हुये पानी में पेट्रोल जलने लगा, इस समय तक पेट्रोल के विषय में लोगों को मालूम नहीं था। पानी में आग लगना उनके लिये किसी चमत्कार से कम नहीं था। किसी अनहोनी के डर से विद्रोही सेना ने मैदान छोड़कर माड़ में भाग गये

और इस क्षेत्र में इस विद्रोह का अन्त हुआ। इसी समय की एक किस्सा सुखराम उसेण्डी छोटेडोंगर बताते हैं कि एक माड़िया विद्रोही मलौल मुदिया थे वे जादू-टोना जानते थे उन्होने अपने चारो ओर घेरा बनाया और अंग्रेजों से लड़ने लगे उनके द्वारा चलाया गया तीर अंग्रेजों तक तो जाती थी पर अंग्रेजों की गोली उनको नही लगती थी। लड़ते-लड़ते मुदिया का तीर खत्म हो गया तब अंग्रेजों ने उसे चारो ओर से घेर कर गोली बरसायी पर उसे नहीं लगी। फिर सबने उसे पकड़ लिया और दूर एक पेड़ में बांध दिया उस घेरे से हटते ही उसका जादू समाप्त हो गया और उसे उसी पेड़ में गोलियों से छलनी कर दिया गया। वह पेड़ अभी तक इस घटना का साक्षी था, अभी वर्तमान में सड़क बनाने के लिये उसे काट दिया गया है।

वैद्यराज हेमचन्द मांझी बताते हैं कि एक बार तो लगा कि हमारे पुरखों ने यह लड़ाई जीत ली है, मगर छः सात माह बाद पता चला कि सब लोगों को पकड़ लिया गया है और जेल में डाल दिया गया है। इसके बाद हमारे क्षेत्र में आखरी लड़ाई हुई और यहाँ के लोग माड़ में चले गये। कुछ दिन के बाद स्टेट गवर्मेन्ट के पुलिस गाँव गाँव आकर यहाँ के स्थानीय लोगों को कोड़ा मारने की सजा दी। यही बात स्व० रामप्यारा सिंह बघेल ने मुझे बताया था कि आज के महावीर मंदिर, उस समय का चौपाल था, जहाँ सब गाँव भर के लोग सार्वजनिक काम के लिये जमा होते थे। पूरा गाँव जमा था जब अंग्रेज पुलिस सबको कोड़ा मार कर सजा दे रही थी। तुम्हारे दादा राम शंकर पाण्डेय की बारी आई तो सबने कहा " नहीं ये ब्राम्हण है और बाहर से आया है इसने गलती नहीं की है। उस जमाने की बात ही अलग थी, उन्हे सजा नहीं दी गई। ऐसी ही बात मेरे दादा जी ने मेरी माता को बताया करते थे। "जब हम ईहाँ आयेन तब रोड भी नाही रहा, खाली जंगल रहा। रायपुर से हमे चौकी मोहला के जमींदार अपने साथ ले गये। ऊहाँ से हमे कोलर के माल गुजार ने, उनको पूजापाठ के लिये पण्डित चाहिये रहा ओ ले आंये और हमका दुय एकड़ जमीन दिया घर दिया कुछ साल रहने के बाद हम ऊहाँ अपन परिवार ले आये। लरिकन के पढ़ाई-लिखाई के लिये हम नारायणपुर चले आये तबसे यहीं हैं।"

युगल प्रसाद देवांगन के अनुसार इसके बाद पटेल से प्रशासनिक अधिकार ले लिया गया था, परन्तु वह गाँव का मुखिया बना हुआ था। उस समय किसी

भी विवाद के निपटारे के लिये स्टेट के अधिकारी आते थे तब सारे गाँव के लोग मिलकर उनकी व्यवस्था किया करते थे। पटेल रतन देहारी थे और माल गुजार दो भाई तिजऊ रजऊ थे। ये लोग चार भाई थे और छतीसगढ़ से आये थे, अभी केवल एक भाई शिवराम देवांगन का परिवार नारायणपुर में है। इस बीच रतन देहारी की मृत्यु के बाद सांवला मुकड़दम को पटेल बनाया गया जो निषाद परिवार के थे। सुरजुप्रसाद देवागंन धरमा पातर और रामधर बहीदार (कुपाल) के द्वारा सभी प्रशासनिक कार्य किये जाते थे। अधिकारियों के सारे प्रश्नों का उत्तर और उनके आने जाने की व्यवस्था सभी कार्य का संपादन इन्ही तीनों के जिम्मेवारी थी। इसी बीच सन १९२४ ई. में सरजू प्रसाद देवांगन का देहावसान हो गया। धरमा पातर और रामधर बहीदार भी सियाने हो गये थे, उनकी सहमति से उस समय नव जवान रहे नीलकण्ठ देवांगन, सुक्कू इजारदार (देवांगन) और मंगलराम मांझी को हेड़ मुकड़दम बनाया गया। मालगुजारी का खात्मा हो गया था। जमीन के नाप के अनुसार लगान लिया जाने लगा था। जिसे पट्टी पटाना कहते थे। आवागमनविहीन क्षेत्र था और पट्टी पटाने के लिये अन्तागढ़ जाना पड़ता था, छोटेडोंगर से तहसील कार्य के लिये अन्तागढ़ जाना बहुत ही कष्टप्रद था इन्ही सब कठिनाई को देखते हुये तहसील को अन्तागढ़ से नारायणपुर लाया गया।

उस समय के लोगों से सुने लोग बताते थे कि नारायणपुर से पाँच सात बैलगाड़ी और बाजा गाजा लेकर अन्तागढ़ से तहसील कार्यालय को लेकर आये थे। उस समय का तहसील वर्तमान मोदनारायण झा के घर के पास स्थापित किया गया था। यह सन् १९३४ ई. की बात है, तब तहसील और थाना भवन का निर्माण प्रारंभ हो चुका था, जो सन्१९३८ ई' में बनकर तैयार हुआ। इस समय तहसीलदार संग्रामसिंह थे उनके बाद पं. बाला प्रसाद दुबे तहसीलदार पद पर आसीन हुये जिनके कार्यकाल को आज भी लोग याद करते है। इनके समय में निस्तारी तालाब की खुदाई प्रारम्भ हुई, इस समय यह स्थान धोबिन डोबरा कहलाता था। जन सहयोग से इस तालाब की खुदाई की गई। गाँव के लोग बताते हैं कि बहुत दूर-दूर से लोग खुदाई करने आते थे। उस समय कौड़ी पैसे का चलन था, मजदूरी के लिये कौड़ी दी जाती थी और तहसीलदार साहब खुश होते थे तब कृषि भूमि भी देते थे। तालाब सन् १९४० ई. में पूर्ण हुआ। यह उस समय ५५ एकड़ में बनाया गया था। इसके बाद

से ही नारायणपुर का साप्ताहिक बाजार और ऐतिहासिक मावली मंडई को इसके पास लाया गया। इसी समय जन सहयोग से मुसाफिर खाना (सराय) का निर्माण हुआ जिसमें आज सरस्वती शिशु मंदिर स्कूल लगता हैं। लोगों के द्वारा बेगार प्रथा के अन्तर्गत काम करने के कारण इस तालाब को बंधुआ तालाब कहा गया। इस तालाब में मेरी माँ यशोदा देवी ने भी बेगारी की थी।

उस समय भारत छोड़ो आन्दोलन जोरों पर था, गांधी बाबा का संदेश चारो ओर फैला हुआ था। नीलकण्ठ देवांगन जे.पी. राय, बृजलाल ठाकुर, मेहता राम देवांगन, मंगलराम मांझी, हजारी लाल देवांगन, जयराम देवांगन, जगतु घड़वा और मेरे पिता सत्यनारायण पाण्डेय ने बढ़ चढ़ का भाग लिया। जुलुस निकाल कर तहसील कार्यालय तक जाते थे, शाम को किसी भी दलित के यहाँ चांय पीकर छुआ-छूत मिटाने का संदेश देते थे। इसी समय बैजनाथ राठौर बहीदार ने अपने घर में स्थापित जगन्नथ भगवान की मूर्ति गाँव के लोगों को सौंपा। जिसे नारायणपुर सात पारा के लोगों ने जगदीश मंदिर बनाकर स्थापित किया। इस समय तक ग्राम पटेल सावंला राम निषाद (मुकड़दम) हुआ करते थे । फिर सन् १९४७ में भारत आजाद हुआ और लोगों ने अपने-अपने घरों में झंडा फहराया। जानकार बताते है कि उस समय की खुशियाँ देखते ही बनती थी। हर दिन जुलुस भाषण सभा होते ही रहते थे। हिन्दु मुस्लिम का दंगा हुआ नारायणपुर की शान्तिप्रिय जनता अपने मुस्लिम भाईयों को पूर्ण सुरक्षा देकर अन्तागढ़ तक बैलगाड़ी में छोडने गये और उनके घरों की सुरक्षा के लिये गाँव के नवजवान लोगों को नियुक्त किया जिसकी अन्य कहीं मिशाल नहीं है। सन् १९५० में जब भारत का संविधान बना २६ जनवरी को उस समय के तहसीलदार सुरोजिया साहब ने अंग्रेजी में भाषण दिया, भले लोगों को समझ नहीं आया मगर ताली बहुत बजी। इस दिन स्टेट गणतंत्र में मर्ज हुआ और ब्रिटिश हुकुमत का अन्त हुआ।

सन् १९ ४८ ई' में बस्तर रियासत और कांकेर रियासत को मिला कर एक बहुत बड़े जिले का निर्माण किया गया और नारायणपुर कांकेर उप जिला के अन्तर्गत रखा गया। १९५२ ई. में विधान सभा का गठन किया गया उस समय बस्तर जिला मध्यप्रान्त के अन्तर्गत आता था। पहली बार विधायकें का मनोनयन किया गया था और नारायणपुर विधान सभा का मनोनीत

विधायक बनने का सौभाग्य रामेश्वर धनेलिया को मिला। इसी बीच सन् १९५६ में बहु उद्देशीय ब्लॉक का गठन नारायणपुर दन्तेवाड़ा और भोपालपटनम में किया गया। विधान सभा का पहला चुनाव सन् १९५७ में हुआ, फिर से रामेश्वर धनेलिया विधायक निर्वाचित हुये। इसी समय मध्यप्रान्त की राजधनी नागपुर से भोपाल किया गया और इसका नाम पड़ा मध्य प्रदेश। सन् १९५९ में भू राजस्व संहिता लागू हुआ और ६२-६३ में केडस्टल सर्वे हुआ एवं भूमि स्वामी हक की भूमि का खसरा नम्बर बदला गया। १९६२ में दूसरा चुनाव हुआ और रामेश्वर धनेलिया के पुत्र राम भरोस धनेलिया विधायक बने। अब तक के विधायकों की सूची :-

क्रमांक	सन्	विधायक	निर्वाचन	केफियत
१	१९५२	रामेश्वर धनेलिया	मनोनीत	
२	१९५७	रामेश्वर धनेलिया	निर्वाचित	
३	१९६२	राम भरोस धनेलिया	निर्वाचित	
४	१९६७	बद्रीनाथ जयदेव बघेल	निर्वाचित	
५	१९७२	रतिराम सोरी	निर्वाचित	
६	१९७७	गडरूराम सोरी	निर्वाचित	
७	१९८४	बद्रीनाथ जयदेव बघेल	निर्वाचित	
८	१९८९	शम्भूनाथ नायक	निर्वाचित	
९	१९९४	विक्रम उसेन्डी	निर्वाचित	
१०	१९९९	मन्तुराम पवार	निर्वाचित	
११	२००४	विक्रम उसेन्डी	निर्वाचित	
१२	२००९	केदार कश्यप	निर्वाचित	
१३	२०१४	केदार कश्यप	निर्वाचित	

सन् २००४ के बाद विधान सभा का पूनर्गठन हुआ और नारायणपुर विधान सभा जो अब तक अन्तागढ़, पखजूर से मिलकर बन था, उसका क्षेत्र बदलकर ओरछा, मर्दापाल और भानपुरी तक किया गया। सन् १९५९ में शासन ने श्री नीलकण्ठ देवागन को नारायणपुर का पहला सरपंच नियुक्त किया इस समय उप सरपंच स्व. सत्य नारायण पाण्डेय (मेरे पिता) थे जिनका अवसान १९६६ में हुआ। नीलकण्ठ देवांगन १९७७ तक लगातार १८

वर्षो तक सरपंच रहे। उन्होने १९७७ में अपने स्वास्थ्य कारणों से सरपंच बनने से इंकार करने के बाद सेठ फकीर चन्द इल्वाद्धि जी को सरपंच बनाया गया। कुछ ही काल के पश्चात वे स्वर्ग सिधार गये और सरपंच बृजलाल ठाकुर बनाये गये। इसके बाद वार्डो का गठनकर १९७९ में विधिवत चुनाव कराये गये, इस समय सरपंच का चुनाव निर्वाचित पंचगण किया करते थे। जिसके पक्ष मे ज्यादा संख्या होती थी, उसे सरपंच बनाया जाता था। नारायणपुर के पहले निर्वाचित सरपंच होने का गौरव मोहन सिंह राठौर को जाता है, परन्तु पूरे काल तक वे पंचों का विश्वास नहीं रख पाये और उन्हे अपदस्थ कर दिया गया। उनके स्थान पर उप सरपंच रहे धनीराम पात्र को सरपंच चुना गया। इसके बाद सरपंच का सीधा चुनाव किया गया और पहला निर्वाचन धनीराम पात्र का किया गया। निर्वाचित सरपंचों की सूची इस प्रकार हैं।

क्र.	कब से कब तक	सरपंच के नाम	निर्वाचन	केफियत
१	१९५८ से १९७७ तक	नीलकण्ठ देवांगन	मनोनीत	
२	१९७७ से १९७७तक	सेठ फकीरचन्द्र इल्वाद्धी	मनोनीत	
३	१९७७ से १९७८ तक	बृजलाल ठाकुर	मनोनीत	
४	१९७९ से १९८४ तक	मोहन राठौर/धनीराम पात्र	निर्वाचित	
५	१९८४ से १९८९ तक	धनीराम पात्र	निर्वाचित	
६	१९८९ से १९९४ तक	बृज मोहन देवांगन	निर्वाचित	
७	१९९४ से १९९९ तक	श्रीमती किरण देवांगन	निर्वाचित	
८	१९९९ से २००४ तक	हीरासिंह देहारी	निर्वाचि नगर	पंचायत का गठन
९	२००४ से २००९ तक	श्रीमती सुनीता मांझी	अध्यक्ष	नगर पंचायत
१०	२००९ से २०१४ तक	हीरासिंह देहारी	अध्यक्ष	नगर पंचायत/ पालिका
११	२०१४से ,,,,,,,,,,	श्रीमती वेदवत्ती पात्र	अध्यक्ष	नगर पालिका

निर्वाचित जनपद अध्यक्षों की सूची

क्रमांक	कब से कब तक	अध्यक्षों के नाम	निर्वाचन	केफियत
१	१९७७से १९८४तक	राम शंकर जोशी	निर्वाचित	
२	१९८४से १९८९तक	राम शंकर जोशी	निर्वाचित	
३	१९८९से १९९४तक	धनीराम पात्र	निर्वाचित	
४	१९९४से १९९९तक	सत्तेरसिंह नेताम	निर्वाचित	
५	१९९९से२००४तक	श्रीमती शांती दर्रो	निर्वाचित	
६	२००४से २००९तक	रजनुराम नेताम	निर्वाचित	
७	२००९से२०१४तक	श्रीमती राजबत्ती दुग्गा	निर्वाचित	
८	२०१४से.....	रजमन कोर्राम	निर्वाचित	

जिला नारायणपुर का गठन १ मई २००७ को हुआ। विधिवत कार्य का प्रारंभ ३ मई २००७ को किया गया। पहले कलेक्टर होने का गौरव माननीय एम. एस. परस्ते जी को है। नारायणपुर में अब तक पदस्थ कलेक्टर महोदयों की सूची

क्र.	कब से कब तक	नाम
	०३-०५-०७से २२-०४-२००८ तक	एम. एस. परस्ते
३	३०-१२-२००८ से ३०-०५-२००९ तक	अविनाश चम्पावत
४	०३-०६२००९से २४-०६-२०११ तक	एल. एस. केन
५	२७-०६-२०११से ०३-०८-२०१२ तक	एस. आर. ब्रम्हाणे
६	०३-०८-२०१२से०९-०४-२०१३ तक	भूवनेश यादव
७	०९-०४२०१३से २३-०६-२०१४ तक	यशवंत कुमार
८	२३-०६-२०१४ से.....	टामन सिंह सोनवानी

■ अन्तराष्ट्रीय ख्याति ■

प्रकृति का एक टुकड़ा अबूझमाड़

नारायणपुर अबूझमाड़ का प्रवेश द्वार है, यहाँ से होकर ही अबूझमाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में जाया जाता है। पश्चिम उत्तर के महाराष्ट्र सीमा से प्रारंभ होकर इसका विस्तार वर्तमान में तेलंगाना की सीमा तक जाता है। नारायणपुर जिला में क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा विकासखण्ड ओरछा (अबूझमाड) वन सम्पदा से आच्छादित, खनिज सम्पदा से भरपूर, नैसर्गिक सौन्दर्य से ओत प्रोत प्रकृति का एक टुकड़ा है। इसका क्षेत्रफल ३९०५ वर्ग कि.मी. है, इस मान से जनसंख्या का अनुपात बहुत ही कम मात्र २७४३१ है। पहले अबूझमाड़ का हान्दावाड़ा पंचायत के ८ गॉव दन्तेवाड़ा जिले में तथा ३९ गॉव बीजापुर जिले में आते थे, वर्तमान में इन्हे अब नारायणपुर जिले में कर दिया गया है। यहॉ निवासरत आदिवासियों को विशेष संरक्षित अनुसूचित जनजाति का दर्जा प्राप्त है और इनकी जीवन शैली सारे विश्व के लिये कौतुहल का विषय बना हुआ है। इसे जानने समझने के बहुतेरे प्रयास हुये पर इस अबूझमाड़ को किसी ने बुझ नहीं पाया। अबूझमाड़ नारायणपुर का हिस्सा होने के कारण विश्व स्तर पर नारायणपुर को जाना जाता है।

अबूझ का शाब्दिक अर्थ जिसे बूझा न गया हो तथा माड़ का अर्थ पहाड़ से लगाया जाता है, किन्तु यह ठीक नहीं है कि एक शब्द का अर्थ हिन्दी और एक का अर्थ गोण्डी में निकाला जाये इसलिये दो शब्द से बने अबूझमाड़ का अर्थ गोण्डी में निकाला जाये तब समझने में आसानी होगी। गोण्डी में अबूझ यानी गंवार तथा माड़ का अर्थ पहाड़ होता है, अर्थात पहाड़ में रहने वाला गंवार वैसे माड़ में रहने के कारण इन्हे माड़िया कहा जाता है यह इनका जाति सूचक शब्द भी है, पर पहाड़ी को जाति सूचक शब्द मान लेना भी तर्क संगत नहीं है। वैसे भी इनके राजस्व अभिलेख में इनकी जाति मुरिया अंकित रहा है, जिसे बाद में सुधारकर माड़िया किया गया। इसका अर्थ पहाड़ी लोग, इन्हें गंवार इन लोगो के विषम गोत्रीय लोगो द्वारा मजाक में कहा गया जो प्रचलन मे आ गया है। जिसे अध्ययन करने वाले लोग व्यवहार में लाये और यह नाम लोकप्रिय हुआ। प्रकृति आधारित जीवन-यापन करने वाले अबूझमाड़िया केवल नमक के

लिये दूसरे लोगो से जुड़ते है। ये लोग पेन्दा खेती (झुम खेती) करने के लिये मैदानी क्षेत्र से पहाड़ पर गये और वहीं के हो कर रह गये, इसलिये इनका रहन-सहन, भाषा-बोली सब मैदानी क्षेत्र के आदिवासियों से मिलती है। इनकी रिस्तेदारी रोटी-बेटी का भी सम्बन्ध आपस में है। उपनाम (सरनेम) एक होने से आपस में भाई जैसा व्यवहार करते है और विषम गोत्रीय से सम्बन्ध जोड़ते है।

अबूझमाड़ के आदिवासियों के विषय मे कई तरह की भ्रान्तियां लोगों के मन में कौतुहल का कारण बना हुआ है। पूर्व के अध्ययनकर्ताओं ने इनके लिये कई तरह की मनगढ़ंत बातें प्रचारित किया जिसका हकीकत से दूर-दूर तक नाता नहीं है। यही कारण है कि इनके जीवन का शोध परक अध्ययन होना आवश्यक हो जाता है। विदेशी अध्ययनकर्ताओं ने अबूझमाड़ को अवश्य अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाई परन्तु इनका अध्ययन मैदानी इलाका रहा। वे केवल अन्दाजा लगाकर इन्हे जानने का दावा करते रहे, अबूझमाड़ के लोगों की जीवन शैली पहनावा व्यवहार आदि अपने आप में विलक्षण है। इसलिये ये अध्ययनवेता, सैलानी सबको अपनी ओर आकर्षित करते हैं। इनकी विचित्रता को ही सब बूझने का प्रयास करते हैं। बुनियादी आवश्यकता का आभाव इलाज पानी का न होना प्रकृति की गोद में अपनी सब जरूरतों के साथ जीवन जीने की कला इस जनजाति की विशेषता है। जो इन्हें विश्व प्रसिद्ध बनाता है। यह बहुत ही दुर्गम आवागमनविहीन क्षेत्र है, यहाँ के लोगों के विकास क लिये बहुतेरे प्रयास हुये पर नतीजा शुन्य रहा। इसके अलावा इस अबूझमाड़ का प्राकृतिक सौन्दर्य यहॉ का मुख्य आकर्षण है। प्राकृतिक गुफायें झरना झील फूलों की घाटी से भरपूर यह सम्पूर्ण अंचल सबका मन मोह लेती है। यहॉ आने वाला सैलानी एक बार तो ऐसा महसूस करता हैं कि वह भी इस प्रकृति का अंग है। चित्रकोट जलप्रपात के सदृश्य कई जलप्रपात हैं। जिन्हे देखने का बार बार मन करता है।

अबूझमाड़ के दर्शनीय स्थल एवं जलप्रपात

अंतराष्ट्रीय ख्याति- हांदावाड़ा जलप्रपात

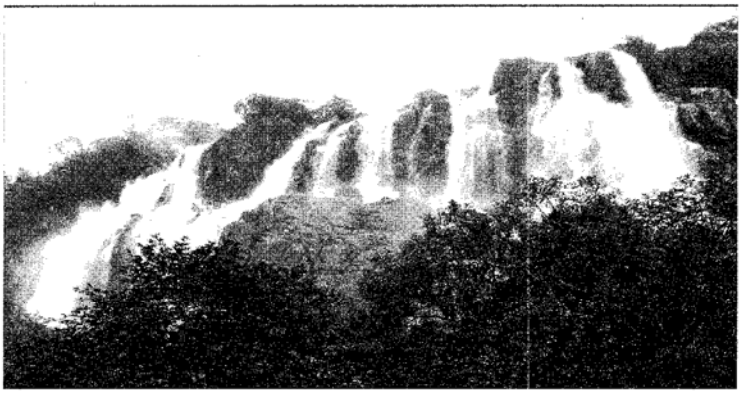

अबूझमाड़ के हान्दावाड़ा का यह भू-भाग जो पहले दन्तेवाड़ा जिले के अन्तर्गत आता था, अब यह ओरछा ब्लाक का हिस्सा है। यहॉ एक प्राकृतिक जलप्रपात है जो करीब १५० फीट से भी अधिक ऊॅचाई से गिरता है और बाद में यह पत्थरों से बहकर प्राकृतिक झरना का निर्माण करता है। यहॉ का मनोहर दृश्य मन को बरबस मोह लेता है। वर्तमान में एक फिल्म बाहुबली-२ के लिये इसका फिल्मांकन किया गया है। इस स्थान पर भैरमगढ़ के नेलसनार से जाया जा सकता है परन्तु इन्द्रावती नदी को पार करने की जहमत उठानी पड़ेगी। यहॉ ओरछा, जाटलूर होकर भी जाया जा सकता है यह मार्ग दूर्गम जरूर है परन्तु दुपहिया वाहन यहाँ पहुॅचने का एक मात्र साधन है। कठिनाई भरा रास्ता पार करने के बाद यहॉ आकर लौटने की इच्छा नहीं होती। इसी प्रकार का जलप्रपात कच्चापाल में भी स्थित है जो ऊॅचें से गिरने के बाद झरने के रूप में परिवर्तित होता है। यह प्राकृतिक झरना तीरथगढ़ के समान है, परन्तु यहॉ की हरियाली एक अलग ही छटा बनाती है। यहॉ नारायणपुर से सोनपुर और कोहकामेटा से जातें है। सोनपुर और कोहकामेटा तक चार पहिया वाहन तथा उसके बाद पैदल या दुपहिया वाहन से पहुॅचा जा सकता है। इन दोनों जगह पर वन जीवों को भी देखने का अपना एक अलग आनन्द है।

इसके अलावा भी कई मनोहार दृष्टव्य स्थल सम्पूर्ण नारायणपुर जिले (अबूझमाड़) में बिखरे पड़े है। छोटे डोगंर से आठ कि.मी.दूरी पर पूर्व दिशा में ग्राम मढ़ोनार स्थित है, यहॉ से तीन कि'मी. पूर्व में एक प्राकृतिक जलप्रपात है। यह स्थान बहुत ही सुन्दर है, इस जलप्रपात की खासियत यह है कि यहॉ से गिरने वाला पानी दूधिया रंगत लिये हुये होती है। नारायणपुर से लगभग ६० कि.मी. की दूरी पर है, यहॉ तक चार पहिया वाहन से आया जा सकता है। छोटे डोंगर के पास होने यह एक पर्यटक स्थल के रूप में स्वमेव ही विकसित हो रहा है। छुट्टियों में आस-पास के लोग अपनी जरूरतों के सामान के साथ यहॉ पिकनिक मनाने आने लगे हैं। प्राकृतिक रूप से यह क्षेत्र इतना सुन्दर है कि इसके पास ही ग्राम बेचा में विहंगम योग संस्था के गुरूदेव स्वतंत्र देव जी महाराज का आश्रम बनाया गया है। इस जगह के पूर्व में लगभग १० कि.मी. में तोड़मा स्थित है। यह क्षेत्र धार्मिक आस्था का केन्द्र है। यहॉ के प्राकृतिक गुफा में एक शिवलिंग है और चारों तरफ कदली वन है। कदली वन केले के जंगल को कहतें हैं पुराणों में वर्णन है कि जिस स्थान पर कदली वन होता है, वहॉ साक्षात शिव-पार्वती विहार करतें हैं। इस स्थान का धार्मिक महत्त्व इसलिये भी बढ़ जाता है कि रामचन्द्र जी वनवास के समय इस जगह रूके थें इसे रामवन गमन मार्ग के रूप में चिन्हित किया गया है, यह दर्शनीय स्थल है।

पोरम झील

अबूझमाड़ के मुरूम वाड़ा पंचायत के पोरम गॉव में एक प्राकृतिक झील स्थित है, यह झील पक्षी विहार के रूप में स्वमेव ही विकसित हो गया है। इस झील में जंगली पक्षियाँ हर मौसम में आती है, विहार करती है, उनके प्रजनन काल के लिये इससे बढ़िया जगह हो ही नहीं सकती। इस झील के आस पास चारो तरफ ऊँचे-ऊँचे वृक्ष है जिससे सूरज की रोशनी दोपहर के समय ही इस झील में पड़ती है, तब झील की रंगत सुनहरी हो जाती है। जैसे किसी ने सोना घोल कर उड़ेल दिया हो मन करता है, इस दृश्य को एकटक देखते रहें, यहॉ किलोल करती पक्षियों के साथ खुद भी चिल्लाने लगे। यह स्थान बहुत ही बीहड़ में स्थित होने से इसका प्रचार-प्रसार नही के बराबर हुआ है। इस जगह जाने के लिये पहले हमे ओरछा जाना पड़ेगा यहॉ से लगभग

३५ कि'मी. पूर्व में जाटलूर पंचायत के दक्षिण में ३ कि.मी. जाने से पोरम गॉव के किनारे यह झील व्यवस्थित है। कहते हैं कि अंग्रेज शासन काल में कुटरू जमीदारी से इस जगह आने के लिये कच्चा रास्ता बनाया गया था और अंग्रेज अफसरान यहॉ तफरीह के लिये आते रहें हैं। आज भी उस सड़क के अवशेष मौजूद हैं। बारसूर से भी यहॉ जाया जा सकता है परन्तु मार्ग नहीं होने से यहॉ से जाना बहुत दुष्कर है।

फूलों की घाटी

अबूझमाड का मध्य क्षेत्र को कुतुल के नाम से जाना जाता है, यह नारायणपुर के बाकुलवाही से ४० कि.मी. दूरी पर स्थित है। बहुत ही सघन वन क्षेत्र है, परन्तु राम कृष्ण आश्रम का उप केन्द्र होने से यहॉ आने जाने के लिये कच्चा मार्ग बना हुआ है। इस क्षेत्र की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति इसी मार्ग से होती है। कुतुल से पहले और कस्तुरमेटा के बीच पदनार पंचायत के उसेबेड़ा के लिये एक रास्ता जाता है यही स्थित है फूलों की घाटीं, इसकी विशेषता है कि यहॉ बारहमासी फूलने वाले पौधे मौजूद है। कश्मीर की फूलों की घाटी से अलग यहॉ प्राकृतिक वनफूलों की महक वातावरण को महका रहीं है, रंग-बिरंगी फूलों में मंडराते भौंरें और तितलियॉ से पूरा माहौल और भी मनमोहक हो जाता है। यह फूलों की घाटी बीहड़ में स्थित होने के कारण इसकी पहचान पर्यटन स्थल के रूप में आज तक नहीं हो पाई है। इस दूर्गम इलाके में मात्र दुपहिया वाहन से ही जाया जा सकता है, अभी यहॉ लोगों की आवा-जाही नही के बराबर है, इस घाटी को अपनी पहचान की प्रतीक्षा आज भी है।

खुरसेल वेली

सागौन के लिये प्रसिद्ध इस घाटी का सम्बन्ध पर्यटन से ज्यादा प्रशिक्षण स्थल के रूप में है, इसको जैव विविधता के लिये जाना जाता है। यह घाटी प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ऐसी-ऐसी विशेषताएँ समेटे हुये है कि सभी दृष्टिकोण से इसका महत्त्व बढ़ जाता है। पर्यटन के रूप में यह पूर्व से विकसित क्षेत्र है, यह वनमण्डल नारायणपुर का सोनपुर पूर्व परिक्षेत्र है।

यहॉ आने वाले अतिथियों के लिये वन विभाग ने एक अतिथिशाला का निर्माण किया हुआ है। इस संरक्षित वन क्षेत्र में जंगली जानवर बहुतायात में पाये जाते है। कारण यह कि यहॉ इन्हे चारा और पानी दोनों आसानी से मिल जातें है। यहॉ उॅचाई से गिरता हुआ एक प्राकृतिक झरना है, जो बहुत ही सुन्दर मनोहारी दृश्य दिखाता हैं। पशु-पक्षियों का निवास होने से प्रकृति प्रेमियों के लिये आकर्षण का केन्द्र है। बालाघाट और देहरादून रेंजर्स ट्रेनिंग के प्रशिक्षुओं को यहॉ अध्ययन के लिये अनिवार्य रूप से लाया जाता है। अबूझमाड़ के गुड़ाबेड़ा में यह स्थान व्यवस्थित है। मुख्य आकर्षण यहॉ दो सागौन के वृक्ष हैं, जिन्हे मामा-भांजा नाम दिया गया है। बताते हैं कि मामा-भांजा पारद (शिकार) खेलते समय इन्ही वृक्ष के नीचे दोनों की मृत्यु हुई थी, तबसे इसका नाम मामा-भांजा वृक्ष पड़ा। इनका व्यास ४ मीटर है, मान्यता है कि इन वृक्षों को काटा नहीं जाता। यहॉ ग्राम कोलर, ताड़ोकी, कोयलीबेड़ा और सितरम से जाया जा सकता है।

अबूझमाड़ एक विहंगम क्षेत्र है, जहॉ आवागमन के साधन होने के बाद भी जाने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है। जनवरी से मई जून सूखा होने से दुपहिया सबसे अच्छा साधन है, खाने-पीने की वस्तुयें साथ रहे तो और भी बेहतर है। प्रकृति को करीब से जानने और महसूस करने के लिये अबूझमाड़ अवश्य देखा जाना चाहिये।

घोटुल

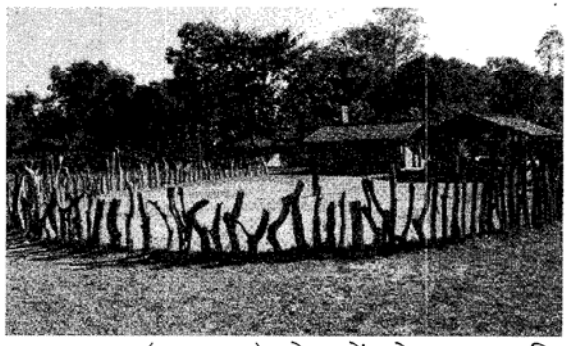

नारायणपुर (अबूझमाड) क्षेत्र में गोण्ड जनजाति की उपजाति मुरिया और माड़िया जनजाति निवास करती है। इन दोनों जनजातियों की सामाजिक व्यवस्था में घोटुल प्रथा प्रचलनशील है। यह एक सामाजिक संस्था है, जो सारे गाँव की सामाजिकता की केन्द्र बिन्दु होती है। नारायणपुर क्षेत्र के मैदानी इलाके के मुरिया बाहुल्य गाँव और पहाड़ी क्षेत्र के माड़िया बाहुल्य गाँव में अनिवार्यत: घोटुल होती है। यह अविवाहित युवक-युवतियों की रात्रिकालीन संस्था है। जहाँ शाम ढलते ही तोड़ी (एक पारम्परिक आदिम वाद्य) की आवाज में गाँव के सभी नवयुवक-युवतियाँ जुटकर सांस्कृतिक क्रियाकलापों में भाग लेते हैं। नाचते हैं, गातें हैं, कहानी-किस्से कहते हैं। बस्तर का आदिवासी समाज सामुदायिक जीवन-यापन करता है, वह कोई भी कार्य समूह में करता है।, चाहे वह व्यक्तिगत कार्य ही क्यों न हो। व्यक्ति अपने कार्य की जानकारी गाँव के लोगों को देकर मद्द करने को कहता है। फिर सब मिलकर उस कार्य को इस तरह से करते हैं कि वह उस व्यक्ति का काम न होकर पूरे गाँव का कार्य हो और यही सामाजिकता आदिवासी समाज की सुन्दरता है। यह सामाजिकता उन्हे गाँव के घोटुल में सिखाई जाती है। यह कहा जा सकता है कि घोटुल, आदिवासी समाज की सामुदायिक जीवन जीने की कला सीखने की पाठशाला है। जहाँ जुटकर प्रत्येक आदिवासी युवक- युवतियाँ संग-संग जीने मरने की कला सीखतें है। इसको भले ही घोटुल कहा गया पर इसका गोंडी उच्चारण गोठुल है, इस शब्द का अर्थ मालूम नहीं हो सका मगर भावार्थ जिस तरह गोठान पालतू-पशुओ का विश्राम स्थल होता है, इसी तरह गोठुल युवाओं का विश्राम स्थल है।

घोटुल एक ऐसी सामाजिक संस्था है, जो गाँव के प्रति उत्तरदायी होती है। इस संस्था में गाँव के प्रत्येक परिवार का अविवाहित युवक-युवती अनिवार्य सदस्य होते हैं। इसलिये इनकी जवाबदेही सारे गाँव के प्रति होती है और इसकी सत्त निगरानी गाँव के लोगों के द्वारा की जाती है। घोटुल में युवक-युवतियों का गाँव से अलग अपना एक सामाजिक संगठन होता है। जिसमें गाँव की तरह एक मुखिया का चुनाव सारे गाँव के द्वारा किया जाता है। जो घोटुल पटेल कहलाता है, इसी तरह लड़कों के बीच से एक सरपंच और कोटवार का चुनाव किया जाता है। ग्राम पटेल की तरह ही घोटुल पटेल भी सबका मुखिया होता है और सब पर नियंत्रण रखता है। सरपंच, कोटवार भी सब पर निगाह रखने, नियम बनाने और नियम तोड़ने पर सजा देने का काम करते हैं। इसके अलावा लड़कियो की भी एक मुखिया होती है, जिसे लयोर मुखिया कहते हैं, यह लड़की या लड़का दोनो हो सकते हैं। यह लड़कियों पर नियंत्रण रखते हैं। उनके आने-जाने का हिसाब रखतें हैं। इन पदाधिकारियों से पूछे बिना कोई भी घोटुल का सदस्य कोई भी काम नही कर सकता, यदि किसी को घोटुल नही आना है या किसी काम से गाँव से बाहर जाना है, तब भी उसे मुखिया की इजाजत लेनी पड़ती है। घोटुल के प्रत्येक सदस्य को पटेल, सरपंच, कोटवार के आदेश का पालन करना अनिवार्य होता है।

गाँव के लड़की-लड़के जब दस-बारह वर्ष के हो जाते हैं, तब वे अनिवार्यत: घोटुल के सदस्य हो जाते हैं और उन्हें नियमित रूप से तोड़ी की आवाज सुनकर घोटुल आना होता है। सदस्यता ग्रहण करने के साथ ही उन्हे एक नया नाम, नई पहचान मिलती है जो घर के नाम से अलग होता है। घोटुल में नाम मिलने के बाद उसे घोटल में उसी नाम से पुकारा जायेगा। ये नाम कुछ मजाक के पुट लिये होते है लड़कियाँ, लड़के का नाम रखती हैं जैसे लड़कें के नाम सिलेदार, सुपेदार, मलियारसिंग, लाहरू, लाहरसिंग आदि इसी तरह लड़कियों के नाम लड़के रखते हैं, जैसे झलियारो, मलियारो, तुसारो, खिलियारो, सुलियारो आदि। इन नामो का प्रचलन घोटुल में या यहाँ के सदस्यगण ही करते हैं। कभी-कभी ये नाम इतने लोकप्रिय हो जाते हैं कि इनके साथ जीवन भर जुड़े रहते हैं। घोटुल रात्रिकालीन संस्था होने से सब सदस्य को जमा करने के लिये तोड़ी फूँकी जाती है, इस आवाज के साथ सब लोग अपने घर से खाकर और ओढ़ने बिछाने का कपड़ा लेकर घोटुल आते हैं। यहाँ सबके काम बंटे हुये होते हैं,

और आकर वे उन कार्यो को करते हैं। जैसे लड़कियों को झाड़ू लगाना, लिपाई करना, साफ-सफाई करना, लड़कों को बारहमासी अंगीठी जलाना, वाद्य यंत्रों का रख रखाव आदि सब काम करते हैं। ये काम रोज का है जो लड़के-लड़कियों में बंटे होते हैं और बारी-बारी से सभी को करना होता है।

घोटुल गाँव के नवयुवक-युवतियों का अपना संगठन होता है जो गाँव के प्रति जवाबदेह होता है। गाँव के सभी कार्य इन घोटुल के लोगों के द्वारा ही किया जाता है। किसी घर में कोई भी काम, जन्म से लेकर मृत्यु तक के कार्यो में लकड़ी लाना, दोना-पत्तल बनाने के लिये पत्ते लाना, धान कुटाना, खाना बनाना, परोसना आदि। सभी काम इन नवयुवक-युवतियों द्वारा किया जाता है और इन सब का नियंत्रण घोटुल के पदाधिकारियों के द्वारा किया जाता है। इसके अलावा गाँव के देव काम में भी इनकी समान भागीदारी होती है। देवता के सम्मान में मांदर नृत्य, करसाड़ नृत्य, कोकरेंग नृत्य सभी इनके द्वारा किया जाता है। इसीलिये घोटुल को सामुदायिक जीवन जीने की कला सीखाने वाली पाठशाला कहा जाता है। जहाँ आदिवासी समाज संग-संग जीने मरने की कला सीखता है। घोटुल में ही नवयोवन आदिवासी लोक कला के विभिन्न आयामों से परिचित होता है। कहानी किस्से कहता सुनता है, पहेली बुझता है। हर रोज लोक नृत्य और लोक गीत गाने का अभ्यास करता है। यहाँ इन कार्यो को सीखाने के लिये कोई मास्टर नहीं होता ये सब आपस में एक-दूसरे को नृत्य करते गाते बजाते देखकर स्वयं ही सीखतें हैं।

जिस तरह किसी संगठन को चलाने के लिये नियम बनाये जाते है, इसी तरह घोटुल के भी अपने नियम कायदे होते हैं। इन नियमों के उल्लंघन के लिये दण्ड का प्रावधान किया गया है। नियम ऐसे होते हैं कि सभी उनका पालन स्वेच्छा से करे या उनके पालन करने मे किसी को कोई कठिनाई न हो, दण्ड भी ऐसा कि जो आसानी से भूगता जाये। जैसे बारहमासी अंगीठी में से यदि किसी ने चोंगी (बीड़ी) सुलगाने पर सजा है एक झापड़, इसी तरह किसी गलती के लिये सजा लकड़ी लाने की दी जाती है, या फिर एक दिन के सारे काम करने की सजा दी जाती है। अधिकांश सजा लकड़ी लाने की होती है। ये सजा किसी को प्रताड़ित करने के लिये नही बल्कि मंनोरंजन के लिये होता है। पर कुछ सजायें ऐसी होती हैं, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

ये सजा उन गलतियों के लिये दी जाती हैं जिनका सरोकार आदिवासी समाज से होता है। जैसे घोटुल अविवाहित नवयुवक-युवतियों का रात्रिकालीन संगठन है यदि किन्ही सदस्यों के बीच आपस में यौन सम्बन्ध बन जाते हैं और वे सबकी जानकारी में आ जाते हैं तो उसके लिये अलग से सारे गाँव के साथ बैठक की जाती है। बैठक में उनसे पूछा जाता है और उनके स्वीकार करने पर सजा दी जाती है। ये सजा विषम गोत्रीय लड़का-लड़की के बीच जब यह सम्बन्ध होने से उन्हे एक-दूसरे को अपनाने की सजा दी जाती है और घोटुल से निष्कासित कर दिया जाता है। यह सजा तब और भंयकर रूप ले लेता है जब लड़का-लड़की समगोत्रीय होते हैं। आदिवासी समाज या अन्य समाज में समगोत्रीय विवाह सर्वथा वर्जित है। ऐसी स्थिति में इस संबन्ध को स्वीकार नहीं किया जाता, उन्हे सजा के रूप में कठोर दण्ड दिया जाता है, यह मृत्यु दण्ड भी हो सकता है।

घोटुल आदिवासी समाज के लिये बहुत ही पवित्र जगह होती है इसमें दुष्कर्म के लिये कोई स्थान नही होता। इस समाज में स्त्री-पुरूष के नाजायज रिश्तों को स्वीकार नही किया जाता। ऐसे रिस्तों के लिये सामाजिक दण्ड भुगतने के बाद उन्हें विवाह करना होता है। किसी भी गाँव में पहले समगोत्रीय परिवार के लोग होते थे और घोटुल में उन्ही के बच्चे आते थे, परन्तु बाद में उनके रिश्तेदारों के उस गाँव में आने के बाद से घोटुल में विषम गोत्रीय लड़के-लड़कियाँ आने लगे। अब यहाँ की व्यवस्था में परिवर्तन आया और सम गोत्रीय लड़के-लड़कियों पर नजर रखने लगे। इस तरह घोटुल में दोनो के ऊपर पाबन्दी लगने लगी। स्वछन्द जीवन-यापन करने वाला आदिवासी समाज अवैध सम्बन्ध को बहुत ज्यादा बुरा समझता है। इसलिये घोटुल जैसे आदिवासियों के पवित्र स्थल पर इस प्रकार का कृत्य नहीं होता है। पूर्व में इस संस्था के विषय में भ्रामक प्रचार किया गया था, यही कारण है कि लोग इसमें उन्हीं बातों को तलाशते हैं। जबकि लड़के-लड़कियों के बीच हँसी-मजाक होना आम बात है, पर किसी प्रकार अवैध सम्बन्ध नहीं होता है। यहि आदिवासी समाज के इस संस्था की सुन्दरता है और अपने बच्चों के प्रति उनके विश्वास का प्रतिफल है। जिसे आदिवासी अविवाहित नवयुवक- युवतियाँ बनाये रखते हैं।

आदिवासी समाज अपना प्रत्येक कार्य अपने देवी-देवताओं से पूछकर या उनके बताये अनुसार करता हैं। इसलिये घोटुल निर्माण के पहले वह अपने ग्राम देवी और स्थापित देवता को आव्हान कर सुमरन करता है कि "हे देव यहाँ घोटुल का निर्माण कर रहे हैं जहाँ हम गाँव वालों के बच्चे रहेगें उनकी रक्षा करना" इसके बाद घोटुल निर्माण की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। मिट्टी से बने एक बहुत बड़े कमरे से लगा एक छोटा कमरा होता है, जिसमें लोक नृत्य करने के समय पहनने वाले सामान और वाद्ययंत्र रखे जाते हैं। बड़े कमरे मे विश्राम किया जाता है और इस कमरे के पास ही एक लाड़ी बनाई जाती है, जिसमें बारहमासी अंगीठी जलाई जाती है। यह लाड़ी कमर जितने मिट्टी के दीवार से घिरी रहती है, आवश्यक चर्चा के समय इसमें बैठकर सदस्यगण बात करते हैं। यही कहानी-किस्से कहे जाते हैं, पहेलियाँ पूछी जाती है। इससे लगा एक बहुत बड़ा आंगन होता है जो बाँस की बाड़ी से घेर दी जाती है। यही पर लोक नृत्य का अभ्यास किया जाता है। आम घोटुल की संरचना प्राय: इसी प्रकार की होती है। गाँव में घोटुल एक किनारे पर व्यवस्थित होती है, आम धारणा यह है कि जिस दिशा से जंगली जानवरों से गाँव को खतरा होता है, घोटुल उसी दिशा में बनाई जाती थी। क्योंकि यहाँ शोर- शराबा चहल-पहल और आग जलते रहने के कारण इस ओर से जंगली जानवरों का आना-जाना नही होता है।

आदिवासी समाज की मान्यता है कि घोटुल में आदिवासियों के आदिपुरूष लिंगों पेन का वास होता है या उन्हे यहाँ स्थापित किया जाता है। लिंगों देव को शंकर भगवान के नटराज रूप माना जाता है। ये देव आदिवासी समाज को नृत्य गायन और वादन सिखाते हैं। कहा जाता है कि लिंगों देव १८ वाद्य यंत्र बजाने में निपुण थे, वे ऐसा गाते थे कि जड़-चैतन्य सभी मंत्रमुग्ध हो जाया करते थे लक्ष्मण दुग्गा बताते हैं कि हमारे लिंगों पेन (देव) नारायणपुर के दुग्गाल परगना के देव हैं और सात भाईयों में सबसे छोटे थे, इसलिये अपने भाई-भाभियों के लाड़ले थे और हर समय संगीत साधना में ही डूबे रहते थे। जब उनके बड़े भाई काम करने निकल जाते थे तब वे संगीत साधना किया करते थे, जंगल के पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और उनकी भाभीयाँ सभी उनके संगीत में डुब जाया करते थे। इसलिये घर का काम होता नही था, उधर भाई लोग खाने के लिये अपनी अपनी पत्नियों का इन्तजार करते रहते और सब भाभी संगीत सुनने में मगन रहती, उन्हें अपने पतियों की सुध नही होती, ऐसा रोज का क्रम था।

भाईयों का रोज अपनी पत्नियों से लड़ाई होती, ऐसा सोचकर कि शादी करने से लिंगों सुधर जायेगा उनकी शादी कर दी जाती है। इसके बाद भी लिंगों देव के संगीत प्रेम में कोई अन्तर नही आता तब उन्हें घर से ही नहीं गाँव से निकाल दिया जाता है। दूसरे गाँव में धान मिंजकर फेके हुये भूसे से धान निकालने का चमत्कार करते हैं, अपने शक्ति और गुण से उस गाँव के लोगों को अपने बस में करके बहुत नाम और शोहरत कमाते हैं। जब लिंगों देव की ख्याति भाईयों तक पहुँचती है, वे जल-भून जाते हैं और उन्हें मारने का फैसला करके उस गाँव तब जाते हैं। बारह गाड़ी लकड़ी जलाई जाती है और उसमें लिंगों देव को जलाने का विचार करते हैं, उनको आश्चर्य होता है जब उस आग में लिंगो देव को आदिम वाद्य बजाते हुये नृत्य करते देखते हैं। लिंगों देव जलते हुये जिस जिस वृक्ष को पकड़े थे, वे वृक्ष आज भी उसी प्रकार से है जैसे की उनमें आग लगाई गई हो। जैसे तुमीर मरा (तेन्दु का वृक्ष) मर्दमरा (साजा वृक्ष) ओड़छा मरा (कर्रा वृक्ष) ये सभी वृक्ष उस पहाड़ी पर आज भी हैं जिस पर लिंगों देवता का वास है। यह पहाड़ी आमाबेड़ा के सेमूर गाँव के पास स्थित है। जो आदिवासी समाज के लिये तीर्थ स्थल के समान है।

आदिवासी समाज की मान्यता है कि घोटुल की उत्पत्ति के जनक लिंगों पेन अर्थात आदिपुरूष लिंगों देव है। इन्होंने ही घोटुल परम्परा की नींव डाली, सब रीति रिवाज बनाये जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तान्तरित होती चली आ रही है आज की पीढ़ी भी उन नियमों को उसी प्रकार मानती है। आदिवासी समाज मानता है कि लिंगों देव ने ही नृत्य, गीत और वादन समाज को सिखाया है वह यह भी बतायें है, कि कौन सा गीत कब गाना है और उसके साथ कौन सा वाद्य बजाया जायेगा। लिंगों देव भोंमरा (भौंरा कीड़ा) से गायन और ओंडार कीड़ा (मधुंमख्खी) से नृत्य करने की कला सीखी थी और आदिवासी समाज को दिया था। लिंगों देव के घोटुल की बनावट के विषय में कहानी किस्से आदिवासी समाज में कहे जाते हैं कि उनका घोटुल वेड़िया टोडरा (घोड़े के गले) की तरह अत्यन्त सुन्दर दिखता था। उसमें मासूल मुण्डा अर्थात अजगर सर्प का खम्बा लगा था, जिसकी चिकनाई और नक्काशी देखने योग्य थी। इसकी छत की मैलिंग (मयाल) पाटींग (पाटी) वासांग (काण्डा) महामण्डल और करायत सर्पो से निर्मित थी। जलांग मल्क वेसीगतोर अर्थात मयुर पंख से छत को छाया गया था आंगन की छत मारेकींग वेसीतोर अर्थात चिड़ियों के पंख से बनाया गया था। दरवाजे पर पुंगार कप्पटी अर्थात लाल सिलयारी के फूलों का तोरन बँधा

था। जब लिंगों देव संगीत साधना करते थे तब वे मोगेंर या मोंगराल (मगरमच्छ या घड़ियाल) के पीठ पर बैठ कर साधना करते थे।

घोटुल की उत्पत्ति के विषय में जानकारों के अलग-अलग मत है,दण्डकारण्य शोध संस्था के अध्यक्ष हरेराम मिश्रा जी बाल्मिकी रामायण के हवाले से बताते हैं कि जब शुक्राचार्य जी ने अपनी पुत्री अरजा के बलात्कार से क्रोधित होकर राजा दण्ड को श्राप दिया था उसमे उन्होंने कहा था " हे राजन यह तेरा वैभव पूर्ण राज्य कानन हो जायेगा" बाल्मिकी रामायण के अनुसार राजा दण्ड के राज्य में लगातार रात में सात दिन तक धूल की वर्षा होगी और यह वैभवपूर्ण राज्य कानन हो जायेगा, तब अरजा ने अपने पिता से पूछा था कि "पिताजी मेरा क्या होगा?तब मुनि शुक्राचार्य ने कहा था कि "उस समय जब धूल की वर्षा होगी जितने भी तेरे साथ लोग रहेगें उनका अहित नहीं होगा" और ऐसा ही हुआ। उस समय जब धूल की वर्षा हुई तब अरजा के साथ रहने वाले सभी लोग बच गये और यह वैभव पूर्ण राज्य कानन हो गया । तबसे इसे दण्ड का अरण्य अर्थात दण्डकारण्य के नाम से जाना जाता है और रात में धूल वर्षा के समय अरजा के साथ रहने वाले लोगों जो इस श्राप से बच गये थे उन्हे गोत्र कुल कहा गया जो बाद में अपभ्रंश होकर धोटुल हुआ। इसमें भी समगोत्रीय लड़के-लड़कियाँ रात्रि में विश्राम करते है। इसका सम्बन्ध रामगमन से जोड़ते हुये हल्बी बोली में रामचरित्र मानस का काव्यानुवाद करने वाले ठाकुर रामसिंह जी का कहना है कि " घोटुल वास्तव में रामचन्द्र जी की पर्णकुटी है चारदीवारी वाले कमरे में राम सीता विश्राम करते रहे होगें और बारहमासी अंगीठी वाले लाड़ी में लक्ष्मण पहरा देते रहे होगें"

इस विषय में आदिवासी समाज के प्रमुख रजनुराम नेताम और लक्ष्मण दुग्गा का कहना है कि कालान्तर में हमारे पूरखा लोगों के द्वारा गाँव बसाया गया होगा उस समय एक गाँव में एक कुल के लोग रहा करते थे, उन्हे अपने सामाजिक और देव कामों में काम करने वालों की आवश्यकता होती थी तब उन्होने एक घोटुल जैसे संगठन की कल्पना की होगी, जिसमें नवयुवक-युवतियाँ हो और उनके द्वारा गाँव के सब कार्यो को किया जावे। इस तरह दिन भर काम करने के बाद वे सब एक जगह इकठ्ठे हो, एक दूसरे मिले सुख-दुख बांटे और अपने पारम्परिक लोक गीत, लोक नृत्य का अभ्यास करे। इन क्रियाकलापों को करने के लिये गाँव में ही एक स्थान का चयन किया

गया होगा और घोटुल जैसी संरचना बनाई गई होगी। सारा गाँव एक ही कुल या परिवार का होने के कारण अपने बच्चों को भेजने में किसी को आपत्ति नही रही होगी। उन पर नियंत्रण भी बुजुर्गो का रहा होगा। पहले-पहल इन्हें गाँव के बड़े लोगों के द्वारा सारे कार्यो की जानकारी दी गई होगी बाद में उनके बीच के लोगों के द्वारा सब सिखया गया होगा जो आज तक पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही है। हम घोटुल में लिंगों पेन के विषय में जानते है, बाकी कहानी हमारे सियान लोगों के द्वारा कभी नही बताई गई इसलिये उस बात को हम नहीं जानते है।

बस्तर का आदिवासी समाज देव संस्कृति का पोषक है और घोटुल देव संस्कृति का अभिन्न अंग है। जब भी गाँव में देवता के काम होते है तब घोटुल के युवक-युवतियाँ उस कार्य मे बढ़ चढ़कर भाग लेते है। देव जातरा के एक सप्ताह पूर्व से घोटुल में करसाड़ नृत्य (देव आराधना नृत्य) किया जाता है बाद में देवताओं के सम्मान में इस नृत्य को गुड़ी (मंदिर) में किया जाता है। इस नृत्य में आगत देवताओं का नाम लेकर गीत गाये जाते है। इसी तरह मांदर नृत्य (उत्सव नृत्य) भी किया जाता है। घोटुल के नवयुवकों के द्वारा गुड़ी (मंदिर) की साफ-सफाई, लिपाई-पोताई की जाती है और सब लोगों के लिये खाना भी पकाया जाता है। इस तरह इस संस्था का आदिवासी गाँव वैकल्पिक उपयोग करता है।

सन् १९४० ई' में वेरियर एल्विन ने एक किताब "मुरिया और उनका घोटुल" नाम से लिखी, इस किताब ने आदिवासी समाज की इस अनूठी संस्था की तरफ सबको आकर्षित किया। वेरियर एल्विन पाश्चात्य सभ्यता की सोच रखने वाले लेखक थे, उन्होंने इस संस्था को पाश्चात्य नजरिये से देखा और उसी प्रकार वर्णन किया। उनके लिये अविवाहित लड़के-लड़कियों का रात में साथ रहना, भारत जैसे देश में किसी अलौकिक घटना से कम नहीं थी, उन्हे इनके सम्बन्धों में स्वछन्द यौनाचार दिखता था, जबकि ऐसा कुछ भी नहीं था। इस किताब को पढ़कर हुआ यह कि घोटुल के विषय में नहीं जानने वाले भी अपने आपको इसका विशेषज्ञ बताने लगे। कोई कहता यह युवा मंनोरंजन गृह है, कोई कहता नाइट क्लब जैसा है। एक ने कहा कि यह आदिवासियों के लिये प्रेम विवाह करने का स्थल है। हद तो तब हुई की सन्१९७६ ई.में इस किताब को पढ़कर बी.बी.सी. की टीम ने ग्राम तारा गाँव में घोटुल के युवक-युवतियों

को शराब पीलाकर मदहोशी में कुछ अश्लील फिल्म बनाई, जिस पर बहुत ज्यादा बवाल हुआ और मामला संसद में भी उठा, इस फिल्म के प्रदर्शन पर रोक लगा दी गयी तब तक यह फिल्म देश से बाहर जा चुका था और सारे विश्व में कुख्यात हो गया था। इस तरह एक षड़यंत्र के तहत इस संस्था को बदनाम किया गया परन्तु आदिवासी समाज के लिये यह गंगाजल की तरह पवित्र संस्था आज भी मौजूद है।

घोटुल

विश्व प्रसिद्ध मावली मंडई

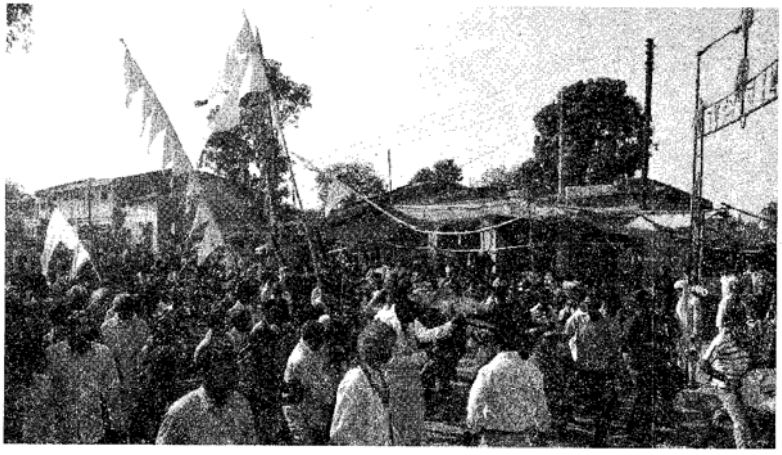

बस्तर संभाग में माघ माह से मेंला-मंडई भरने का सिलसिला शुरू हो जाता है। मेला शब्द सुनते ही रंग-बिरंगे परिधान में सजे स्त्री-पुरूष तरह-तरह के दुकानें भांति-भांति के पकवान आदि का चित्र साकार हो जाता है। ऐंसे में उत्सव के अवसर तलासने वाला आदिम समाज मेला-मंडई में बढ़-चढ़ कर भाग लेता है। मेला -मंडई एक ओर जहाँ उसके लिये मंनोरंजन लेकर आता हैं। वही अपनी जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति इन मेला-मंडई से वह करता है। प्रकृति के सानिध्य में जीवन व्यतीत करने वाला , बीहड़ो में रहने वाला आदिवासी इस अवसर की साल भर प्रतीक्षा करता हैं। तो इसमें क्या बुराई है?वह अपनी साल भर की आवश्यकता की पूर्ति इन मेंला-मंडई से नमक कपड़ा और अन्य सामानों से करता है। जो इनकी जरूरी आवश्यकता होती है। आत्मनिर्भर आदिवासी इन्ही आवश्यकताओं के लिये अन्य समाज से जुड़ता हैं।

नारायणपुर की मावली मंडई आदिवासियों की सबसे बड़ी मंडई है। इसमे इस क्षेत्र के लगभग सभी आदिवासी भाग लेते हैं। हम अबूझमाड़ को दो भाग कोहकामेटा और ओरछा, तथा नारायणपुर को दुगाल परगना, करगांल

परगना, जोडियान परगना, बेनूर परगना और छोटे डोगंर परगना के रूप में बांट कर देखते हैं। यहाँ निवासरत आदिवासिओं के लिये नारायणपुर मावली मंडई धार्मिक आस्था और विश्वास का केन्द्र हैं यहाँ इन सभी क्षेत्र के आदिवासी और दिगर समाज के लोग पूरे श्रद्धा से इस मंडई में भाग लेते हैं। यही कारण है कि यह मंडई आदिवासी समाज की सबसे बडी मंडई है। जहाँ एक सप्ताह पूर्व से एक सप्ताह बाद तक आदिवासी समाज अपने सम्पूर्णता के साथ भाग लेता है। आवागमनविहीन क्षेत्र होने से अपने सभी परिवार के लोगों के साथ, खाने पीने पकाने के बर्तन और अपने पारम्परिक साजो सामान लेकर एक सप्ताह पूर्व से इस मंडई (मेंला) में सम्मलित होने के लिये आदिवासी समाज गाँव का गाँव निकलता है। इस मंडई के लिये नारायणपुर के आस-पास निवासरत आदिवासी परिवार अपने सगा सहोदर के स्वागत की पूर्व से तैयारी करते हैं। जैसे घर की लिपाई-पोताई, जलाने की लकड़ी का इन्जाम आदि। आदिवासी समाज जानता है कि इस अवसर पर उसके सगा-सहोदर, ीमत-मितान अवश्य आयेगें।

बस्तर संभाग में मेला-मंडई एक निश्चित तिथि में जैसे कांकेर का एक जनवरी, पखांजूर का नर नारायण मेला १४ जनवरी मकर सँक्राति को और नारायणपुर की मावली मंडई प्रति वर्ष महाशिवरात्री के पहले बुधवार को भरती हैं। मेला को हल्बी भाषा में मंडई कहा जाता है और यह मंडई माता मावली के नाम से भरती है, इसलिये इसे मावली मंड़ई नाम से जाना जाता है। इसी दिन का आदिवासी समाज के अलवा दूसरे लोग भी बड़ी उत्सुकता से इन्तजार करते हैं। मावली माता के नाम से भरने वाले यह मंडई इस क्षेत्र के रहवासियों के लिसे आस्था का केन्द्र है। इस क्षेत्र में पूरे समाज की पुज्य देवी होने के कारण मावली माता का मान सम्पूर्ण जिला में है। आदिवासी समाज की अपनी देवी-देवताओं के प्रति गहरी धार्मिक आस्था होती है और यह मंडई माता के नाम से भरने से इस मंडई में आदिम समाज अपनी पूरी सम्पूर्णता के साथ उपस्थित रहता हैं। किसी झाड़ के नीचे अंगींठी जलाकर अपने सारे दैनिक कार्य करता है। पारम्परिक सिगांर कर नृत्य करता है। घूमता-फिरता है। अपने सगा-सहोदर के साथ दुख:-सुख बांटता है।

नारायणपुर की मावली मंडई मे बस्तर के विभिन्न अंचल के आदिवासिओं

का समागम होता है। अपने अनूठी सांस्कृति के लिये प्रसिद्ध आदिम समाज लोगों के लिये आकर्षण का केन्द्र रहा है और यहाँ पर विभिन्न आदिवासी संस्कृति एक साथ एक सप्ताह तक मौजूद होती हैं यही कारण है कि इन्हे देखने समझने के लिये दूर-दूर से लोग आतें हैं। जिनके द्वारा इन आदिवासियों के रोचक बातें प्रचारित करने से देश ही नही विदेश के लोग भी आदिवासियों के जीवन में झांकने के लिये आकर्षित होते गये । हर वर्ष फ्रांस जर्मन, इटली, ब्रिटेन आदि देशों से विदेशी सैलानी, शोध विद्यार्थी, पर्यटक इस मेले में आतें है। इनके लिये मेला उतना महत्त्वपूर्ण नही जितना आदिवासी जन जीवन है। यहाँ आदिम संस्कृति का विभिन्न छटा इन्हे देखने को मिलती है। यही कारण है कि यह मंडई विश्व प्रसिद्ध है।

इस मंडई का इतिहास बहुत ही प्राचीन है। बस्तर रियासत में १७३७ ई० में जब दलपत प्रताप भंजदेव सत्तासीन हुये तब उन्होने शासन चलाने के लिये पूरे बस्तर रियासत को १८ गढ़ में बांटा और प्रत्येक गढ़ में अपनी कुलदेवी दन्तेश्वरी माता की स्थापना की, बड़े डोंगर छोटे डोंगर के बाद नारायणपुर तीसरा गढ़ है। यहाँ पर दन्तेश्वरी माता की स्थापना गढ़ गुडरा (वर्तमान पहाड़ी मंदिर) में किया गया था। इससे पूर्व यह मंडई इसी गढ़-गुडरा के पास मावली माता के नाम से भरा करती थी, बाद में दन्तेश्वरी माता के स्थापना के बाद दन्तेश्वरी माता के नाम से प्रति वर्ष वार्षिक मेला भरना प्रारंभ हुआ। इससे पहले से यह मेला यहाँ निरंतर ८०० वर्ष से भी अधिक समय से भरता चला आ रहा है। मेला को बस्तर की बोलियों में मंडई कहा जाता है इसलिये मेला के बजाय यह मंडई के रूप में प्रचारित है। प्रारंभिक काल में यह मंडई गढ़ गुडरा के नीचे चंडी बड़ में लगा करता था। उस समय यह क्षेत्र जगंल से भरा दूर्गम क्षेत्र था। कुछ वर्षों तक यहाँ मंडई भरती रही फिर लोगों की सुविधा के लिये देवताओं की अनुमति से कुम्हार पारा स्थित पाट देव के स्थान पर लाया गया। तब तक मंडई दन्तेश्वरी माता के नाम से जाना जाता रहा, कारण कि राजा दलपत देव के समय सभी देवियों (माताओं) को दन्तेश्वरी माता कहा गया, जो आज भी प्रचलन में है। ग्राम देवी को बताने के लिये दन्तेश्वरी माता कहा जाता है।

इस मंडई का नाम मावली मंडई होने के पीछे भी कहानी है। दन्तेश्वरी माता के पुजारी बहेठी पात्र हुआ करते थे । बहुत ही ज्ञानी गुनी व्यक्ति थे।

माता से साक्षात बात करते थे। एक बार उनका इकलौता पुत्र रामचन्द बीमार हुआ। बहुत सेवा जतन के बाद भी ठीक नहीं हुआ तब पुजारी ने माता से अपने पुत्र को अच्छा कर देने की प्रार्थना की परन्तु होनी को कौन टाल सकता था। पुजारी के पुत्र का देहान्त हो गया पुजारी बहेठी पात्र को बहुत दुख: हुआ। वे माता के समक्ष जाकर बोले "तुम मेरे पुत्र को नहीं बचा पाये तो दूसरों की रक्षा क्या करोगे"?कहकर देवी की मूर्ति को गढ़ गुडरा के कंदरा में छुपा दिया और द्वार को इन्द्रजाल मंत्र से बाँध दिया। लोगों ने मूर्ति को निकालने के बहुतेरे प्रयास किये पर सफल नहीं हुयें मंदिर मूर्ति विहीन रह गया । इसी बीच कुछ उत्साही लोग पारद (शिकार) खेलने करेल घाट की ओर गये जहाँ उन्हे एक वृक्ष के नीचे एक मूर्ति दिखी, जो किसी को भी देखकर मुस्कुराती रहा था। वापस गाँव आकर उन्होने सब गाँव के लोगों को बताया। देवता से पूछा गया देवता ने बताया मुचली मावली है मान पाने आयी है। देवाज्ञा से उस मूर्ति को लाकर गढ़ पारा में मंदिर बनाकर विधिवत मूर्ति को स्थापित किया गया। चूंकि मूर्ति करेल घाट से लाई गयी थी और वह स्थान मावली माता का होने से मावली माता नाम पड़ा और तबसे इसी नाम से मंडई भरने लगा।

नारायणपुर के गढ़ पारा में माता के मंदिर बनने के बाद मंडई का स्थान कुम्हार पारा से गढ़पारा वर्तमान बुधवारी बजार स्थल लाया गया। कुछ वर्षों तक मंडई यहाँ भरती रही। समय बीतता गया गाँव की आबादी बढ़ने लगी मंडई स्थल में निस्तार सुविधा की कमी महसूस होने लगी । इस समय १९४२ ई. में नारायणपुर बंधुआ तालाब का निर्माण किया जा चुका था। सारे कारणों पर विचार के पश्चात साप्ताहिक बजार स्थल के साथ मंडई स्थल को बंधुआ तालाब और बखरूपारा के बीच व्यवस्थित किया गया तबसे आज तक विश्व प्रसिद्ध मावली मंडई इसी जगह पर भरती है। यह इस मंडई की ऐतिहासिकता है।

नारायणपुर की मावली मंडई सोमवार को प्रारंभ होकर इतवार तक चलती है। बुधवार के दिन देव बिहरनी होने के कारण मुख्य रूप से मंडई बुधवार को मानी जाती है। मंडई के दो दिन पूर्व से गाँव के सियान, सिरहा, पटेल, गांयता पटेलपारा स्थित गढ़िया बाबा के गुड़ी (मंदिर) में नया सिरहा चढ़ाने ,उतारने की प्रक्रिया करते हैं। यह मध्य रात्रि को की जाती है। मंगलवार की रात को आड़ मावली में पूजा के लिये काजल बनाया जाता है। इसी रात मंडई स्थल

स्थित आड़ मावली की विशेष पूजा की जाती है और माता से मंडई निर्विध्न सम्पन्न होने की प्रार्थना गाँव के सभी सियान, सिरहा, गांयता, पटेल करते हैं "हे माता इस मंडई में खुट-खुट से लोग आयें हैं किसी भी गलती के लिये हम पहले से क्षमा मांग रहे हैं, आपकी मंडई है अच्छे से कराने की कृपा करना"। इसी रात नगर के बीच में स्थित आड़ मावली की भी विधिवत पूजा की जाती है। इसके बाद दूसरे दिन देव बिहरनी होती है।

नारायणपुर के आस-पास के सभी देवी-देवताओं का जो मावली माता से संबन्धित होते है। उनका मंड़ई में आने के लिये आव्हान किया जाता है। बुधवार को सभी देवी-देवता को लेकर सिरहा, पुजारी, गांयता गढ़पारा स्थित देव कोठार (देव समागम स्थल) में एकत्रित होते हैं। नारायणपुर की शीतला माता, कोटगुड़िन-माता, गढ़िया बाबा, भंगाराम बाबा, सोनकुवंर बाबा, कोकोड़ी से कोकोड़ीकरीन (राजटेका) गरांजी से कानाहुर्राल, गढ़बेगांल से तेलवाड़िन माता, खड़कागाँव, कसावाही, भरण्डा आदि गाँवों के सभी देवी-देवता अपने प्रतीक डगंई, लाट, डोली, आंगां के साथ आते हैं। मावली गुड़ी में सभी का स्वागत किया जाता है। सिरहाओं को देवताओं की सवारी आती है। मावली माता की पूजाकर बलि दी जाती है। इसके बाद मंड़ई बिहरने के लिये सभी देव निकलते हैं।

देव समागम स्थल पर देव नंगाड़ा बजते रहता है। देव अपनी अपनी धुन पर खेलते हैं। एक-दूसरे से गले मिलकर भेंट करते हैं। बहुत पवित्र और उत्साह का वातावरण होता है। लोग अपने साथ लाये लाली से देवों को तिलक लगाते हैं फूलों की माला पहनाते हैं। यहाँ से मंडई बिहरने (भ्रमण)के लिये प्रस्थान करते हैं। सबसे पहले राउत समाज के लोग दोहा गाते, सिटी ताली बजाते चलते है। देवों में गढ़िया बाबा और साकर देव सबसे पहले चलते है। बुधवारी बजार रोड , मुख्य मार्ग से होकर देवतागण नाचते कुदते मंड़ई स्थल कोटगुड़िन मंदिर पहुँचतें हैं। यहाँ से कोटगुड़िन माता शामिल होती है फिर देव बिहरनी होती है। दो फेरा पूरा करने के बाद सभी देव आड़ मावली स्थल पर रूकते हैं। यहाँ मंगलवार रात में बनाये गये काजल से सभी देव टीका लगातें हैं फिर उल्टा फेरा लगाकर मावली गुड़ी वापस लौटते हैं। जहाँ सभी देवताओं को सम्मान पूर्वक विदाई दी जाती है। देव बिहरने के समय मंड़ई में सब कार्य स्थगित होता है सभी बहुत श्रद्धा से अपने अंचल के देवताओं के

ऊपर चाँवल फूल निछावर कर रहे होते है। देव बिहरने के पश्चात मेला पूरे शबाब के साथ रविवार तक चलता है।

बुधवार की शाम दूर-दराज से आये आदिवासी जो अपना डेरा मंडई स्थल के आस पास बनाये होते है। वे शाम को अपना पारम्परिक सिंगांर कर युवक युवतियां एक निश्चित स्थान में "कोकरेंग"नृत्य करते है। एक खुले जगह चाँदनी रात में अपने-अपने गाँवों की टोली बनाकर युवक समूह अपने कमर में लगभग दस पन्द्रह किलो के घुँघरू बाँध निश्चित लय में पैर के पंजे से उठकर घुँघरू से ताल देते हैं। युवतियाँ हाथ में छड़ी लिये होती है जिसके उपरी सिरा पर छोटे छोटे घँघरू लगी होती हैं। जिसे वे युवकों के कमर में बँधे घुँघरू के साथ ताल मिलाकर बजाती हैं। अलग-अलग गाँव का अलग समूह होता है। एक गाँव का समूह गीत (पाटा) गाते घुँघरू से गीत में ताल देते दूसरे समूह तक जाते है। गीत का अन्तरा खत्म होने पर वह दूसरा समूह जिनके पास पहला समूह पहुँचा होता है वह गीत गाता हुआ चलता है और पहला समूह ताल मिलाते हुये पीछे कदम चलता है। यह क्रम रात भर चलता है। इस अवसर पर गाये जाने वाला गीत "कोकरेंग पाटा" देव आराधना गीत है। जिसमें देव की उत्पत्ति, निवास, उसे किस गोत्र के लोग पूजते हैं। आदि का वर्णन होता है। यह नृत्य ही इस मंडई की मुख्य विशेषता है । जो इस मंडई को एक अनोखी पहचान देती हैं और विश्व प्रसिद्ध बनाती है।

इस मंडई के आयोजन में जिला प्रशासन, नगर पालिका, पुलिस प्रशासन, अपनी महती जवाबदेही का निर्वहन कर सुविधा उपलब्ध कराती हैं। इस मेले में बस्तर से बाहर दल्लीराजहरा, बालोद, राजनान्दगांव, रायपुर, धमतरी आदि शहरों से व्यापारी आते हैं। मीना बाजार में तरह-तरह के झुले खेल तमाशा और मंनोरंजन से भरपूर नारायणपुर की विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक मावली मंडई का आनन्द पढ़ने सुनने से ज्यादा देखने में है।

रामकृष्ण मिशन आश्रम (वनवासी केन्द्र)

अबूझमाड़ में निवासरत अबूझमाडियों (विशेष संरक्षित आदिम जनजाति) के उत्थान के लिये रामकृष्ण मिशन आश्रम का नारायणपुर में वनवासी सेवा केन्द्र की स्थापना की नींव सन् १९८४ ई' में रखी गई है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। जो आध्यात्मिक उन्नति के साथ-साथ समाज सेवा के लिये कार्य करती है। रामकृष्ण मिशन का सेवा प्रकल्प वनवासी केन्द्र के रूप में यहाँ स्थापित की गई है। जो नारायणपुर जैसे अत्यन्त पिछड़े और सदूर दूराचंल क्षेत्र में स्वास्थ्य शिक्षा के लिये वृहत कार्यक्रम संचालित कर रही है। इसके अलावा युवा रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम या कौशल विकास, उन्नत कृषि प्रशिक्षण कार्यक्रम, तथा उचित मूल्य से दवाई और खाद्य सामग्री बेचने की दुकान का संचालन कर रही है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के विचार नर नारायण की सेवा करने के लिये प्रतिबद्ध यह स्वयंसेवी संस्था का मुख्य उदेश्य अपनी सेवा के माध्यम से अबूझमाड़ के सदूर अंचल तक मनुष्य के बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। इसके लिये संस्था द्वारा अबूझमाड़ के दूरस्थ इलाके में पाँच सब-सेन्टर बनाये है, जिससे पूरे क्षेत्र में इन बुनियादी जरूरतों के सामानों की आपूर्ति की जाती है। ये पाँच सब-सेन्टर कुन्दला, कुतुल, कच्चापाल, आकाबेड़ा और इरूकभट्टी हैं, जहाँ आगंनबाड़ी, प्राथमिक पाठशाला, प्राथमिक स्वास्थ्य और उचित मूल्य के दुकान संचालित किये जा रहे है।

आजादी के ५०-६० साल के बाद भी यह महसूस किया जा रहा था कि अबूझमाड़ में विकास की किरण नहीं पहुँच पा रही है। तो क्या अबूझमाड़ियों की जरूरतों के सामान भी उन तक नहीं पहुँच पा रही है?अबूझमाड़ चार हजार वर्ग कि.मी. का अत्यन्त बीहड़ और दूर्गम क्षेत्र है। इस आवागमनविहीन क्षेत्र की कुल आबादी २६००० है। इनका मुख्य व्यवसाय वनोपज संग्रहण करना है, अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये पेन्दा खेती (झुम खेती) करते है। यहाँ निवासरत जनजाति केवल नमक के लिये बाहरी दुनिया से जुड़ती है। इन लोगों को राष्ट्र की मुख्यधारा में लाना सबसे बड़ी चुनौती थी। इस कार्य को करने के लिये अवूझमाड़ विकास अभिकरण की स्थापना की गई तब तक समूचा क्षेत्र

मावोवाद की चपेट मे आ गया था। लगातार प्रयास हो रह थे, ऐसे में किसी स्वयंसेवी संस्था के माध्यम से इनके उत्थान के लिये कार्य करने की आवश्यकता महसूस की जा रही थी, जो सेवा भाव से इनके बीच जाकर काम करे। आठ जून सन् १९७२ ई. में भारत की प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरागांधी जी अबूझमाड़ ओरछा के प्रवास पर आयीं, तब उन्हे अबूझमाड़ियों के उत्थान के लिये किसी स्वयेसेवी संस्था से कार्य कराये जाने विषयक आवेदन नारायणपुर के समाज सेवी बापू रामशंकर जोशी जी ने दिया था। यह सुझाव इतना अच्छा था कि वे जब वेलूड़ मठ के स्वामी सचिव महाराज जी से मिली तो उनके सामने यह प्रस्ताव रखा और स्वामी जी ने इस चुनौती को स्वीकार कर लिया।

अबूझमाड़ियों के उत्थान की जिम्मेदारी छत्तीसगढ़ के आध्यात्मिक पुरूष स्वामी स्व. आत्मानन्द जी महाराज को वेलूड़ मठ ने सौंपा। स्वामी जी महाराज ने नारायणपुर के क्षेत्र का दौरा कर यहाँ की भौगोलिक स्थिति का अध्ययन किया, क्षेत्रवासियों से सलाह लिया, स्थल चयन किया। आश्रम बनाने के लिये नारायणपुर के पास एक ४२ एकड़ के भू-भाग का चयन किया गया जो वनविभाग का काजू प्लाट था। जिसे काफी प्रयास के बाद वनविभाग से हस्तानान्तरित कराया जा सका और ४ मई १९८५ वैसाख पूर्णिमा बुद्ध जयन्ती को इस स्थान पर भूमि पूजन किया गया। इस कार्य के लिये सबसे पहले असीमानन्द जी और भास्कर महाराज जी ने एक किराये के मकान से अपने कार्य की शुरूआत की। उन्हे पहले तो क्षेत्र के लोगों के बीच विश्वास जगाना था, जिसे बहुत ही खूबी के साथ दोनों मनीषियों ने अंजाम दिया और अपने इस पुनीत कार्य के लिये सबको विश्वास मे लेकर सहयोग के लिये प्रेरित किया। यह प्रबल साधु हट का परिणम था कि २ अगस्त १९८५ को इस स्थान पर पहला टीनसेड का साधु निवास बना जो आज बेकरी के लिये उपयोग में लाया जाता है। यही वह चार कमरे का एक अध्कच्चा मकान अबूझमाड़ विकास प्रकल्प का आज विशाल वटवृक्ष बनकर इस अभिशप्त धरा में ज्ञान का प्रकाश फैला रहा है।

अबूझमाड़ एक ऐसा सघन वन क्षेत्र है जहाँ काम करना वाकई कठिनाई भरा है। यहाँ निवासरत जनजतियों बाहरी दुनिया से कोई सरोकार नहीं रखती थी, वे अपनी दुनिया में मगन रहने वाले लोग थे, जिन्हे ईलाज-पानी, पढ़ाई-लिखाई से कोई मतलब नहीं था। परन्तु इस कार्य को करने का

बीड़ा साधुवृन्द ने उठाया था और स्वामी रामकृष्ण परमहंस की भाव विचार धारा, स्वामी विवेकानन्द की दृढ इच्छा शक्ति की प्रेरणा ने इस असम्भव को सम्भव कर दिखाया और आज हमारे बीच रामकृष्ण मिशन आश्रम वनवासी केन्द्र अपने विराट स्वरूप में मौजूद है। जिसने नारायणपुर को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति दिला रही है। इसमें अबूझमाड़ ग्रामीण विकास प्रकल्प की नींव तब पड़ी जब म.प्र. शासन ने सुविमल चटर्जी जी महाराज को शासन और आश्रम के बीच समन्वयक बनाकर भेजा। यह आवश्यक भी था क्योंकि आश्रम संचालन के लिये शासन अस्सी प्रतिशत राशि अनुदान के रूप में देती है और बीस प्रतिशत राशि अन्य स्रोत से लाना पड़ता है, इन दोनों कामों को चटर्जी महाराज ने बखूबी अंजाम दिया और उन्होने आश्रम में किये जाने वाले कार्यों को गति प्रदान की।

रामकृष्ण मिशन आश्रम के द्वारा सबसे प्रथम "वनवासी युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारंभ किया, जिसमें ग्रामीण युवकों को रोजगार मूलक कार्य सीखाये जाते हैं। जिससे प्रशिक्षण प्राप्त कर युवा समाज में अपने बलबूते पैरों में खड़े हो सके। वनवासी सेवा प्रकल्प अपना काम प्रारम्भ कर दिया था। ७ दिसम्बर १९८५ में तत्कालीन म.प्र. के महामहीम राज्यपाल के. एम. चांडी जी ने आश्रम परिसर में उवित मूल्य की दुकान का शुभारम्भ किया। यह दुकान अच्छी खाद्य सामग्री उपलब्ध कराने के लिये इतना लोकप्रिय हुई कि बाद में इस दुकान को स्थाई तो किया ही गया, साथ में अबूझमाड़ के पाँचों सब सेन्टर में उचित मूल्य की दुकाने संचालित करने की जवाबदेही आश्रम को दी गई। इसके बाद यह सेवा प्रकल्प आगे बढ़ता गया। आत्मानन्द जी महाराज ने वनवासी सेवा का जो बीज नारायणपुर की पावन धरती पर रोपा था, उसे सींचने के लिये असीमानन्द जी महाराज, भास्कर महाराज, चटर्जी महाराज जैसे कुशल माली मिले थे और वेलूढ़ मठ ने आश्रम के संचालन का भार एक मजबूत कन्धे पर डाला था वो थे स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज जिनके दिशा निर्देशन में सेवा का यह रचना अपना स्वरूप पा रहा था। यह प्रकल्प अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिनाम संस्था के लिये प्रतिष्ठा का प्रश्न था, इसलिये वेलूड़ मठ द्वारा यहाँ होने वाले कार्यों की सतत निगरानी कर रहे थे।

इस कड़ी में सर्व प्रथम वेलूड़ मठ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज का नारायणपुर की धरा पर चरण कमल पड़े और यह अभिशप्त

भूमि धन्य हुई। यहा निवासरत लोगो को लगने लगा था कि उनके पुण्य प्रताप का फल उन्हे सन्तो के दर्शन के रूप में अब लगातार प्राप्त होता रहेगा। स्वामी जी महाराज ने आवासीय समूह की प्रथम इकाई के उद्घाटन के साथ साधुनिवास का भूमि पूजन किया। आश्रम के साथ जनता की भागीदारी बढ़ने से भारत शासन द्वारा स्वामी विवेकानन्द जयंती को जब युवा दिवस घोषित किया गया तब एक भव्य जुलूस नारायणपुर में निकाला गया। इस क्षेत्र की जनता के विश्वास को आरोग्य धाम (चिकित्सालय) ने और दृढ किया। पूरा क्षेत्र इस आरेग्य धाम से स्वास्थ्य लाभ लेने लगा। १२० बच्चों के साथ प्रारम्भ किया गया विवेकानन्द विद्यापीठ में अबूझमाड़ के बच्चों की संख्या लगातार बढ़ रही थी, अबूझमाड़ के दूरस्थ अंचल के पाँच सब सेन्टरों से परिष्कृत बच्चों को विद्यापीठ में लाया जाता और उन्हे अच्छी शिक्षा दी जा रही थी। अबूझमाड़ के लोगों का भी आश्रम की ओर झुकाव होता जा रहा था, क्योंकि उन्हे उनकी जीवनोपयोगी जरूरत उनके पास पहुँच रहा था। बच्चों को प्राथमिक शिक्षा, दवाई गोली, खाद्य सामग्री आदि। शासन ने इन सब सेन्टरों में उचित मूल्य की दुकानों का संचालन आश्रम के माध्यम से कर रही थी। आवागमनविहीन क्षेत्र में राशन पहुँचाना भी एक चुनौति थी, तब आश्रम ने शासन के सामने अबुझमाड़ क्षेत्र में मार्ग निर्माण करने का प्रस्ताव रखा, जिसे किसी कारण से अमान्य किया गया। जिस समय यह प्रस्ताव दिया गया था, उस समय माओवाद की समस्या नही के बराबर थी।

समूचा अबूझमाड़ यह महसूस कर रहा था कि गेरूआ और सफेद चोला पहनने वाले लोग उनसे कुछ नहीं चाहते बल्कि उनको दे रहे है। अबूझमाड़िया भले पढ़ा-लिखा नहीं है परन्तु वह देख रहा था बड़ी खामोशी कार्य करने वाले ये लोग उनके बच्चों को पढ़ा रहे है, भरी बरसात में भी उन्हे राशन दिला रहें है, दवाई-पानी की व्यवस्था कर रहे है, तब उनका विश्वास आश्रम के प्रति और दृढ हुआ। अच्छे कार्यो का परिणाम प्राप्त होने में भले विलम्ब होता हो परन्तु परिणाम अच्छा आता है और आया भी शासन ने यूनिसेफ के कार्यक्रम महिला बाल विकास के कार्य की जिम्मेवारी आश्रम के हवाले किया। इस कार्य की सफलता ने पूरे अबूझमाड़ में आश्रम की सेवा का झन्डा गाड़ दिया। आगंनबाड़ी कार्यकर्ता और सहायिका अबूझमाड़ की महिलायें थी, उनके द्वारा किये जाने वाला कोई भी कार्य को समझने में अबूझमाड़ियों का आसानी होने लगी और

शासन के कार्यक्रम उन तक पहुँचने लगे। इस समय आश्रम के साधुवृन्द और ब्रम्हचारियों ने एक साहसिक और क्रान्तिकारी कदम उठाया,, रामकुष्ण मिशन आश्रम में लड़कियो या महिलाओं को प्रवेश नहीं दिया जाता था, बावजूद इसके एक उप संस्था "विश्वास" के माध्यम से अबूझमाड़ की लड़कियों को पढ़ाने का बीड़ा उठाया और आश्रम परिसर में सर्व सुविधायुक्त बालिका छात्रावास निर्माण कर लड़कियों की शिक्षा प्रारंभ हुई।

नारायणपुर के लोग आश्रम द्वारा किये जा रहे कार्यो को देख कर महसूस कर रहे थे कि यदि किसी कार्य को करने के प्रति लगन और समर्पण हो तो वह निश्चित ही फलीभूत होता है। आश्रम में पढ़ने वाले बच्चे सभी क्षेत्रों में अपनी योगयता साबित कर रहे है। पढ़ाई-लिखाई में तो अव्वल आते ही थे खेलकूद में भी किसी से कम नहीं थे। इतना ही नहीं सांस्कृतिक कार्यक्रम में भी उनकी उपलब्धि उल्लेखनीय थी। इन बालकों ने खेलकूद में राष्ट्रीय कीर्तिमान भी स्थापित किया है। यदि किसी भी बच्चे को सही दिशा में काम करने के लिये प्रेरित किया जाय तो वह किसी से भी कमतर नहीं होता, यह बात इन बच्चों को देखन के बाद लगता है। यह बात साधुवृन्द और आश्रम के ब्रम्हचारियों ने कर दिखाया। वर्तमान में नारायणपुर के आस-पास के बच्चों के लिये कोचिंग क्लास चलाया जा रहा है, जिसमें २० से २५ कि'मी. दूर से बच्चों को लाकर कोचिंग दी जा रही है। किसानों को हर साल प्रशिक्षण और बीज खाद दिया जा रहा है। इन दोनों कार्यो से नारायणपुर की जनता की भी भागीदारी बढ़ी है। इसी परिसर में स्थापित आई.टी.आई. एशिया में तीसरे नम्बर का है, जिसमें सभी प्रकार के कार्यो का प्रशिक्षण दिया जाता है।

इस तरह रामकृष्ण मिशन का वनवासी केन्द्र या अबूझमाड़ ग्रामीण सेवा प्रकल्प नारायणपुर में अपने विराट स्वरूप में मौजूद है। जिससे नारायणपुर अबूझमाड का नाम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर जाना जाता है।

संदर्भ ग्रंथ-: तव आराधनम (स्मारिका रजत जयंती सन्१९८५ से २०१०)

कृषि उपज और वनोपज

नारायणपुर जनजातीय बाहुल्य क्षेत्र है, यहाँ निवासरत आदिवासी प्रकृति आधारित जीवन यापन करता है। वह अपनी आवश्यकता की वस्तुयें या तो श्रम से उपजाता है या फिर प्रकृति से नि:शुल्क प्राप्त करता है। बाहरी दुनिया से वह केवल तेल, कपड़ा एवं नमक के लिये जुड़ता है। नारायणपुर क्षेत्र वनों से आच्छादित है, इन वनों से आदिवासी समाज वर्ष भर कुछ न कुछ उपज प्राप्त करता है। जो उसकी सीमित आवश्यकता की पूर्ति करता है। आदिवासी समाज अपने सादगी और मितव्ययता के लिये जाना जाता है। वह प्रकृति से उतना ही लेता है जितनी उसकी आवश्यकता होती है, इसलिये प्रकृति भी उसे साल भर कुछ न कुछ उपज देती ही रहती है। आदिम समाज की सकल पूँजी उसके श्रम से उपजाये कृषि उपज और प्रकृति से प्राप्त नि:शुल्क उपहार हैं। जिन्हे वह अपने गाँव क पास लगने वाले हाट बाजार में बेच कर अपनी जरूरत के सामानों की खरीददारी करता है। आदिवासी समाज को साल भर प्राप्त होने वाले उपज निम्नानुसार हैं। कृषि उपज - व्यक्ति जो कुछ भी अपने श्रम से उपजाता है, वह कृषि उपज है। आदिवासी समाज नारायणपुर क्षेत्र में अपने श्रम से उपजाता है, **धान, कोदो, कुटकी, मंडिया, कोसरा, मक्का, उड़द, कुल्थी, सरसों, परबत, तिल्ली** आदि। आदिवासी एक ओर धान अपने खेतों में उपजाता है वहीं **मक्का, उड़द कुल्थी, सरसों, परबत, तिल्ली** आदि मरहान या पड़त भूमि में उगाता है। पहाड़ी के ढलान में झाड़ की डगाली और अन्य कचरा जलाकर उसमें **कोदो, कुटकी, कोसरा, मंडिया** उपजाता है जिसे पेन्दा खेती (झुम खेती) कहते हैं।

लघु वनोपज - ये ऐसे प्रकृति प्रदत्त उपज हैं जो जंगल के अलावा घर बाड़ी एवं गाँव के आस-पास प्राप्त होते हैं। इनमें **ईमली, महुआ, टोरा (गुल्ली) हर्रा, बेहड़ा, चार बीज (चिरोंजीं) साल बीज, कोसम, अमचूर** आदि उसके अलावा आदिवासी समाज का आर्थिक आधार **तेन्दू पत्ता** (हरा सोना) को भी लघु वनोपज की श्रेणी मे रखा गया है।

वनोपज - ये ऐसे उपज हैं जो केवल वनों से ही प्राप्त होते हैं। ये बहुत ही दूर्लभ किस्म की उपज होती हैं जिसे जंगल से प्राप्त करने में अधिक श्रम और समय की आवश्यकता होती है। ऐसी उपज केवल माड़ क्षेत्र में ही पाई जाती है और माड़ में लगने वाले बाजारों में ही बिकने के लिये आती है। जैसे फूल बाहरी (झाड़ु) रसना जड़ी (रसना पौधे का जड़) निर्मली, बायविडंग, आँवला, हर्रा, बेहड़ा (ये सभी दवाई बनाने के काम आती है) इनके अलावा शहद भी एक दूर्लभ वस्तु है जो जंगलों से प्राप्त की जाती है।

इन उपज के साथ जंगल में मिलने वाले जंगली फल साग-सब्जी भाजी जो एक विशेष मौसम में प्राप्त होते हैं, को भी साप्ताहिक हाट-बाजारों में बेचकर आदिवासी समाज क्रय शक्ति कमाता है। फलों में तेन्दू, चार जिससे चिरोंजी निकाली जाती है, भेलंवा, कोसुम आदि इसी तरह जंगल से प्राप्त होने वाली शाक-सब्जी है बोड़ा यह एक तरह का फंजाई है जो पहली बरसात के बाद साल वृक्ष के नीचे फूटता है जिसे आदिवासी समाज के अलावा भी दूसरे लोग बड़े ही चाव से खातें हैं। फुटू (मसरूम) बाँसता (करील) आदि की सब्जी बाजार में बिकने के लिये आती है। जंगल से प्राप्त होने वाली भाजियों में बोहार भाजी, कान्दा भाजी, चौलाई भाजी सरसों भाजी चांटी भाजी भी बाजारों में बिकने के लिये आती है जिसे आम लोग बहुत ही पसन्द करते हैं। इसी तरह कन्द भी इस आदिवासी क्षेत्र में मिलता है और बाजार में बिकने के लिये आता है उनमें केसूर कान्दा, डांग कान्दा, भैंसा कान्दा, शक्कर कान्दा, कोसा कान्दा आदि

नारायणपुर क्षेत्र में वनोपज और कृषि उपज ही आय का मुख्य स्रोत है, यहाँ ऐसा कोई उद्योग धन्धा नहीं है जिससे आय होती हो। इन उपज के भरोसे ही यहाँ का व्यापार चलता है। इसलिये हम इन उपज के साल भर होने वाले व्यापार का आंकलन करेगें कि इनसे कितना लाभ होता है।

धान - इस कृषि उपज को मुख्य उपज माना जा सकता है, क्योंकि यह बाजार में साल भर आता है जिस किसीको भी आवश्यकता होती है वह कभी भी अपनी संग्रहित धान बेचकर आवश्यकता की पूर्ति करता है। छतीसगढ़ में धान की खरीदी शासन करता है परन्तु शासकीय खरीदी कुछ महिने के बाद बन्द हो जाती है, तब धान व्यापारियों द्वारा खरीदा जाता हैं। एक अनुमान के अनुसार शासन द्वारा ८०,००० क्विटल और व्यापारियों द्वारा ५०,००० क्विटल

धान की खरीदी की जाती है। जिसका अनुमानित लागत लगभग २० करोड़ रू' होता है। जो इस क्षेत्र में आय का मुख्य स्रोत है।

ईमली – जिस वर्ष ईमली की अच्छी फसल होती है उस साल नारायणपुर क्षेत्र में लगभग ४०,००० क्विटल ईमली निकलती है। यह यहाँ की जनजातियों का मुख्य व्यवसाय माना जाता है। उपयोगिता और गुणवत्ता की दृष्टि से नारायणपुर की ईमली अच्छी मानी जाती है, यही कारण है कि इसकी राष्ट्रीय स्तर पर पहचान बनी है और दूसरों की अपेक्षा ज्यादा दाम पर बिकती है। ईमली को व्यापारियों द्वारा गर्मी के दिनों में खरीदकर शीतगृह में रखा जाता है और दीवाली के बाद विक्रय किया जाता है। एक अनुमान के अनुसार इसका व्यापार लगभग १० करोड़ रू. का होता है।

महुआ – इसकी फसल मार्च अप्रेल में बाजार में आती है, इसका उपयोग शराब बनाने के लिये किया जाता है। इस लघु वनोपज का संग्रहण करने के बाद आदिवासी समाज इसे बाजार में बेच देता है क्योंकि इस समय यह शराब बनाने के लिये उपयुक्त नहीं होती है। जिसे व्यापारी खरीदकर शीतगृह में रख देता है। बरसात के बाद इसे शीतगृह से लाकर फिर इन्ही आदिवासियों को बेचा जाता है। नारायणपुर से निकलने वाले इस उपज को बाहर निर्यात नहीं किया जाता है, बल्कि उसे यहीं बेचा जाता है। साल भर में इसका लगभग १० करोड़ का व्यवसाय होता है।

उड़द – यह मरहान (पड़त भूमि) में उपजाये जाने वाली फसल है। जिसे अपने खाने के लिये रखने के बाद आदिवासी समाज बेच देता है। उड़द से बनने वाले बड़ा आदिवासियों के साल भर होने वाले त्यौहार मे खाया जाता है। इसकी दाल शादी विवाह में बनायी जाती है। इसका व्यापार ४ करोड़ रू. अनुमानित है।

कोसरा – यह धान्य प्रजाति का अन्न है, इसका उपभोग चाँवल के बदले में किया जाता है। इसे आदिम जनजाति पेन्दा खेती पद्धति से उगाती है। हाल के वर्षो में इसका रकबा बढ़ा है और उत्पादन भी अधिक मात्रा में हो रहा है। इसे अपने खाने के लिये रखने के बाद बेच दिया जाता है। इसका अनुमानित व्यापार लगभग दो करोड़ रू. का होता है।

मक्का - इसकी बाड़ी में दो फसल सालाना लिया जाता है। इसे मनी क्राप्ट की संज्ञा दी गई है परन्तु रकबा उतना नहीं है जितना की व्यापारिक उत्पादन हो सके। फिर भी डेढ़ करोड़ का करोबार होता है।

चार बीज - यह महंगी फसल है, २०,००० क्वि. लगभग दो करोड़ का कारोबार होता है।

कुल्थी - मरहान फसल लगभग दो करोड़ का व्यापार किया जाता है।

इसके अलावा इस क्षेत्र को सरसों और तिल्ली उतपादन के लिये जाना जाता रहा है परन्तु वर्तमान में इसकी आवक आज नही के बराबर होती है। हर्रा भी शासकीय खरीदी होने के वाद से बाजार में आना बन्द सा हो गया है।

साल बीज - यह क्षेत्र साल वनों का द्वीप कहलाता है इसका अर्थ है कि यहाँ साल वृक्ष के जंगल है, इस जंगल में साल बीज की अच्छी फसल होती है। साल बीज का तेल निकाला जाता है जो डालडा में मिलाने और साबुन बनाने के काम में आता है। पहले इसकी खरीदी शासन के द्वारा वन विभाग किया करता था, परन्तु २०१३ से इसे मुक्त कर दिया गया है। अब इसे व्यापारी खरीद रहे हैं, इसकी आवक भी बढ़ गई है। एक अनुमान के अनुसार यह लगभग १०,००० क्वि. तक निकलता है, जिसकी अनुमानित कीमत साठ लाख रू. है।

शहद - यह साल में करीब ३० क्वि. तक निकलता है, जिसकी कीमत ३० लाख रू. है।

तिखूर - यह दो लाख रूपये का व्यापार करती है और १० क्वि. तक इसकी आवक है।

फूल बाहरी (झाड़ू) - नारायणपुर फूल बाहरी के लिये पूरे देश में प्रसिद्ध है। यहाँ की झाड़ू को उसकी उपयोगिता और गुणवत्ता के लिये माना जाता है। साल में झाड़ू एक हजार क्वि. तक निकलता है। जिसकी अनुमानित कीमत ४० लाख रू, है।

कोसा (काऊन) - यह एक प्रकार का पेड़ में लगने वाला फल हैं। जिसे रेशम कीड़े की तरह कोसा कीड़ा द्वारा बनाया जाता है। वास्तव में यह

कीड़ा तितली प्रजाति का कीड़ा होता है, जो पत्ता खाने के बाद जब वह परिपक्व होता है, तब अण्डा देने के लिये अपने चारों ओर अपने मुँह से लसलसा द्रव छोड़ता है, जो हवा के सम्पर्क में आने के बाद एक ठोस आवरण में बदल जाता है। इसमें अण्डा देने के बाद वह कीड़ा उसमे छेद करके उड़ जाता है। जब तब इस आवरण में छेद नहीं होता तब तक उसकी कीमत छेद हो के बाद की कीमत से दुगुना होता है। इस फल को उबाल कर इससे रेशा निकाला जाता है और उससे कपड़ा बुनाई होती है। जिस वर्ष अच्छी फसल होती है उस वर्ष इसका ५ करोड़ रू. का व्यापार होता है।

तेन्दू पत्ता - इसे हरा सोना भी कहा जाता है, इससे बीड़ि बनाई जाती है, वन विभाग द्वारा इसकी खरीदी की जाती है। सन् २०१४-१५ में वन विभाग ने २१,४०० मानक बोरा खरीदने का लक्ष्य रखा था, क्वि. में ४३०० क्वि. इसकी लागत २ करोड़ ५६ लाख रू. होती है यह खरीदी १५२ फड़ लगाकर किया गया। इसे खरीदने के पश्चात शासन व्यापारियों को बेच देती है और इस बिक्री में यदि मुनाफा होने से संग्रहको को बोनस का भुगतान अलग से करती है। शासन की मंशा संग्राहकों को मालिकाना हक देने की है। संग्राहको का बीमा भी कराया जाता है जिससे दुर्घटना होने पर प्रतिकार मिल सके।

हाट-बाजार

नारायणपुर क्षेत्र एक प्रतिष्ठित व्यापारिक केन्द्र है, वनोपज और कृषि उपज के लिये इसे राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है। यहाँ का लघु वनोपज ईमली चेन्नई, तामीलनाडु, दिल्ली के अलावा खाड़ी देशों तक में जाता है। फूल झाड़ू के लिये इसकी अन्तर्राष्ट्रीय पहचान बनी हुई है। यहाँ संग्रहित कृषि उपज, लघु वनोपज और वनोपज अपनी गुणवत्ता के कारण राज्य की मंडियों में अच्छे दामों में बिकती है। यहाँ का व्यापार साप्तहिक हाट-बाजारों में निहित है। समूचे क्षेत्र के बड़े बड़े गाँवों में सप्ताह में एक दिन बाजार लगता है। इन बाजारों के आस-पास रहने वाली आदिवासी जनजाति के लोग सप्ताह भर संग्रहित कर रखे हुये उपज को अपनी आवश्यकता के अनुसार विक्रय कर जरूरत के सामानों की खरीददारी करता है। प्रति सप्ताह लगने वाले ये हाट बाजार इस क्षेत्र में निवासरत आदिवासियों के आर्थिक आधार है। इन हाट-बाजारों में लोगों की जरूरतों के सब सामान आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं, इसलिये इन हाट-बाजारों का आदिवासियों के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

नारायणपुर क्षेत्र में निवासरत जनजातियों में धन संचय की प्रवृति नहीं होती है, उन्हे जितनी आवश्यकता होती है उतनी संग्रहित वस्तुओं को वे इन बाजारों में बेंचते हैं और अपनी जरूरतों का सामान उसी बाजार से खरीदतें

हैं। यहाँ लगने वाले हाट- बाजारों में फुटकर सामानों की खरीद बिक्री होती है, दो तरह का व्यापार होता है, एक तरह के व्यापारी आदिवासी समाज के द्वारा सप्ताह भर से संग्रहित कर लाये हुये उपज को खरीदते हैं और दूसरे व्यापारी उन्हे उनकी जरूरत के सामान विक्रय करते हैं। इस तरह जनजाति समाज को इन हाट-बाजारों में सप्ताह भर की आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है। हाट बाजारों का आदिम समाज के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान इसलिये भी है कि उनके जीवन में यह पल मंनोरंजन लेकर आता है, वह अपने सगा-सहोदर से मिलता है सुख-दुख बांटता है, सूचना का आदान-प्रदान होता है। यह उसकी पहली प्राथमिकता होती है इसलिये वह बाजार जाने के लिये लालायित रहता है। अपने संग्रहित वस्तुओं को सिर बोझा सा काँवड़ में लाद कर लाता है। व्यापारी अपने संसाधन (पहले जमाने में बैलगाड़ी और वर्तमान में वाहन से) आता है। इस क्षेत्र में भरने वाले हाट-बाजार निम्नानुसार हैं।

सोमवार - इस दिन नारायणपुर के पूर्व में १५ कि.मी. में स्थित ग्राम रेमावण्ड में साप्ताहिक बाजार लगता है। यह आदिवासी बाहुल्य क्षेत्र होने से इस बाजार में कृषि उपज और लघु वनोपज का अच्छा व्यापार होता है। सुबह दस बजे से संग्राहक अपने सामानो के साथ पहुँचना प्रारंभ करते हैं और बारह बजे तक अपना सामान विक्रय कर दो बजे तक जरूरतों के सामानों की खरीददारी करते हैं। इसी दिन बेनूर से १० कि.मी. दूर दण्डवन में भी हाट लगता है। इसके अलावा नारायणपुर से लगे अन्तागढ़ के ग्राम किसकोडो में बाजार भरता है, चूंकि यहाँ आने जाने का रास्ता नारायणपुर से ही है, इसलिये इस हाट में यहाँ के व्यापारी ही खरीदी-बिक्री करते हैं।

मंगलवार - नारायणपुर के पश्चिम में सोनपुर गाँव में इस दिन का सबसे अहम बाजार भरता है। यह आवागमनविहीन दूर्गम क्षेत्र होने के कारण यहाँ ट्रेक्टर से व्यापार होता हैं, क्योंकि कोई अन्य साधन से पहुँचना कठिनाई भरा हैं। यह गाँव अबूझमाड़ के बीच इकलौता राजस्व ग्राम है, इसलिये इस बाजार में कृषि उपज लघु वनोपज के अलावा वनोपज भी पर्याप्त मात्रा मे आता है यही कारण है कि यहाँ का व्यापार अच्छा माना जाता है। नारायणपुर के उत्तर पूर्व में ग्राम एड़का स्थित है, इस दिन इसे जगह पर भी बाजार लगता है। यह यहाँ से मात्र दस कि.मी. की दूरी पर होने के कारण सभी व्यापारी यहीं से आते

हैं और यहाँ के व्यापार को भी अच्छा माना जाता हैं। इसी दिन जिला कोण्डागाँव और नारायणपुर के सीमा में स्थित ग्राम बयानार का भी बाजार भरता है यह नारायणपुर से ४० कि.मी. और कोण्डागाँव से ५० कि.मी. होने से यहाँ दोनो जगह के व्यापारी बाजार करते हैं। यहाँ कृषि उपज लघु वनोपज और वनोपज का अच्छा व्यापार होता है।

बुधवार – इस दिन अबुझमाड़ मुख्यालय ओरछा, दक्षिण पूर्व में स्थित माड़ का ग्राम कस्तुरमेटा और पश्चिम में स्थित ग्राम बासिंग का बहुत ही अहम बाजार बैठता है। यहाँ कृषि उपज की आवक नही के बराबर होती है, परन्तु वनोपज और लघुवनोपज की अच्छी आवक होती है। इन बाजारों की खासियत है कि यहाँ पर दूर्लभ वनोपज जैसे धूप, रसना जड़ी, शहद, तिखूर, फूल बाहरी (झाड़ु) आदि विक्रय के लिये आते हैं। ओरछा के अलावा दोनो आवागमनविहीन क्षेत्र हैं, इसलिये इन हाटों मे ट्रेक्टर से व्यापार होता है। ओरछा बाजार की एक और खास बात ध्यान देने योग्य है, यह बाजार दो चरणों में पूरा होता है। पहला चरण चार बजे सुबह से प्रारंभ होता है जब सूदूर माड़ क्षेत्र (डुंगा, लंका) से आये संग्राहक अपना सामान ४ बजे ही बेच देते हैं और ६ बजे तक अपने जरूरत के समानो की खरीदारी कर अपने गंतब्य वापस लौट जाते हैं। इस समय के व्यवसायी मंगलवार रात को ओरछा में रात्रि रूककर अपना व्यापार करते हैं। उसके बाद नारायणपुर से सुबह पाँच बजे से आने वाले व्यापारी दो बजे तक सामान बेंच कर धन्धा करते हैं। इस तरह अबूझमाड़ मुख्यालय का बाजार होता है। इसी तरह कस्तुरमेटा और बासिंग का भी बाजार भरता है, यहाँ केवल सुबह से दोपहर तक लेन देन होता है। हाल ही में ग्राम छिनारी में बाजार लगने लगा है, जो बेनूर से १२ कि'मी. पर स्थित है।

गुरूवार – सप्ताह के इस दिन नारायणपुर के सबसे बड़े पंचायत ग्राम छोटेडोंगर का बाजार भरता है। यह ओरछा मार्ग में ४५ कि.मी. की दूरी पर स्थित है, इस जगह भी अन्य बाजारों की तरह कृषि उपज और लघु वनोपज की खरीदी बिक्री होती है। इसी दिन इसी रास्ते में ग्राम फरसगाँव में बाजार लगता है जो नारायणपुर से मात्र १८ कि.मी. के दूरी पर है। कोण्डागाँव जिला के ग्राम चिंगनार में भी साप्ताहिक बाजार लगता है यह गाँव नारायणपुर से नजदीक होने से और रास्ता भी यहीं से होने से यहाँ का बाजार नारायणपुर के व्यापारी

ही करते हैं। अन्तागढ़ के ग्राम ताड़ोकी का भी बाजार इस दिन होने से यहाँ भी नारायणपुर के व्यवसायी जाते हैं।

शुक्रवार - व्यापार की दृष्टि से शुक्रवार को धौड़ाई का बाजार सबसे महत्वपूर्ण है। यह बाजार वनोपज धूप के अलावा साग-सब्जी के लिये जाना जाता है। यहाँ कल्लू गोंद, कोसा, ईमली भारी मात्रा में निकलता है। इसकी दूरी नारायणपुर से ३८ कि.मी. पर है, इसी दिन जम्हरी और बिजली का भी बाजार भरता हैं। नारायणपुर के पश्चिम माड़ क्षेत्र का सबसे दूरी पर कुतुल का बाजार भी इसी दिन लगता हैं। जो दुर्लभ वनोपज के लिये जाना जाता है।

शनिवार - नारायणपुर और कोण्डागाँव के बीच में स्थित बेनूर बाजार शनिवार के दिन भरता है और इसमे दोनो ओर के व्यापारी आतें हैं। यह बाजार सरसो, ईमली का बहुत ही अच्छा व्यापारिक केन्द्र है। इसी दिन अबूझमाड़ के उप मुख्यालय कोहकामेटा का भी बाजार भरता है।

रविवार - यह सप्ताह का अन्तिम दिन है इस दिन नारायणपुर का बाजार लगता है, यहाँ फल सब्जी लेकर दूर-दूर से व्यापारी आते है। पखाँजूर, भानुप्रतापुर, अन्तागढ़, कोण्डागाँव और केशकाल तक के लोग व्यापार करने आते हैं। इसे काफी बड़ा साप्ताहिक बाजार माना जाता है।

मेला-मंडई

बसन्त ऋतु के आगमन के साथ पूरे बस्तर संभाग में मेला-मंडई का दौर प्रारम्भ हो जाता है। जिस तरह ग्रामीण क्षेत्रो में हाट-बाजारों का महत्त्व है उसी तरह इनके जीवन में मेला-मंडई का भी स्थान है। यह एक उत्सव ही है जिसमें हर्ष, उमंग, आनन्द के साथ ग्रामीण जनता की धार्मिक आस्था भी जुड़ी होती है। यह वह समय होता जब ग्रामीण क्षेत्रों में सब काम काज खत्म हो चुका होता है और फुरसत के क्षण होते हैं। एक खुशगवार मौसम जिसमें जंगल फलने फूलने लगते है, हवाओं में मादकता होती है और ज्यादा शीत न घाम, ऐसे समय में आयोजित होते हैं मेला-मंडई। सबके मन में मेला-मंडई के लिये एक अजीब उत्साह रहता है, जिसका इन्तजार वह साल भर से करता है। यह एक ऐसा आयोजन होता है जिसमें ग्रामीण अपने पूरे परिवार के साथ भाग लेता है और इसके लिये वह दो तीन माह पहले से तैयारी में लगा रहता है। इन मेला मंडई में ग्रामीण अपनी आवश्यकता के समान तो खरीदता है साथ सिंगार के सामान के अलावा परिवार में होने वाले शादी-व्याह के सामानों की खरीददारी भी करता है। इसके लिये वह साल भर से पैसे बचाकर रखता है, जिससे इन सामानों की खरीदी कर सके।

नारायणपुर क्षेत्र में होने वाले मेला-मंडई के लिये दिन निश्चित होते हैं,परन्तु उन गाँवों के लिये जहाँ तिथि निश्चित नहीं होती उन गाँव के सियान लोग सिरहा, पुजारी, गांयता आदि मंडई के दिन तय करते है और उस दिन

मंडई भरता है। मेला को स्थानीय बोली में मंडई कहा जाता है और इसके लिये मंडई नाम ही प्रचलनशील है। इस दिन की सभी सगा-सहोदर को सूचना दी जाती है, इस दिन का महत्त्व ग्रामीण जनजीवन में कितना है इसका पता तब चलता जब इनके परिवार इस अवसर में एक साथ जुटतें हैं। बस्तर के ग्रामीण क्षेत्रों में निवासरत परिवार में ऐस दो अवसर आतें हैं जब इनके सगा (सम गोत्रीय) और सहोदर (विषम गोत्रीय) एक साथ जुटते हैं। पहला नवा खानी के समय और दूसरा अवसर मंडई होता है। इसलिये मंडई भी बस्तर में किसी त्यौहार से कम नही होता। इसके लिये उस गाँव का प्रत्येक परिवार जिस गाँव में मंडई भरना होता है, अपने सगा-सहोदर के स्वागत की पूर्व तैयारी करता है। अपने अपने घरों की साफ-सफाई, लिपाई-पोताई और ठहराने के लिये व्यवस्था, जलाने के लिये लकड़ी का इन्तजाम करता है। वे जानते है कि सगा-सहोदर तो आयेगें ही, ये न भी आये तो उनके गोतिया (मितान) तो जरूर आयेगें।

मेला-मंडई देवी जातरा है यह किसी भी गाँव में नहीं होता, जिस गाँव में देवी की गुड़ी (मंदिर) या स्थान होता है, उसी गाँव में मंडई भरता है। देवी के नाम से भरने वाले इन मंडई में उस देवी के अन्तर्गत आने वाले सभी देवी-देवता सम्मलित होते हैं। इसके लिये जब गाँव के सियान, गांयता, पुजारी आदि मिलकर मंडई के दिन निश्चित कर लेते हैं, तब आमंत्रण स्वरूप सभी देवी-देवता का आव्हान किया जाता है। गाँव के मंडई की विधिवत मुनादी कराकर सूचना दी जाती है और निश्चित दिन से एक दिन पूर्व उस देवी के अन्तर्गत आने वाले देवी-देवता को लेकर गाँव-गाँव से गांयता, सिरहा, पुजारी आते हैं। देवताओं का स्वागत करने के बाद विधिवत पूजा अर्चना की जाती है, ससम्मान उन्हे स्थापित किया जाता है। उस रात देवी एवं आगत देवों के सम्मान में नाच गाना होता है, इन नृत्यों में गाँव के घोटुल के अलावा अन्य गाँव के लड़के-लड़कियाँ भाग लेते हैं। ढोल नृत्य जिसे करसाड़ कहा जाता और कोकेरेंग नृत्य किया जाता है। ढोल नृत्य में देवताओं को नचाया जाता है। ढोल बजने के साथ ही गलबहियाँ डाले नृत्य करती हुई लड़कियाँ जब गीत गाती हैं तब देवी-देवता स्वमेव ही उनके साथ नृत्य करने लगते है। यह नृत्य देर रात तक चलता है। आदिवासी समाज का मानना है कि देवताओं के प्रसन्न होकर खेलने नृत्य करने से गाँव में खुशहाली आती है, वर्ष भर कोई संकट नहीं होता,

वर्ष भर अच्छी फसल होती है, किसी प्रकार की महामारी नही होती पालतू-पशुओं में भी बीमारी नहीं होती आदि। इसलिये देवी जातरा किया जाता है।

मेले के दिन सुबह फिर से ढोल नृत्य होता है, जिसमें एक बार सभी नृत्य करते हैं। इसके बाद दो पहर को ग्राम देवी जिसके नाम से मंडई हो रही होती है, उसकी और आगत देवी-देवताओं की विधिवत पूजा कर बलि दी जाती है, फिर सब मिलकर मेला परिक्रमा के लिये जाते हैं। मेले में देवताओं द्वारा दो बार परिक्रमा करने के बाद एक स्थान में रूकने के पश्चात उल्टे आधा परिक्रमा करने के बाद वापस गुड़ी में लौटते हैं। यहाँ सब देवी-देवताओं को ससम्मान विदाई दी जाती है। इसके बाद मंडई पूरे जोर शोर से भरती है। यह पूरे रात भर चलता है आस-पास गाँव के नृत्य मंडली या ओड़िया नाट का आयोजन रात में मनोरंजन के लिये किया जाता है। इस तरह मंडई तीसरे दिन भी जारी रहती है, इस दिन को बासी मंडई कहा जाता है। इस दिन ग्रामीण समाज अपनी आवश्यकता के सामानों की आराम से खरीददारी करता है। मेले में आये हुये अपने सगा-सहोदर से मिलता है, भेंट जोहार करता है, आपस में सुख-दुख बांटते हैं। यही एक ऐसा समय है जिसके लिये आदिवासी समाज साल भर प्रतिक्षारत रहता है। अपने-अपने साथ लाये शराब को एक गोल घेरे में बैठकर सबके साथ हँसी-मजाक करते आपस में बतियाते पीता है और बाद में सबसे विदा लेता है। इस प्रकार नारायणपुर के आस-पास देवी के नाम से भरने वाली मंडई सम्पन्न होती है। जो मंडई के रूप में देवी जातरा होती है, इस कारण लोगों की आस्था इससे जुड़ी होती है।

नारायणपुर आदिवासी बाहुल्य जिला है, यहाँ मुरिया, अबुझमाड़िया और हल्बा जनजाति के लोग निवास करते हैं। इनके देवी-देवता समान हैं, अपने अपने क्षेत्रों में सभी लोग इन्हे मानते हैं। स्थान के अनुसार मुख्य देव होते हैं, वे अपने अन्तर्गत आने वाले देवताओं को गाँव का बटवारा करते हैं और सम विषम गोत्रीय लोगों को उनका सेवादार नियुक्त करते हैं। देव कृपा मानकर उस कुल के लोग जिन्हे सेवादार बनाया जाता है उसे गर्व के साथ स्वीकार करते हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से और देवताओं के अनुसार नारायणपुर को पाँच परगना में बांटा गया है। इन परगनाओं के अपने मंडा देव (मुख्य देव) हैं, ये देव अपने अन्तर्गत आने वाले देवताओं को गाँव बाटा हुआ है। नारायणपुर

के उत्तर-पूर्व को दुग्गाल परगना कहते हैं, इसके अन्तर्गत ३९ गाँव आते हैं। इस परगन का मण्डा देव, बूढ़ा देव हैं, जिसके जातरा पश्चात देवी जातरा या मंडई किये जाने की अनुमति होती है। दक्षिण पूर्व में करगांल परगना स्थित है, जिसके अन्तर्गत ४५ गाँव आते हैं, यहाँ का मण्डा देव, हाड़े हिड़मा है, इनकी पत्नी को राजटेका या कोकोड़ीकरिन कहा जाता है, नारायणपुर जिला मुख्यालय भी इसी परगना में आता है। इनके जातरा के बाद इसके अन्तर्गत मंडई होती है। एड़का परगना को बारा जोड़ीयान, कहा जाता है इस परगना के मण्डादेव होच्चे मुत्ते है, बेनूर परगना के मण्डादेव मटावंड के बप्पे हिड़मा तथा छोटेडोंगर ८४ परगना का मण्डादेव राजा डोकरा है, जिनके जातरा के बाद ही इन सब क्षेत्रों में मंडई किये जाने की अनुमति होती है।

इसी तरह अबूझमाड़ को भी आदिवासी समाज परगनाओं में बांटा हुआ है। पश्चिम में नारायणपुर से लगा अबूझमाड़ का क्षेत्र कोलोर परगना के अन्तर्गत आता है। यह परगना ग्राम कोलर में जमीदारी के समय से ही इससे जुड़ा है और आज भी अपने को इसी परगना के अन्दर मानता है। जबकि इसके देवी देवता बूढ़ादेव के अन्तर्गत आते हैं। जातरा या देवकाम सब दुग्गाल परगना जैसे किये जाते हैं। इसके बाद आने वाले गाँव जो महाराष्ट्र की सीमा से लगते हैं, वे जेटिन परगना के अन्तर्गत आते हैं। दक्षिण में वड़दाल परगना है जिसका विस्तार ओरछा तक है और इसके बाद ओरछा परगना का क्षेत्र आता है। इन सब परगनाओं के मंडादेवों का जातरा होने के पश्चात परगनाओं के अन्तर्गत आने वाले देवियो के मंडई प्रारम्भ होती है। यहाँ एक बात कहना आवश्यक है कि मंडई वास्तव में देवियों का जातरा ही है, जिनका प्रतीक (विग्रह) प्रायः डोली होता है। परगना के मख्यदेव के जातरा में इन मंडई या देवी जातराओं के लिये अनुमति मांगी जाती है।

सबसे पहले बेनूर परगना के मंडादेव बप्पे हिड़मा की जातरा मटावंड में सम्पन्न होती है। बेनूर परगना इस क्षेत्र का बड़ा परगना है, इसमें सभी तरफ से देवी- देवताओं का आगमन होता है। इस जातरा के बाद रेमावंड का जातरा होता है, जो उस क्षेत्र के प्रमुख देव नेंगमुदिया के सम्मान में आयोजित होता हैं। इस जातरा में रेमावंड में होने वाले दो मंडई की अनुमति मांगी जाती है। यहाँ पहली मंडई बड़बुंदीन माता के नाम से भरती है, जो छोटी मंडई होती है। यह पूरे नारायणपुर जिले का पहली मंडई होने से क्षेत्र में इसका काफी मान है।

इसमें आस-पास के सभी देवी-देवता सम्मलित होते हैं, इनका सुबह आगमन होता है, विधिवत पूजा करने के बाद मेले की परिक्रमा करने के पश्चात देवताओं को विदाई दी जाती है। इसके बाद रेमावंड में एक बड़ी मंडई माता मावली के नाम से भरती है, जो जेठ, बैसाख में भरती है इसे बड़ी मंडई के रूप में जाना जाता है। इसमे भाग लेने के लिये देवगण और देवताओं से सम्बन्धित लोग एक दिन पहले से आ जाते है उस रात करसाड़ और कोकरेंग नृत्य होता है देवताओं को करसाड़ में नचाया जाता है। दूसरे दिन सब आगन्तुक देवताओं की सेवा होती है और मंडई की परिक्रमा के बाद उन्हे ससम्मान विदाई दी जाती है। यह मंडई भी एक दिन की होती है।

इस परगना में बेनूर भी आता है जहाँ साल में पाँच बार मेला भरता है, इससे में दो मंडई प्रमुख मानी जाती है। इसमें पहली मंडई बाजार स्थल पर विराजित ग्रामदेवी माता दन्तेश्वरी के नाम से भरती है। इस मंडई में एक दिन पहले से आस-पास गाँव के देवता आकर सेवा सत्कार पाते हैं, रात में लोक नृत्य होता है, दूसरे दिन मेला परिक्रमा के बाद शाम को विदाई दी जाती है, यह एक दिन का मेला होता है। वेनूर मे दूसरी बार भरने वाले मंडई को लाटा मंडई कहा जाता है। पहले यह गाँव के एक किनारे पर भरता था, जहाँ छोटी-छोटी झाड़ीयाँ होती थी इसलिये इसे लाटा मंडई कहा गया। यह शीतला माता के नाम से भरता है। आज मंडई स्थल के आस पास जंगल साफ हो गये हैं और माता जी का मंदिर भी बन गया है। यह मंडई तीन दिन तक आयोजित होती है, पहले दिन देवताओं का आगमन होता है उसी रात को लोक नृत्य होता है दूसरे दिन देव परिक्रमा, देव विदा और तीसरे दिन बासी मंडई होती है। इस परगना के अन्तर्गत बेड़माकोट फरसगाँव भी आता है यहाँ साल भर में दो बार मेला भरता है। पहली बार ग्राम देवी दन्तेश्वरी और दूसरी बार शीतला माता के नाम से माता मंडई होती है दोनों बार एक-एक दिन की मंडई भरती है। यहाँ हाने वाली माता मंडई जिले की अन्तिम मंडई होती है, इस तरह बेनूर परगने से मंडई की शुरूआत और अन्तिम मंडई होती है।

मटावंड से जातरा की शुरूवात होने के बाद नारायणपुर जिले में मेला-मंडई होना प्रारंभ हो जाता है। इसके बाद करगांल परगना के मंडादेव हाड़े हिड़मा का जातरा किया जाता है, यह पूरे क्षेत्र में कोकोड़ी जातरा के नाम

से प्रसिद्ध है इस मंडादेव की पत्नी का नाम राजेश्वरी राजटेका है जिसे कोकोड़ीकरिन कहा जाता है, जिसका अंचल में काफी प्रभाव है, यह ४५ गाँव का परगना होने के कारण सभी गाँव के देवता, पुजारी, गांयता इस जातरा में भाग लेने एक दिन पहले से आते हैं। इस दिन देवताओं को स्थापित कर उनकी विधिवत सेवा की जाती है। रात में लोक नृत्य किया जाता है, आगत देवताओं को नचाया या खेलाया जाता है। दूसरे दिन सुबह पुन: एक बार करसाड़ नृत्य करके देवों को खेलाया जाता है, फिर उन सबकी विधान के अनुसार सेवा कर बलि दी जाती है और दोपहर को पूरे उमंग उत्साह के साथ देवता आपस में मिलते हैं, खेलते हैं, अपने अपने ताल में नृत्य करते हैं। इस परगना के अन्तर्गत नारायण पुर भी आता है, इस जातरा में यहाँ भरने वाली ऐतिहासिक विश्व प्रसिद्ध मावली मंडई के लिये अनुमति मांगी जाती है। जिसका विस्तृत्व विवेचन पूर्व में किया गया है।

नारायणपुर में प्रतिवर्ष तीन मंडई भरती है और इन सबकी तिथि निश्चित होती है। कोकोड़ी जातरा के बाद महाशिवरात्रि के पहले बुधवार को सबसे बड़ी मावली मंडई भरती है। इसके ठीक एक माह बाद माता मंडई चैत्र नवरात्रि के शनिवार और रविवार को भरती है। शनिवार की मंडई मुख्य मानी जाती है। शुक्रचार को शीतला माता से संबन्धित सभी देवी-देवताओं का आगमन होता है, उन्हे ससम्मान स्थापित कर पूजा की जाती है, इस दिन रात्रि में लोक नृत्य (कोकरेंग) होता है, दूसरे दिन सुबह सभी देवी-देवताओं की विधि-विधान से पूजा कर बलि अर्पित की जाती है, फिर मेला परिक्रमा होने के बाद देवों को विदा दी जाती है। रविवार को मेला अच्छी तरह से भरता है इस दिन लोग जमकर खरीददारी करते हैं। इस मंडई के एक महीने बाद नारायणपुर कोट की रक्षा करने वाली माता कोटगुड़ीन का मेला लगता है, यह मेला केवल एक दिन का होता है। मेले के दिन कोटगुड़ीन माता के अन्तर्गत आने वाले सभी देवी-देवता सुबह आ जाते हैं, उनकी पूजा करने के बाद दोपहर को मेला परिक्रमा होती है और देवताओं को विदाई दी जाती है। इस करगाल परगना का अन्तिम मंडई ग्राम जम्हरी में भरता है, जो केवल एक दिन का होता है और यह ग्राम देवी के नाम से भरता है। दुग्गाल परगना के ग्राम बिंजली में जिमिदारिन माता के नाम से मेला भरता है, जो केवल एक दिन का होता है, इसमे बुढ़ादेव के अन्तर्गत आने वाले देवी-देवता सम्मलित होते हैं। इस परगने

के अन्तर्गत सोनपुर मंडई भी एक दिन के लिये भरती है।

छोटेडोंगर परगना के अन्तर्गत ८४ गाँव आते हैं, जिसमें अबुझमाड़ के भी १३ गाँव सम्मलित हैं। छोटेडोंगर में दन्तेश्वरी माता के नाम से मेंला भरता है, यह तीन दिन तक चलता है। इस क्षेत्र की यह नारायणपुर के बाद सबसे बड़ा मंडई है। यह पूर्णत: ग्रामीण क्षेत्र होने के कारण यहाँ आज भी लोक संस्कृति उसी रूप में विद्यमान है, जैसे पूर्वजों के जमाने में थी। देव संस्कृति और लोक संस्कृति का समागम कहना इस मेले के लिये उपयुक्त होगा। मेले के पहले दिन ८४ गाँव के देवी-देवताओं का आगमन होता है, जिन्हे सम्मान सहित स्थापित करने के बाद विधि-विधान से पूजा की जाती है और शाम को करसांड़ नृत्य कर उन्हे खेलाया जाता है। इसी दिन अर्ध रात्री में कोकरेंग नृत्य होता है, इसमें देवताओं के आव्हान के साथ उनके यश कीर्ति का वर्णन करते हुये गीत गाया जाता है। यह नृत्य रात भर चलता है, पुरूष नर्तक के कमर में १०-१५ किलो का घुंघरू बंधा होता है और महिलाओं के हाथ में झड़ी होती हैं, जिसके सिरे पर घंघरू होता है, जिससे वह गीत के साथ ताल देती हैं। दूसरे दिन दन्तेश्वरी माता के मंदिर में सुबह से ही विविध अनुष्ठान करते हुये देवी-देवताओं की पूजा कर बलि दी जाती है। दोपहर के बाद सभी देवी देवता मेला भ्रमण के लिये प्रस्थान करते हैं, परिक्रमा करने के उपरान्त देवी-देवताओं को विदाई दी जाती है और दूसरे तीसरे दिन भी मेला चलता है।

इसी परगने के अन्तर्गत ग्राम धौड़ाई और महिमागवाड़ी आते हैं, इनमें एक-एक दिन का मेला भरता है। अबूझमाड़ मे मेला होता है, जो पारम्परिक न होकर बाद में आयोजित किया गया है, इसलिये ये मंडई आस्था के अलावा मनोरंजन के लिये अधिक जाना जाता हैं। ओरछा मंडई तीन दिन तक भरती है, कोहकामेटा, कस्तुरमेटा, कुतुल, और अभी दो साल से बासिग मंडई भर रही है। सब एक-एक दिन के लिये भरते है। जहाँ भी बाजार भरता है वहाँ मंडई अवश्य भरती है।

तीज-त्यौहार

अबूझमाड़ और बस्तर का आदिवासी समाज उत्सव प्रेमी होता है, वह हर पल किसी न किसी बहाने उत्सव मनाने की सोचता है। वह अपने प्रत्येक कार्य को चाहे व्यक्तिगत काम ही क्यों न हो, इस खूबसूरती से करता है कि देखने वाले को लगता है, वह उत्सव मना रहा हैं। इस क्षेत्र का आदिवासी समाज सामुदायिक जीवन-यापन करता है। किसी कार्य को करने से पहले उसकी रूपरेखा बनाने के लिये बैठकें आयोजित कर निर्णय लेता है और दिन निश्चित करता है, तब उस कार्य को सब मिलकर करते हैं। सामूहिक रूप से किये जाने वाले इन कार्यो में सबकी समान भागीदारी होने से एक उत्साह और उमंग का माहौल बनता है जिससे वह कार्य किसी उत्सव से कम नही लगता। प्रकृति आधारित जीवनयापन करने वाला आदिवासी समाज अपने सभी कार्य उसी प्रकार से करता है जिस तरह से उसके पूर्वज किया करते थे। प्रत्येक कार्यो को उनके पुरखों ने अपनी धार्मिक आस्था और विश्वास से इस खूबसुरती से जोड़ा हुआ है कि सब उसमें स्वयं से भाग लेवें।

ऐसे कुछ प्रमुख त्यौहार हैं जिन्हे यहाँ निवासरत जनजाति समाज नही मनाता या यह कहना चाहिये की कुछ आदिवासियों के त्यौहार का इस क्षेत्र में रहने वाले दूसरे जाति के लोग नही मनाते हैं। भारतवर्ष में मनाये जाने वाले प्रमुख त्यौहार में द्रीपावली, रक्षाबंधन, होली आदि कुछ ऐसे त्यौहार है, जिन्हे आदिवासी समाज उस रूप में नही मनाता, जिस तरह से दूसरी जाति के लोग मनाते हैं। उसी प्रकार आदिवासियों द्वारा मनाये जाने वाला त्यौहार जो वस्तुतः प्रकृति से प्राप्त एवं श्रम से उपजाये उपज को जोगाने के लिये मनाया जाता है, उसे अन्य जाति के लोग नही मनाते, केवल अपनी उपस्थिति दर्शाने तक ही सीमित रहते हैं। साल भर आयोजित होने वाले इन त्यौहारों को एक साथ देखेगें।

अमुस तिहार -:

यह आदिवासी क्षेत्र का पहला त्यौहार है, कहा जाता है कि इसये इस क्षेत्र में त्यौहारों की शुरूवात होती है। तिहार त्यौहार का अपभ्रंश रूप है और अमुस अमावस्या का, सावन माह के अमावस्या में मनाये जाने वाले इस त्यौहार को पूरे छतीसगढ़ में मनाया जाता है। हिन्दी में हरियाली, हल्बी छतीसगढ़ी में हरेली तिहार कहा जाता है। ग्रामीण क्षेत्र में मनाये जाने वाले इस त्यौहार में किसी भी बीमारी और महामारी से बचने के प्रारम्भिक उपाय किये जाते हैं, जैसे पशुओ को चरवाहा द्वारा चपका-खुरा, गलघोटु बीमारी से बचाने के लिये जड़ी-बूटी खिलाते हैं, खेतों में खड़ी फसल को बीमारी से बचाने के लिये भेंलवां (भिलावां) की डगाली गाड़ते हैं, बुरी नजर और बुरी आत्माओं से बचाव के लिये कई तरह के टोटके घरों में किये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में काला जादू करने जैसे अंधविश्वास आज भी है, इसे जानने वाले अपने शिष्य को आज के दिन से ही इसकी शिक्षा देते हैं। आज के दिन से नागपंचमी तक जड़ी-बूटी जानने वाले अपने सहयोगी को दवाई देने की विद्या सीखाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में आज के दिन ही गेड़ी बनाने के लिये लकड़ी काटने का मुहर्त किया जाता है। अमावस्या में किसान अपने कृषि उपकरणों की पूजा करता है, घरों में पूड़ी बड़ा आदि पकवान बनाये जाते हैं। साल के पहले त्यौहार को सभी समाज सभी वर्ग के लोग बड़ी श्रद्धा से मनाते हैं।

रक्षा बंधन -:

सावन माह की पूर्णिमा में भाई बहनों के रिस्ते के यह त्यौहार आदिवासी समाज का त्यौहार नही है। इसलिये इसे अन्य समाज जिस उत्साह उमंग से मनाते हैं, उस तरह आदिवासी समाज नही मनाता है। दूसरे समाज की देखा देखी या गैर आदिवासी भाई को आदिवासी बहन या आदिवासी भाई को गैर आदिवासी बहन रक्षा बंधन का पवित्र धागा बांधते हैं और यह त्यौहार आज आदिवासी परिवारों द्वारा भी मनाये जाने लगा है। इस त्यौहार को आदिवासी समाज इसके मूल रूप में स्वीकार किया है।

नवाखानी -:

भादों माह में आदिवासी समाज का सबसे महत्त्वपूर्ण एवं प्रमुख त्यौहार नवाखानी मनाया जाता है। इस माह में अन्य समाज की महिलायें पुत्र के लिये हलषष्ठी मनाती है, सभी लोग जन्माष्ठमी मनाते है, परन्तु आदिवासी समाज इन्हें नही मनाता, इसी तरह अपने पति की दीर्घायु के लिये महिलाये हरितालिका व्रत रखती हैं और गौरी शंकर की रात जागकर उपासना करती हैं तब ग्रामीण महिलाये जिनमें हल्बा जनजाति, के अलावा मरार, कलार, अन्दकुरी जाति की महिलाये घनकुल की स्थापना कर धनकुल गीत गाती हैं। इसे तीजा जगार भी कहा जाता है इसमें गुरूमाँय शंकर-पार्वती से संबंधित गीत रात भर गाती हैं। इस क्षेत्र में यह केवल एक दिन का ही होता है परन्तु अन्य जगहो पर सात या एक महीने तक आयोजित किये जाते है। तीजा के दिन नवाखानी के लिये मण्डादेव के गाँव से निकलने वाला पेन जोड़िंग (देव आमंत्रण) सब गाँवों से होकर अपने ग्राम में पहुँचती है, पंचमी के दिन मण्डादेव को नया चाँवल से बना बाल (खीर) अर्पित किया जाता है। इसका अर्थ है कि पहले मुख्य देवता का नवाखानी होता है, फिर सब अपने-अपने गाँवों के माटी माय को नया चाँवल का खीर चढ़ाते है। फिर सब अपने सगा-सहोदर के साथ अपने घरों में नवाखानी मनाते है। इसके लिये पहले गाँव में बैठक बुलाई जाती है, दिन तय किया जाता है, देव आमंत्रण दिया जाता है फिर देवताओं को नया चाँवल अर्पित करने के बाद आदिवासी समाज नवाखानी मनाता है।

आदिवासी समाज में नवाखानी लगभग एक माह तक मनाया जाता है, इसमें एकरूपता लाने के लिये संभागीय गोण्डवाना समाज ने साल भर पहले एक तिथि तय कर देता है परन्तु मण्डादेव और कई गाँव के लोग अपनी सुविधा से अपने सबसे बड़े त्यौहार को मनाते हैं। इस बीच दूसरे समाज के लोग गणेशोत्सव का १० दिनी आयोजन करते है, फिर पितृपक्ष प्रारम्भ हो जाता है। इसके बाद कुंवार प्रतिपदा को नवरात्रि में दुर्गा माता की उपासना का पर्व प्रारंभ होता है, जिसे अन्य समाज के लोग बहुत ही भक्तिभाव से मनाते हैं। नवरात्रि के बीच में जगदलपुर में विश्व प्रसिद्ध दशहरा के लिये देवी-देवताओं का आव्हान होता है। इसमें सम्मलित हाने के लिये गाँव-गाँव से देवी देवता इसमे भाग लेने के लिये जाते है। इस आव्हान को राज आज्ञा मानकर सभी भाग

लेते हैं। यही वो समय होता है जब सारे देवता संबन्धी कार्य स्थगित होते हैं। दशहरा के दिन जो भी समाज के लोग नवाखानी नही मनाये होते हैं, वे सब नवा खाते हैं।

दीपावली (दीवाड़)-:

पूरे भारतवर्ष में दीपावली का त्यौहार बड़ धूमधाम से मनाया जाता है, पाँच दिन तक चलने वाला यह पर्व सभी वर्ग के लिये आनन्द और उमंग लेकर आता है। ऐसे में यह प्रश्न उठना स्वभाविक है कि हर पल उत्सव की प्रतीक्षा करने वाला आदिवासी समाज दीपावली को किस रह मनाता है। आदिवासी समाज का दीपावली त्यौहार नही है, वह दीपावली की जगह दीवाड़ मनाता है, जिसमें वह लक्ष्मी जी की पूजा नही करता, अन्धेरे में दीप नही जलाता वरन अपने लोक देवताओं में आस्था जगाने और बुरी आत्माओं की शक्ति का नाश करने के लिये दीप जलाता है। जिस दिन अन्य लोग धनतेरस के शुभ मुहर्त में सोना चाँदी, बर्तन की खरीददारी करते हैं, उस दिन आदिवासी समाज लोक देवताओं के स्थान गुड़ी की, तालाब के किनारे कैना के स्थान में, कौड़ो (लड़के की पवित्र आत्मा) के स्थान पर, खलिहान की, गोठान की, गाय कोठा की, आना कुड़मा (पितृदेव का स्थान) की आदि की साफ-सफाई करता है। नरक चौदस और दीपावली के दिन उन स्थानों में दीया जलाता है और गोवर्धन पूजा के दिन दीवाड़ मनाता है। इस दिन आदिवासी समाज की महिलायें सबेरे गाय कोठा के सामने लिपाई पोताई करती है बैलगाड़ी के चक्के को भी गोबर से लिपती है। पुरूष वर्ग चुल्हे की राख, लाली, चाँवल के आटे से चौक बनाते है जिसे बाना भरना कहा जाता है। उस जगह अपने सभी देवी-देवताओं का आव्हान किया जाता है। उनकी लाली, सुपारी, धूप, दीप, नारियल अर्पित कर विधिवत पूजा की जाती है। इसके बाद कुम्हड़ा फल कोचई हिन्दी में अरबी या घुंईयां इमली काटकर देवताओं पर चढ़ाया जाता है। आज के दिन इन फलों की जोगानी किया जाता है अर्थात सबसे पहले देवताओं को अर्पित किया जाता है। फिर शराब का तर्पण करते हैं। इसके बाद आज जोगाये हुये फलो को नये चाँवल के बनाये गये खिचड़ी में सबको मिलाकर पकाते हैं, उन्हें सबसे पहले गाय बैल को खिलाकर उनके जूठे से टीका लगाकर फिर सब घर के लोग ग्रहण करते हैं। इस दिन बड़ा पूड़ी भी बनाया जाता है। इस प्रकार आदिवासी समाज दीपावली या दीवाड़ मनाता है

अगहन माह में अबूझमाड़ के हल्बा बाहुल्य गाँवों में लछमी जगार का आयोजन किया जाता है। गोण्ड आदिवासी धन की देवी माता लक्ष्मी जी की पूजा नही करते इसलिये लछमी जगार केवल हल्बा जनजाति और मरार, कलार, अन्दकुरी जाति की महिलाओं द्वारा आयोजित किया जाता है। यह आयोजन अगहन माह के गुरूवार से गुरूवार आठ दिन तब आयोजित किया जाता है। इसे आठ दिन चलने वाला आयोजन कहा जा सकता है। इस अनुष्ठान में दो महिलाये लक्ष्मी जी के यश कीर्ति के गीत, जन्म से लेकर मृत्यु तक गाती हैं जिन्हें गुरूमाय कहा जाता है। ये गुरूमाय रात दिन जगार गीत पारम्परिक वाद्य धनकुल बजाकर गाती हैं। यहाँ यह स्थापना की जाती है वहाँ एक पायली में धान रखकर उसके मुँह को नये कपड़े से ढक दिया जाता है। वाद्य के लिये दो मेंडरी (घास से बने दो छल्ला) के उपर हाण्डी रखकर ऊपर से सूप में ढका जाता है, फिर एक धनुष को उपर में रखा जाता है जिसको गुरूमाय अपने पैर से दबाये रखती है एक हाथ में बाँस की कमची से धनुष में रगड़ कर ध्वनि निकालती है और दूसरे से धनुष की डोर को खींच कर ध्वनि निकालकर ताल देती है। इस प्रकार लछमी जगार का आयोजन किया जाता है। अन्य समाज की महिलायें इस माह में वैभव लक्ष्मी की पूजा करती हैं।

पौष माह में अन्य समाज के लोग किसी भी प्रकार का धार्मिक आयोजन नही करते परन्तु आदिवासी समाज पूपूल साड़ मनाता है। इस साड़ को मनाने के लिये देव आमंत्रण होने के बाद पूरे परगने से लोग मुख्य देवता के मंदिर में जमा होते हैं। उस दिन गाँवों से देवताओं को नही लाया जाता है। मुख्यदेवता की विधिवत पूजा करके सेम और उड़द चढ़ाया जाता है अर्थात पूपूल साड़ में सेम, उड़द की जोगानी किया जाता है। पूपूल गोण्डी शब्द का अर्थ उड़द होने से इस त्यौहार का नाम पूपूल साड़ है।

माघ महिन में मेला मंडई जातरा का सिलसिला प्रारंभ होता है। इसके पहले पौष पूर्णिमा को पूरे छत्तीसगढ़ में छेरछेरा पर्व मनाया जाता है जिसे बस्तर में छेरता कहते हैं। यह अन्नदान का पर्व है। फिर गाँव गाँव में मेला-मंडई जातरा प्रारंभ होता है। यह समय आदिवासी समाज के लिये फुरसत का होता है। सब काम सम्पन्न हो चुका होता है और वनोपज संग्रहण का काम भी नही रहता। यह पूरे बस्तर में आनन्द का समय होता है। फाल्गुन में होली त्यौहार मनाया जाता है। आदिवासी समाज का यह त्यौहार नहीं है परन्तु कस्बाई

क्षेत्रों में होली खेली जाती है।

जेठ माह के अक्षय तृतीया के दिन को छतीसगढ़ में अक्तई कहा जाता है। यह दिन किसानों के लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है, इस दिन बीज निकालने का मूहर्त किया जाता है। बस्तर में यह दिन माटी तिहार के रूप में मनाया जाता है। अबूझमाड़ नारायणपुर क्षेत्र में यह दिन निश्चित नही होता परगना के लोग बैठक आयोजित कर दिन तय करते हैं। इस दिन के लिये देव निमंत्रण दिया जाता है। दूसरे दिन सब गाँव के लोग सेवा चाँवल शराब लेकर जमा होते हैं, गांयता माटीमाय की विधिवत पूजा करता है। आम, भेंलवां, चार (चिरौंजी) आदि देवताओं को अर्पित किया जाता है। चूजा और अण्डे की बलि दी जाती है शराब का तर्पण किया जाता है। सब प्रसाद के रूप में आम खातें हैं, शराब का सेवन करते है। फिर सामूहिक भोज होता है। इस त्यौहार को अलग अलग क्षेत्र में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है, जैसे यहाँ इस हल्बी में आमा जोगानी गोण्डी में मरका साड़ या कोहका साड़ कांकेर में अक्तई दक्षिण बस्तर में मरका पंडुम, आमा खापनी आदि। इसी दिन बीज बोने का मूहर्त किया जाता है और पेन्दा खेती करने के लिये लकड़ी काटने का मूहर्त किया जाता है। जेठ में अन्य समाज की महिलाये अपने पति के लिये दीर्घायु होने सकी कामना से वट सावित्री का व्रत रखतीं हैं।

अषाढ़ माह में आदिवासी समाज विजांग मनाता है, यह सूखा बाआई करने के बाद जब बीज अंकुरित होता है तब माटी माय का आभार मानने के लिये बीजा साड़ का आयोजन किया जाता है। इसे बीज कुकड़ी भी कहते है। इसमें गाँव के एक छोर के लोग चाँवल दाल अण्डा मुर्गी लेकर एक जगह जमा होते हैं, रावबाबा, कैना, कौड़ो, माटी माय का आव्हान कर विधिवत पूजाकर उन्हे बलि देते हैं, शराब अर्पित करते हैं और प्रार्थना करते हैं " हे रक्षक देव हमने जो बीज बोया था वह अंकुरित हो गया है इसकी आगे भी रक्षा करना"। इसके बाद सामूहिक भोज होता है। इसी माह में नारायणपुर में जगन्नथ भगवान की रथयात्रा होता है। जिसे गोंचा कहते हैं, बोहड़ती गोंचा के बाद फिर कुछ दिनों में अमुस तिहार आता है।

लोक संदर्भ –: लक्ष्मण दुग्गा– रैनुराम कुमेटी– देवनाथ उसेण्डी–बालसाय वड्डे– पण्डी राम वड्डे–

महेश्वर पात्र– हीरासिंह देहारी– रजनुराम नेताम – साक्षात्कार समय समय पर

विभूतियां

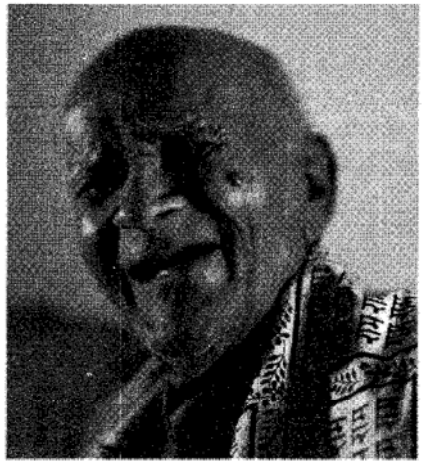

लोक साहित्यकार : ठाकुर रामसिंह

सन् १९५६ ई. में नारायणपुर को रामसिंह ठाकुर के रूप में एक कलाकार मिला। इस वर्ष बहु उद्देशीय विकास खण्ड का गठन किया गया था और योजनाओं का प्रचार-प्रसार फिल्मों के द्वारा किया जाता था। फिल्म दिखाने के लिये ठाकुर साहब नारायणपुर आ गये, शायद यही उनकी मंजिल रही होगी, तभी तो वे यहाँ के हो कर रह गये। पहली बार लोगों ने सिनेमा देखा था और वे ठाकुर साहब के मुरीद हो गये थे। सबने उन्हे हाथों हाथ लिया और एक नाम दिया आपरेटर बाबू। तबसे आज तक आपरेटर बाबू नारायणपुर के शोभा बने हुये हैं। यह वो समय था जब यहाँ के लोग अपने काम के साथ अपने मंनोरंजन का सामान स्वयं जुटाते थे। इस समय इनका नारायणपुर में आना यहाँ के लोगों के लिये वरदान सिद्ध हुआ। ग्यास (पेट्रोमेक्स) जलाना हो या हरमोनियम बजाना हो सब आपरेटर बाबू ही किया करते थे। कला केवल प्रशंसा की भूखी होती है और नारायणपुर वासियों ने बहु-आयामी ठाकुर साहब की कला को खूब सराहा खूब प्यार दिया। इतना अपनापन की शासकीय नौकरी छोड़ कर नारायणपुर में बस गये ।

तीन जुलाई १९३२ में रामसिंह ठाकुर का जन्म बस्तर के जाने माने साहित्यकार ठाकुर पूरन सिंह जी के घर जगदलपुर में हुआ था। जिनका नाम हल्बी बोली व्याकरण लिखने के लिये बस्तर साहित्य के इतिहास में स्वर्ण अक्षर में दर्ज है। एक अच्छे संस्कारिक परिवार में पले बढ़े ठाकुर साहब का बचपन पढ़ाई के साथ कला से भी जुड़ता चला गया। जगदलपुर कला के लिये पहले से ही जाना जाता रहा है। यहाँ उनका बचपन पढ़ाई के साथ कला की बारीकियाँ सीखने लगा। जिज्ञासु प्रवृति के होने के कारण जिस चीज को देखतें उसे जानने और प्रयोग करने के तरीके जानना उनकी आदत बन गई। पढ़ाई से ज्यादा दिलचस्पी उनकी मशीनों में थी और वे बचपन में ही शासकीय वाहन चलाने लगे। उन दिनों वाहन चलाना भी किसी कलाकारी से कम नहीं था। उन दिनों जगदलपुर में रियासत कालीन थियेटर चलता था और ठाकुर साहब वहाँ का प्रोजेक्टर चलाया करते थे। एक बार इस प्रोजेक्टर में खराबी आ गई सिनेमा कई दिनो तक बन्द रहा कोई मेकेनिक बस्तर आने के लिये तैयार नही था। ठाकुर साहब ने ब्रिटिश अधिकारियों से कहा मैं इसे ठीक कर सकता हूँ। यह उनका आत्मविश्वास था, सबको हैरान कर गया और उन्होने वह मशीन ठीक कर दी। वाहन चलाना और सिनेमा प्रोजेक्ट चलाना जानने के कारण वे बहुउद्देशीय ब्लॉक के पहले बी.डी.ओ. सूरज प्रकाश वर्मा की पहली पसन्द थे। उन्होने ठाकुर साहब को नारायणपुर ले आये।

सरल मृदुभाषी रामसिंह ठाकुर को जितना प्यार नारायणपुर ने दिया उससे दुगुना प्यार उन्होने नारायणपुर से किया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी चित्रकार, मूर्तिकार, मेकेनिक ,फोटोग्राफर के रूप में इन्होने कला से नारायणपुर को रंग दिया। किसी जलसा के लिये पोस्टर, बेनर बनाना हो स्थल को सजाना हो, सब काम ठाकुर साहब ही करते रहे, गणेश की मूर्ति तो वे ऐसा बनाते थे कि देखने वाले देखते ही रह जायें। वे ये सब काम कला की सेवा के लिये करते इन कामों का किसी से पैसा नहीं लेते। उन्हे इन कामों के लिये जो सम्मान मिला था, उसके सामने पैसे का क्या मोल?आपरेटर की चार पाँच साल के बाद नौकरी छोड़कर वे जगदलपुर अपने परिवार के पास चले गये, पर लिखा को कौन टाल सकता है ठाकुर साहब नारायणपुर के लिये बने थे और यही के होकर रह गये। ८४ साल के अपने जीवन में उन्होने कुछ बनाया था तो वह जिसमें आज भी वे रह रहे हैं वही एक घर है। उस समय वे उसी घर में अपनी कला

की दुकान खोल ली। यह दुकान घर दोस्तों के बैठने का स्थान सब कुछ था। ठाकुर साहब एक अकेले व्यक्ति थे जो रेडियो घड़ी बना लेते थे। इस समय वे किसी भी कार्यक्रम के केन्द्र बिन्दु हुआ करते थे, सांस्कृतिक कार्यक्रम हो, बैठक हो, सबकी जिम्मेदारी वे ही निभाते थे।

जिन दिनों में रामसिंह बाबू ने नारायणपुर को अपने रहने के लिये चुना था, उन दिनों यहाँ बिजली नहीं थी। एक शौक जो ठाकुर साहब के उपर जुनून की तरह सवार था वह थी फोटोग्राफी। यह बहुत ही मंहगा शौक था, जिसे अपने दूसरे स्रोत से कमाये पैसे से पूरा किया करते थे। कैमरा तो मंहगा था ही उसमें लगने वाले फिल्म भी मंहगे आते थे फिर उसे विकसित करना बिजली नहीं होने से और भी मुश्किल काम था। ठाकुर साहब बताते हैं कि एक विदेशी महिला को अपने खींचे फिल्म को कुछ बड़ा बनवाना था। जब उसे ये मालूम हुआ कि यह काम नारायणपुर में सम्भव है तो उसके आश्चर्य्र का ठिकाना न रहा और वह मेरा स्टुडियो देखने मेरे घर आई, जहाँ मैने एक अंधेरे कमरे में अपना स्टुडियो बनाकर रखा था। छत के एक खपरा को हटाकर उस कमरे में प्रकाश की किरण प्रोजेक्ट में डालकर उसके फिल्म को विकसित किया तो उसकी आँखे फटी रह गई। उसके मुँह से केवल इतना निकला "वेरी गुड"। जाने से पहले उसने मुझसे दस बार हाथ मिलाया था। इस तरह के कई किस्से हैं जो ठाकुर साहब के आश्चर्य के कारनामे का बयान करती है।

यह समय नारायणपुर एक कस्बाई क्षेत्र था, यहाँ जगदलपुर से प्रकाशित होने वाला साप्ताहिक दण्डकारण्य समाचार पत्र आता था, जिसके रामसिंह ठाकुर पत्रकार थे। इस क्षेत्र की किसी भी घटना को बड़ी प्रमुखता से समाचार के माध्यम से उठाया करते थे। कई बार उस समय के अफसर शाही से उनकी टकराहट होते रहती। कई अवसरो पर उन्हे गिरिफतार भी किया गया परन्तु लेखनी का आक्रमक तेवर बरकरार रहा। उनके हौसले को जब गरीबी नही रोक पाई तो प्रशासन क्या रोक पाता? कई अवसर पर ब्रम्हदेव शर्मा कलेक्टर जगदलपुर के कार्य प्रणाली पर ठाकुर साहब की लेखनी चली और प्रशासन निरूत्तर रहा। चाहे पूरातत्व के बिखरे अवशेष को अन्यत्र ले जाने का मामला हो या जब एन.एम.डी.सी. के कर्मचारियों से आदिवासी बालाओं के साथ बेमेल विवाह हो ठाकुर साहब की लेखनी अनवरत चलती रही। ठाकुर साहब ने पूछा था कि किस कानून की तहत ये विवाह हो रहे हैं और विवाह के सफलता की

क्या गारन्टी है? प्रशासन हिल गया था और इन विवाहों पर रोक लगी थी। तारागाँव के घोटुल में बी.बी.सी. द्वारा अश्लील फिल्म बनाने के मामले ने तो संसद को बहुत दिनों तक गरमाकर रखा था। ठाकुर साहब ने जिस भी क्षेत्र में कदम रखा कीर्तिमान बनाया।

किसी भी घटना का प्रभाव उनके मन में गहरे तक पैठ करती थी। सन १९७२ ई. में बस्तर के आदिवासी बिहारी दास बाबा से दीक्षा लेंकर आध्यात्म की ओर उन्मुख हो रहे थे। उस समय बिहारी दास के चपका ग्राम जाने का मौका मिला था ठाकुर साहब को। वहाँ उन्होने देखा आदिवासी राम नामी धुन गा गा कर नाच रहे हैं। उन्होंने नाच रहे लोगों से पूछा "ये राम कौन हैं जानते हो" उन्होने कहा "नही" उस दिन से उन्होंने ठान लिया कि इन आदिवासियो को वे राम नाम की महिमा से परिचित करवायेगें और वे राम चरित मानस का हल्बी बोली जो यहाँ की सम्पर्क भाषा है में अनुवाद करने लगे। वे बस्तर के लोक गीत "लेजा" जिसका शब्द विन्यास राम चरित्र मानस के दोहा से मिलती थी, उसमें अनुवाद करना प्रारंभ किया। एक एक चौपाई तीन चार पद बनने लगे, और राम चरित्र मानस का काव्यानुवाद होता गया। यह पहला अवसर था जब किसी क्षेत्रीय बोली में राम चरित्र मानस का काव्यानुवाद हो रहा था। ठाकुर साहब चाहते थे कि जैसे राम चरित मानस की दोहा चौपाई लोगों की जुबान पर बसी हुई है उसी प्रकार बस्तर के लोग भी अपने तीज त्यौहार में उनके अनुवाद को गा गाकर नाचे। अपने काम को उन्होने सन्१९७६ ई. में पूरा किया। इस बीच उनकी कई पाण्डुलिपी चोरी भी कर ली गई पर वे विचलित नहीं हुये। अपना कार्य जारी रखा। इस राम चरित मानस के कुछ अंश को वे दण्डकारण्य में छपवाने लगे, तब आकाशवाणी केन्द्र जगदलपुर ने नियमित दस मिनट का प्रसारण हल्बी रामायण का करने लगा। यह हल्बी रामायण हाथ से लिखी गयी थी इसके प्रकाशन के लिये इसका टाईप होना आवश्यक था, तब ठाकुर साहब ने टाईप रायटर खरीदकर इसको टाईप किया।

हल्बी रामायण का प्रकाशन बहुत ही संघर्ष के बाद सन् १९९० ई. में हो ही गया और इसका प्रकाशन मानस चतुर्थी शताब्दी समारोह भोपाल ने कराया था। यह प्रकाशन हल्बी साहित्य के लिये मील का पत्थर साबित हुआ और हमारे नारायणपुर के आपरेटर बाबू, प्यारे रामसिंह बाबू को बस्तर के तुलसीदास

कहा जाने लगा। इस महाकाव्य का स्थल परीक्षण भी करया गया, हल्बी तो हल्बी है, बस्तर की सम्पर्क बोली, सब जगह इसका सम्मान हुआ और साथ में इसके रचियता ठाकुर रामसिंह जी का भी। मानस सम्मान समारोह कानपुर में जब ठाकुर साहब को सम्मानित किया तब वहाँ अध्यक्ष ने जो बात कही वह मन को छुने वाला था। कहा गया कि"गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो हिन्दी भाषी लोगों के लिये राम चरित की रचना की, परन्तु बस्तर के रामसिंह ठाकुर ने इसका विस्तार करते हुये इसे गाँव-गाँव तक पँहुचा दिया" यही हल्बी रामायण की सच्चाई है इसे गाँव के लोग भी समझते है। इनकी कलम यही नहीं रूकी अब बारी श्रीमद् भगवतगीता की थी इसका भी ठाकुर साहब ने भावानुवाद किया, जिसे भाषा और संस्कृति विभाग छतीसगढ़ ने २०१४ में प्रकाशित किया। जिसका विमोचन स्वयं प्रदेश के मुख्यमंत्री माननीय डा. रमनसिंह जी ने किया और इस अवसर पर वयोवृद्ध ठाकुर रामसिह जी का सम्मान किया।

८४ वर्षीय रामसिंह ठाकुर नारायणपुर की धरोहर है, आज भी वे लोगों के बीच जिस कला का बीज रोपा था उसे फलते फूलते देख रहे है। इस चौथपन में सुबह शाम राम मंदिर में अपनी हाजरी लगा रहे हैं। कला की प्रतिमूर्ति बनकर कभी घर तो कभी दुकान में शोभायमान होते है। अपनी कला विरासत को बच्चों के द्वारा आगे बढ़ाते हुये देखकर सन्तुष्ट है। नारायणपुर की प्रेमी जनता उनकी दीर्घायु होने की कामना करती है।

श्री रामसिंह ठाकुर से साक्षात्कार दिनाँक १५- ०५- २०१५

समाज सेवी :- बापू रामशंकर जोशी

०८ जून सन् १९७२ ई. जब ओरछा अबूझमाड़ में माननीया श्रीमती इन्दिरा गांधी आई थी, इस आवागमनविहीन क्षेत्र में एक व्यक्ति अपना आवेदन देने के लिये सड़क के दोनों किनारे कतार में लगे लोगों के साथ खड़े थे। सुरक्षा इतनी तगड़ी थी कि पछी भी पर नही मार सकता था। प्रधान मंत्री का काफिला गुजर गया था और वे आवेदन नही दे पाये थे। तभी उन्होने देखा एक माड़िया प्रधान मंत्री की ओर हाथ उठा कर कागज लहराया और मेडम ने गाड़ी रूकवाकर उससे कागज ले लिया। इन्हे भी आवेदन देने का आयडिया मिल गया था। हेलीपेड से सभा स्थल की दूरी आधा कि.मी. थी, इन्होंने बीच में खड़े होकर प्रधान मंत्री को आवेदन हिलाकर ध्यान आकृष्ट किया गाड़ी रूकी और आवेदन लिया, उन्होने कहा "पढ़ना जरूर" काफिला उड़ गया। आवेदन देने वाले और कोई नही बापू रामशंकर जोशी जी थे और आवेदन में इन्होने लिखा था अबूझमाड़ का उत्थान करना है तो किसी स्वयंसेवी संस्था के माध्यम से कार्य करवाया जाये। प्रत्युत्तर मिला, रामकृष्ण मिशन आश्रम के रूप में स्वयंसेवी संस्था अबूझमाड़ में कार्यरत है।

बस्तर में बाहर से आकर बसने वाले रोजी रोटी कमाने आते हैं पर बापू यहाँ अपनी कम्पनी का हिसाब किताब देखने आये थे। उनकी कम्पनी

जिसके वे मुलाजिम थे, लघुवनोपज की पूरे बस्तर में खरीददारी करती थी। कम्पनी को खाते में गड़बडी की आशंका हुई, तब अपने सबसे विश्वस्त राम शंकर जोशी जी को बस्तर भेजा गया। उन्होने पहले कांकेर से खाता ठीक करते हुये नारायणपुर आ गये। यह सन् १९५२ की बात है, जब नारायणपुर एक गाँव था, यहा पीने तक के लिये पानी तक नहीं था। जब कम्पनी का काम खत्म हुआ, तब उन्होने अपने बड़े भाई जो यहा सन् १९४७ में आ गये थे को चलने के लिये कहा तब उन्होने कहा कही तो बसना है क्यों ना यहाँ पर बसा जाये और बापू यही के होकर रह गये। बम्बई से यहाँ आये थे बापू जी, उनकी प्रशासनिक पकड़ अच्छी थी, कुछ ही समय में गाँव के लोग उन पर विश्वास करने लगे और वे लोगों का काम करने लगे। कहते है ना जहाँ का दाना पानी लिखा होता है आदमी वहीं का हो जाता है।

बापू रामशंकर जोशी का जन्म सन् १९३० ई. में ग्राम रोहा कोटड़ा जिला कच्छ गुजरात में हुआ था, जब वे गोद में थे तब पिता का साया उनके सिर से उठ गया था, उनकी माँ और दादी ने परवरिश की। होश सम्हालने के बाद वे दोनों भाई अपने पिता के मित्र की कम्पनी में काम करने के लिये बाम्बे आ गये। दोनो भाई कुशाग्र बुद्धि के थे उन्हे काम समझने में कोई परेशानी नहीं हुई। कम्पनी के मालिक कारपोरल थे बापू उनके आफिस में बैठ कर पब्लिक का काम किया करते थे और यही से उनको जनता का काम कैसे करना है आ गया था। उनके मालिक भी किसी भी मिटिंग या जलसा में उन्हे लेकर जाया करते थे, रणनीति बनाने में उनकी सलाह ली जाती थी। बापू जी को बाद में यही सब काम बस्तर में आकर भी करना पड़ा। सन् १९६२ में भंयकर अकाल पड़ा, लोगों के पास खाने को कुछ भी नहीं था, त्राहि-त्राहि मची हुई थी। ऐसे समय में प्रशासन जो उस समय लाल ज्वांरी उपलब्ध करा रहा था को वितरण कराने में बापू जी ने महती भूमिका निभाई थी। इस समय नारायणपुर के आस-पास सभी लोगों के लिये जो सेवा का कार्य उन्होने किया उससे जनता के साथ प्रशासन ने भी उनके कार्य की प्रशंसा की। इसके बाद का वर्ष राजनीतिक उथल-पुथल का रहा, महाराज प्रवीरचन्द्र की हत्या हो गई थी और फिर चुनाव हुआ। नारायणपुर के सभी साथियों के साथ मिलकर बापू जी ने निर्दलिय प्रत्याशी बद्रीनाथ बघेल को चुनाव लड़ाया और राजा का प्रत्याशी होने का प्रचार किया, परिणाम पक्ष में आया। संविद शासन बनने से बद्रीनाथ मंत्री बनाये गये।

पी.डब्ल्यु डी मंत्री होने के कारण उस समय नारायणपुर अन्तागढ़ और कोण्डागाव मार्ग में पुल पुलियों का निर्माण हुआ।

सन्१९७२ में जबरदस्त सूखा पड़ा था, लोगों को पीने की पानी की काफी परेशानी हो रही थी। रामशंकर जोशी जी ने बहुत लिखा पढ़ी की पर नतीजा कुछ नही आया। तब उन्होने पानी के लिये आमरण अनशन किया। पाँच दिन के बाद परिणाम अच्छा आया और नारायणपुर में लगभग २० हेण्डपम्प की खोदाई की गई। इससे पहले यहाँ के लोग तालाब का पानी पीया करते थे। यह बापू के जीवन का खूबसुरत मोड़ था वे भले ही एक राजनीतिक दल से जुड़े रहे पर उन्होने समग्र जनता की सेवा का संकल्प लिया था और जनता की सेवा करने लगे। कई बार अप्रिय स्थिति भी निर्मित हुई पर बापू कभी विचलित नहीं हुये। सन्१९७६ के मीशा में व्यापारियों के साथ पूरी दमदारी से खड़े रहे किसी को जेल जाने नहीं दिया। १९८४ के सिक्ख विरोधी दंगे के समय नारायणपुर के सिंक्खो के साथ खड़े रहे। इस कार्य में बापू जी का व्यवसाय प्रभावित हुआ, खेत को बेनामी सम्पति घोषित कर छीन ली गई पर बापू को झुका नही पाये।

बापू का आक्रमक स्वभाव, स्पष्टवादिता और उनकी निर्भीकता ने उन्हे बहुत ही लोकप्रिय बना दिया था। ब्राम्हण होने के कारण सब उन्हे जोशी महाराज कहकर पुकारा करते थे। अबूझमाड़ के लोगों में भी वे खासे लोकप्रिय थे वहा के लोग उन्हे दोशी महाराज कहकर बुलाते थे। बापू जी में एक बात जो उन्हे सबसे अलग करती थी, वह था उनका बात करने का अंदाज, वे पहले से ही जान जाते थे कि सामने वाला क्या कहेगा और उन्हे क्या उत्तर देना है। लोगों की परेशानी को वे पूर्व से भांप लेते थे। एक बार कुछ माड़ियों का घर वन विभाग वालों ने जलाया था, जिसकी जानकारी बापू को थी और उन्होने उनके मुवावजा के लिये पूर्व से ही अधिकारियों को कह रखा था। दोपहर का समय था, वे लोग आये तब उनसे बात किये बिना ही उन्हे डी'एफ'ओ' के पास लेकर गये और प्रतिकर की राशि दिलवाई। उनके काम करने का अंदाज ही अलग था, वे अधिकारियों से काम करा सकते थे पर वे बाबूओं के पास पहले जाते, उनसे जब काम नहीं बनता तब वे अधिकारियों से काम कराते। ऐसे थे जोशी महाराज सरल और सबके लिये आसानी से उपलब्ध।

नारायणपुर क्षेत्र में ८० के दशक में नक्सलवादियों का आगमन हो चुका था, पर उन्हे इस क्षेत्र में अपना प्रभाव जमाने में लम्बा समय लग गया। सन् १९९१ के विधान सभा चुनाव में बम विस्फोट से १२ सी.आर.पी.एफ. के जवान शहीद हुये थे लोग वहाँ जाने में डर रहे थे जोशी जी पहले व्यक्ति थे जो वहाँ गये, इस तरह के कई उदाहरण हैं जिसमें वे घटना स्थल पर पहुँचने वाले पहले व्यक्ति थे। इसलिये इन्हे दु:ख का साथी कहा जाता था, किसी व्यक्ति को कोई समस्या होने वह जोशी जी का याद करता था। नारायणपुर क्षेत्र के विषय में इनकी गहरी सोच थी वे हर समय इसके विकास के लिये सोचते थे। जब भी कोई नेता या मंत्री प्रवास पर आता जोशी जी उसे यहाँ के विषय में कोई आवेदन जरूर देते थे और देर सबेर उसकी पूर्ति भी होती थी। शालेय खेलकूद प्रतियोगिता के समय एक. अधिकारी और शिक्षकें के बीच विवाद हुआ, परिणाम खेलकूद का बहिष्कार कर दिया गया, जोशी जी ने मध्यस्थता की जिसमें अधिकारी को माफी मांगना पड़ा गलतफहमी के कारण नाराज अधिकारी ने रात में उन्हे गिरिफ्तार कर लिया और नारायणपुर की जनता ने रात को ही थाना का घेराव किया और छोटेडोंगर थाने से जोशी जी को छोड़ने के लिये मजबूर होना पड़ा, जब उन्हे नारायणपुर लाये तो जनता ने हाथों हाथ लिया उस समय नारा लगा था, जोशी नही ये आंधी है नारायणपुर का गांधी है। जोशी महाराज मूलत: गुजराती थे और उन पर महात्मा गांधी की स्पष्ट छाप देखी जा सकती थी। यही कारण है कि अपना सारा जीवन वे पूरी ईमानदारी से लोगों की सेवा करते रहे। वे छोटे छोटे काम को करके बड़े आदमी बन गये।

रामशंकर जोशी इस क्षेत्र के आदिवासियों के लिये सोचते थे कि उनका विकास कैसे हो सकता है। वे अपनी भावना अधिकारी, नेता, मंत्रियों को हर समय अवगत कराते थे, चाहे कोई सुने या न सुने उन्हे फर्क नही पड़ता था। शिक्षा के लिये उनकी सोच का प्रतिफल आज विकसित हो रही आश्रम शालायें है, वे कहा करते थे की सुदूर अंचलों में आठ-दस गाँव के बीच में एक ऐसे स्कूल बनाया जाये जहाँ छात्र-छात्रायें रहें साथ पढ़ें खेले, वहाँ शिक्षकों के लिये भी सर्वसुविधा युक्त आवास हो, सब साथ रहकर पठन-पाठन करे। बाद में योजना बनाने वालों को लगा कि ऐसा होना चाहिये और आश्रम शालाये आज अस्तित्व में आ गई हैं। जब नक्सल समस्या विकराल रूप लिया तब बापू नारायणपुर आने वाले सभी छोटे बड़े पुलिस अधिकारीयों से कहते कि इस समस्या से बाहर आने

वाली पुलिस नही निपट सकती क्योंकि उन्हे इस क्षेत्र की जानकारी नही होती, न ही वे यहाँ की भाषा बोली ही जानते हैं, जब तक आप इस क्षेत्र के बच्चों को साथ नही रखेगें तब तक नक्सलियों से लड़ाई संभव नही है। जोशी जी ने अपना काम कर दिया था अधिकारीयों को बाद में समझ आने लगा कि यह व्यक्ति ठीक कह रहा है और पुलिस में स्थानीय नवयुवक-युवतियों की भर्ती होने लगी परिणाम सबके सामने था। पुलिस को आज तक जितनी सफलतायें मिली सबके पीछे स्थानीय लड़कों के जिला पुलिस बल का हाथ है। इससे फायदा यह हुआ कि बेरोजगारों को नौकरी मिलने लगी और लड़के नक्सलपंथ से तौबा कर पुलिस के साथ जुड़ने लगे।

आज हमारे बीच बापू रामशंकर जोशी नही है १७ अगस्त सन्२००७ में उनका अवसान हो गया, आप स्वयं अंदाजा लगा सकते है कि उनके नही होने से कितनी क्षति नारायणपुर के लोगों को हुई है। जब भी कोई घटना घटती है सबके मन में एक नाम अवश्य आता है आज बापू होते तो यह घटना नही होती। नारायणपुर क्षेत्र के लोगों के दिलों में बापू जी का नाम चिरस्थायी बनकर रहेगा।

श्रीमती लीला बेन जोशी एवं श्रीमती भगवती बेन जोशी
साक्षात्कार दिनाँक १२-१२-२०१५

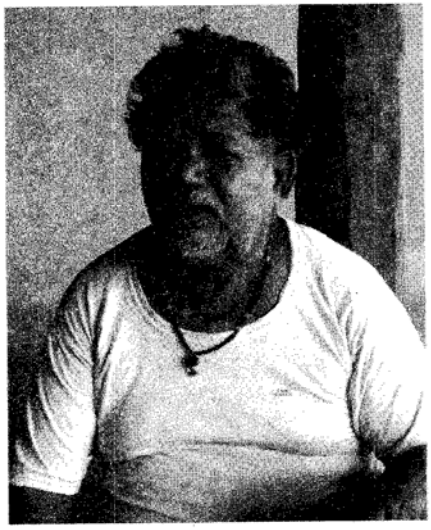

पारम्परिक वैद्यराज : हेमचन्द मांझी

अबूझमाड़ के सदूर अंचल छोटेडोंगर के मुण्डा टिकरा में बहुत ही खामोशी से, प्रचार-प्रसार से दूर अपने निजी ज्ञान से, लोगों का मुफ्त में इलाज कर रहे शख्स का नाम हेमचन्द मांझी है। पारम्परिक पद्धति से जहाँ इलाज की समुचित व्यवस्था नही के बराबर हो ऐसी जगह विकल्प के रूप में जड़ी-बुटी से लोगों के भयकंर बीमारियों को दूर करना वाकई चुनौती पूर्ण कार्य है और इसे विगत ३५ वर्षों से निरन्तर हेमचन्द मांझी कर रहे हैं। सभी प्रकार की बीमारियों के लिये चाहे वह छोटी हो या बड़ी इलाज करना इन्होंने अपना कार्य बना लिया है। केंसर, रक्त केंसर, अस्थी केंसर, जैसे असाध्य रोगों का इलाज इनके द्वारा दिये जाने वाले जड़ी-बूटी मे साध्य हो जाता है। यही कारण है कि यहाँ छोटे डोंगर जैसे आवागमनविहीन क्षेत्र में बहुत दूर-दूर से लोग अपना इलाज कराने आते हैं। छ०ग० का औद्यौगिक नगर भिलाई में सभी प्रान्त के लोग निवास करते हैं। इनके द्वारा लोगों को बताने के कारण इलाज का प्रचार-प्रसार हुआ और सभी प्रान्त से लोगों का इलााज के लिये यहाँ आना होता है।

ऐसा नही है कि वैद्यराज केवल केंसर का ही इलाज करते हैं, वे

सभी बीमारियों का इलाज करते हैं। जिनमें टी.बी., बवासीर, दमा, लकवा, सिकलीन, गठिया वात, और मिरगी जैसी बीमारियों का भी इलाज इनके द्वारा किया जाता है और इस इलाज से सब ठीक हो जाते हैं। यही कारण है कि इन्होंने बड़े-बड़े राजनेता, सेठ-साहूकार, अधिकारियों आदि का इलाज कर प्रसिद्धि पाई है। अथक परिश्रम से जड़ी-बूटी खोज कर, उसे साफकर सुखाने से लेकर कुटना-पीसना और उसमें अन्य सामग्री मिलाने तब का मुश्किल कार्य करने के बाद तैयार होने वाले इस चमत्कारी औषधि की तासीर पुराने से पुराने रोगों की अचूक दवा है। यही कारण है कि वैद्यराज हेमचन्द मांझी द्वारा दिये जाने वाले इन जड़ी-बूटियों पर अनुसंधान किया जा रहा है और इस बात का पता लगाया जा रहा है कि वह कौन सी जड़ी है जो केंसर को जड़ से मिटाने का काम करती है। सब तरफ से निराश होने के बाद जब केंसर का मरीज वैद्यराज के पास आता है तब तक बीमारी काफी बढ़ गई होती है, कभी-कभी तो डाक्टर जवाब दे चुके होते हैं। उन्हे दवाई देने के बाद खाली पेट खाने और कुछ परहेज करने कहा जाता है, आश्चर्य होता है कि वह मरीज पुनः दवा लेने आता है और अपनी ठीक होने की सूचना देता है।

वैद्यराज हेमचन्द मांझी बताते हैं कि उन्हे दवाई देना या दवाई बनाने की विधि किसी ने नही सीखाया वे स्वयं अपने अनुभव से सीखा है। वे बचपन से ही धीर-गंभीर स्वभाव के रहे, वे हर समय बड़े बुजुर्गो के साथ उठते बैठते थे। उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनते थें। जंगल जाना पान दातून लाने के लिये भी वे बजुर्गों के साथ ही जाते, वे एक दूसरे को जंगली जड़ी-बूटी के विषय में बताते, उन सब बातों को वे ध्यान से सुनते और मनन करते बूटियों को पहचानते, इस तरह वे जडी-बूटीयों को पहचानने लगे कौन सी दवाई किस बीमारी में देना है, यह जाना। आठ दस साल की उम्र में एक बार उन्हे एक फोड़ा हो गया था। उन्होने ध्यान नही दिया परिणाम वह फोड़ा पक गया। जब बहुत दर्द करने लगा तब वे अपने पिता को बताया, उन्होन फोड़ा को अच्छे से देखा और कपास को तेल में डुबाकर उसमें लगा दिया। कुछ दिन के बाद फोड़ा के फूटने के बाद उसमें तेल के साथ मिलाकर एक जड़ी पीस कर बाँध दिया और वह जख्म ठीक हो गया, यह उनके लिये पहला अनुभव था। जिसे धीरे-धीरे उन्होने अपना लिया। उनके किसी भी मित्र को जख्म होता वे उसी तरह उनका इलाज किया करते थें खेल-खेल में वे अपने सहपाठियों से कहते

चलो में फूँक देता हूँ और उन्हें वे जिस तरह सिरहा गुनिया फूंकते थे उसी की नकल करते हुये वे फूंकते थे, (बाहरी हवा लगने से गुनियां फूंककर उसे दूर करते है जिसमें पेट दर्द, हरारत बुखार आदि ठीक होते है।) विश्वास करने की बात है उन्हे वाकई फूंकना आ गया था, वे नही जानते, पर लोग उनके फूंकने से ठीक हो रहे थे। पहले ईलाज की कोई समुचित व्यवस्था नही थी, लोग फूंका-झाड़ा पर ज्यादा भरोसा करते थे और ऐसा होने लगा कि किसी को भी कोई तकलीफ होने से वे फूंकाने के लिये वैद्यराज के पास आते।

वैद्यराज बताते हैं कि ग्राम देवी शीतला माता के वे ही पुजारी हैं। इस देवी की सेवा का अधिकार उनके ही खानदान को है। उन पर देवी ने तेरह साल की उम्र में सवारी की, वे बताते हैं कि गाँवों में होने वाले खेलकूद भी उन दिनों देवी-देवताओं से सम्बंधित हुआ करते थे। एक बार गाँव के सभी लड़के-लड़कियाँ देव जातरा का खेल खेल रहे थे, केकती का आँगा बनाया गया था, कुछ लोग देवता को खेलाने वाला बाजा बजा रहे थे, कुछ लड़के देवता बन झुपने का स्वाँग कर रहे थे और मैं भी देवी चढ़ने की नकल कर रहा था। यह सिलसिला चल ही रहा था, बाजा बजाने वालों के पास जाकर मैने बाजा बजाने को कहा वे माता का पाड़ (ताल) बजाने लगे और मैं उस धुन पर खेलने लगा, मैं ही खेल रहा था दूसरों को खेलने नही दे रहा था। कुछ लड़कों ने इस स्थिति का भांप लिया कुछ गड़बड़ जरूर है, उन्होने भाग कर सब सियान लोगों को बुलाकर लाये, जिसमें मेरे परिवार के लोग भी थे। जानकार लोगों ने मुझे छुकर पता लगा लिया कि मेरे उपर देवी सवार है। फिर पूछा गया, सब तरह से परीक्षण किया गया, मुझ पर तो सचमुच की देवी सवार थी। फिर विधिवत पूजा की गई, देवी का मान दान कर विदा किया। इस तरह मुझ पर शीतला माता की सवारी आने से लोगों का विश्वास और भी दृढ हुआ और मै एक अच्छा सिरहा के साथ गुनिया बन गया।

अब मेरे पास पुरानी बीमारी वाले आने लगे थे, वे अपना कष्ट बताते और मैं अपने सीमित ज्ञान से उपचार करता। मुझे यह ठीक नहीं लगता पर क्या कर सकता था? मैं एक बार अपने बुजुर्गो से सुना था कि नाड़ी देखने की विद्या सूर्य ग्रहण के समय सिद्ध किया जाता है। आपस में चर्चा करते कन्हारगाँव के एक बुजुर्ग ने बताया था कि नाड़ी वैद्य लोग सूर्य ग्रहण के समय किकिर

लाटा (एक प्रकार की कटिला पौधा) को एकटक देखते हुये अपने कुलदेवी इष्टदेवी को स्मरण करते हुये अपनी नाड़ी को छूकर अभ्यास करने से नाड़ी देखने की विद्या सिद्ध होती है। हमारे गाँव में बहुत से गुरूमुखी परिवार के लोग हैं जो ग्रहण के समय अन्न जल ग्रहण नही करते हैं, उन्होने बताया की फलाँ दिन ग्रहण है और मै नाड़ी विद्या सीखने नहा धो कर तैयार हो गया। ग्रहण के समय एकान्त में जाकर जैसा सुना था वैसा करने लगा, एक आध घन्टा करने के बाद कुछ अहसास होने लगा था। इस क्रिया को अब मैं दूसरे पर आजमाने लगा धीरे-धीरे अभ्यास होता गया, अब में नाड़ी छूकर बीमारी बताने लगा।

वैद्यराज कहते हैं कि अब उनका सारा जीवन लोक सेवा के लिये अर्पित था, जैसे लोग आते उनका वैसा इलाज करने लगा था। किसीका जड़ी-बूटी से, किसी को झाड़-फूंक करके, देवता बैठकर, जिसका जैसा सम्भव था, उस प्रकार से इलाज करने लगा। खाली समय में जंगल जाता जड़ी-बूटी लाता, उसे साफ कर सुखता, कुटता पीसता, उसमें अन्य दवाई मिलाता और लोगों को देता। अपने निजी ज्ञान अनुभव और अभ्यास से दवाईयों के विषय में जानने के साथ, कभी-कभी ध्यानस्थ रहने पर भी जड़ी-बूटी का भान होने लगा था। सपने में भी उन स्थानों की जानकारी हो जाती जहाँ ये जड़ी-बूटी उपलब्ध होते थे। इस प्रकार मुझे वह हासिल हुआ जो स्वास्थ्य विज्ञान के लिये आश्चर्यजनक था, मेरी दवाई में केंसर बीमारी से लड़ने की क्षमता आ गई और यही मुझे नाड़ी वैद्य बना दिया। केंसर जैसी असाध्य बीमारी के लिये मैने २१ जड़ी बूटी को मिलाकर उस मिश्रण को देशी गाय के धी में पकाया, इसकी तासीर केंसर, बल्ड केंसर और हड्डी केसर का कारगर ईलाज साबित हुआ। लोग दूर-दूर से मेरे पास इलाज के लिये आने लगे और मुझे गाँव के वैद्य से वैद्यराज की उपाधि दी गई। आज भी मै इन बीमारियों का नि:शुल्क इलाज करता हूँ।

सही मायने में इसे लोगों का विश्वास कहना चाहिये की इस आवागमनविहीन क्षेत्र में जहाँ ४८ कि.मी. के सफर के लिये ढाई से तीन घन्टे लग जाते हैं, वहाँ लोग ईलाज के लिये दूर-दूर से आते हैं। न तो अच्छी सड़क है और न ही कोई रूकने की जगह, खाने के लिये कोई अच्छा होटल भी नही है ऐसे में महाराष्ट्र, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश तामिलनाडु, पश्चिम बंगाल, दिल्ली, मुम्बई

आदि जगहों से प्रति दिन चार पाँच वाहन जरूर आते हैं। इतने लोगों के लिये दवाई का इन्तजाम करना बड़ा ही मुश्किल का काम होता है। जड़ी-बूटी खोजना कठिनाई भरा और जोखिम भरा होता है, तथा शुद्ध देशी गाय का धी, जो काफी महंगा हो गया है, ग्रामीण अंचल में मिलना कठिनाई का काम है। वैद्यराज बताते हैं कि देवज्ञा है मैं किसी से पैसा मांग भी नही सकता, जिसको श्रद्धा होता है, वह देवी में चढ़ा देता है। कितने ही राजनेता, कितने ही अफसरान का मैने उनके बुलाने पर जाकर ईलाज किया, सब ठीक हुये पर किसी ने मेरी सुध नही ली। एक बार वन विभाग वालों ने मेरे उपयोग में आने वाली जड़ी-बूटी का खेती करने की बात कही थी, मै अपना खेत देने को भी तैयार था, मगर सब बात ही करते हैं, कोई काम करना नही चाहता।

वैद्यराज हेमचन्द मांझी के कार्यो का कोई मूल्याकंन करे न करे, कोई उनकी प्रशंसा करे न करे, वे किसी प्रचार-प्रसार से दूर अपने लोक कल्याण के कार्य को बड़े ही तन्यमयता से कर रहे हैं। वे कहते हैं कि सरकार लोक कलाकार, लोक शिल्पकार सबके कला को देखकर उन्हे पुरस्कृत करता है, पर मेरा भी तो कार्य किसी कला से कम नही है, इस ओर सरकार कब ध्यान देगी।

साक्षात्कार दिनाँक १-१-२०१६

विदेशी फिल्म का देशी हीरो-: चेन्दरू मण्डावी

आज यह बात नारायणपुर के निवासियों के लिये कल्पना से परे है कि गढ़बेंगाल जैसे एक छोटे से गाँव का व्यक्ति स्वीडिश फिल्म का हीरो रहा था। इस बात को तो बहुत से लोग जानते भी नहीं है। किसी ने जानने का प्रयास भी नहीं किया। जिन्होने किया भी तो वे चेन्दरू के विषय में ज्यादा नहीं जान पाये। उसके द्वारा निभाये गये किरदार वाली फिल्म किसी ने भी नहीं देखी, इसलिये इससे किसी को कोई सरोकार भी नहीं है कि कोई चेन्दरू नाम का व्यक्ति जो स्वीडिश फिल्म का हीरो था, वह गढ़बेंगाल में रहता था। पर यह सच है कि एक हीरो जिसे आज की पीढ़ी या उस समय की पीढ़ी भी नहीं जानती थी, गढ़ बेंगाल के डोंगरी पारा में रहा करता था। आज से दो वर्ष पूर्व उसकी मृत्यु हो गई। जब आज फिल्मों की चकाचौंध है, केमरा है, लाईट है, तब हीरो नहीं है। उस समय भी नहीं रही होगी क्योंकि जब यह फिल्म बनाई गयी थी तब नारायणपुर में बिजली नहीं थी। प्रकाश के लिये पेट्रोमेक्स जलाई जाती थी।

यह उस समय की बात है जब विदेशी लोग बस्तर और बस्तर के आदिवासियों के विषय में यहाँ के लोगों से ज्यादा जानते थे। इसके पीछे कारण था कि वे लोग ग्रिक्सन और एरियर एल्विन को पढकर बस्तर आते थे। इनके

अध्ययन ने बस्तर को किसी काल्पनिक दुनिया की तरह प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि स्वीडिश फिल्मकार अर्न सक्स्डॉर्फ ने कुछ अनोखा करने के लिये बस्तर को फिल्म बनाने के लिये चयन किया। जब वे नारायणपुर आये थे तब उनके पास न चेन्दरू के रूप में हीरो था न वह चीता था न ही कहानी थी। उन्हे फिल्म बनाने का आइडिया उस समय आया जब वे एक व्यक्ति को चीता के बच्चे के साथ नहाते देखा था। ये व्यक्ति मेरे मामा गयाप्रसाद तिवारी थे। उन्हे उस चीता के बच्चे से बहुत लगाव था पर मेरी नानी ने उन्हे वह चीता का बच्चा फिल्म बनाने के लिये दे दिया। इसके बाद और जंगली जानवरों की खोज की गई। इस चीता को खिलाने-पिलाने का काम चेन्दरू करता था। यह पालतू-पशु था, बहुत जल्दीं उसकी दोस्ती चेन्दरू से हो गई थी। स्वीडिश फिल्मकारों का पूरा दल फिल्म बनाने के लिये आ गया था और प्रारम्भिक तैयारी करने लगे थे।

गढ़बेंगाल का घोटुल स्वीडिश फिल्म का केन्द्र था, सत्तेरसिंह नेताम बताते है कि पण्डीराम के पिता और उनके दादा पहले से कलाकार थे और वे बाँस की बाँसुरी बजाते थे। उनके माध्यम से इस फिल्म के लिये चेन्दरू का चयन किया गया, उस समय चेन्दरू घोटुल का सबसे छोटा सदस्य था। उसके बाद से वे लोग चेन्दरू को अपने साथ रखकर कुछ-कुछ सीखाया करते रहे। हमारे घोटुल का नाच गाना का फोटो खिंचते रहे। उस समय मैं गाँव का सरपंच था,. उनकी सारी व्यवस्था मुझे करने को कहते थे। हम उनकी बात नहीं समझते थे पर उनके साथ बम्बई के दो लोग आये थे, उनके माध्यम से बात होती थी। मैं गाँव के लोगों को जमा करता था, वे लोग उनसे काम लेने के बाद उनको रोजी देते थे। फिल्म की कहानी बन गई थी, दिन भर फोटो खींचते थे। बड़े बड़े आयना (दर्पण) लाये थे उसमें फोटो खींचने से पहले चमकाते (लाईट डालते) थे। उस समय बिजली नहीं थी इसलिये शाम को काम नहीं होता था। नारायणपुर के मछली आफिस के पास फिल्म बनाने वालों का डेरा था, वहाँ हमारे गाँव के बहुत लोग रहते थे। चेन्दरू भी उन्ही के साथ रहता था। इस स्थान पर एक झोपड़ी बनाई गई थी जिसमे रात को सभी रूकते थे, दिन का खाना और रात में यहीं सब सोते थे। कुछ आदिवासी कारीगर भी आस-पास के गाँव से बुलवाये गये थे जो काष्ठ की मूर्तियाँ बनाते थे, ये मूर्ति फिल्म के नही बल्कि विदेश ले जाने के लिये बनवा रहे थे। उस जगह पर रहने वाले गाँव के

लोग बताते थे कि वहाँ रात को पेट्रोमेक्स के उजाले मे चेन्दरू को बाघ पिला (शेर के बच्चे) के साथ खेलने के लिये अभ्यास कराते थे। सत्तेर सिह ही एक ऐसे व्यक्ति थे जो चेन्दरू के विषय में कुछ जानकारी दे सकते थे।

स्वीडिश फिल्मकार अर्न सक्स्डॉर्फ की फिल्म का नाम, जिसका नायक चेन्दरू था, एन डीजगलसागा (ए जगल सागा या ए जंगल टेल या अंग्रेजी में दी फलूट एण्ड दी एरो) था। यह सन्१९५७ई. की बनने वाली बस्तर की पहली फिल्म है। जो ग्राम गढ़बेंगाल के लोगो के सहयोग से बन रही थी। गढ़बेंगाल के लोगों को लेकर फिल्मकार ने नारायणपुर से पन्द्रह कि.मी. दूर अन्तागढ़ मार्ग पर एक जगह तेन्दू मिलान की पहाड़ पर गये। उस पहाड़ी को बड़े-बड़े झाड को काटकर चारो ओर से घेरा गया। इस कार्य में लगभग एक माह का समय लगा। इसके साथ ही कई दिशा में बहुत ऊचे-ऊचें मचान बनाया गया। बाकी फिल्म यहाँ बनाई जाने वाली थी। पहाड़ी में जो बाड़ बनाया गया था उसमें बूढ़े बैल को बाँधा गया फिर वहाँ जो दूसरे बाघों को लाया गया था उन्हे छोड़ा गया। कैमरे वाले तैयार थे कि कब बाघ उस बैल का शिकार करेगा और उस घटना की फिल्म बनाया जायेगा। एक दिन दो दिन करते एक सप्ताह बीत गया परन्तु बाघ ने बैल का शिकार नहीं किया। फिर बैल को गिरा दिया गया उसके बाद आकर बाघ ने बैल का खून पिया जिसकी सूटिंग की गई। यहाँ एक डेढ़ माह तक सभी लोग रहे, कभी नाच गाने का कभी देव-धामी का फिल्मांकन किया गया और यह फिल्म पूरा हुआ।

फिल्म पूरा होने के बाद बहुत कुछ करना था जिसके लिये फिल्मकार का दल चेन्दरू को लेकर स्वीडन चला गया। वहाँ चेन्दरू को सात आठ महीना रहना पड़ा। बहुत उपहार दिया गया जिस तरह लेकर गये थे उसी तरह चेन्दरू को गढ़बेंगाल लाकर छोड़ा गया। उतने दिन एक अजनबी दुनिया में रह कर आने बाद चेन्दरू जैसे स्वतंत्र हो गया था फिर वही गाँव जंगल घोटुल लगता था कि भटके हुये हिरण का ठिकाना मिल गया था। बताते हैं कि उस समय प्रशासन के लोग आकर चेन्दरू को पढ़ाने का बहुत प्रयास किये परन्तु वह आदिवासी नवयुवक था, उसे बन्धन में रहना पसन्द नहीं आया। बाद में तो उसने शहरी लोगों से मिलना भी बन्द कर दिया था। इसका एक ही कारण था सब उसे एक ही बात पूछते थे कि कितना पैसा विदेशी लोगों ने उसे दिया

था, जिसका कोई उत्तर उसके पास नहीं था। इस बात को लगभग एक साल हो गया था कि एक दिन फिर फिल्म बनाने वाले आये और अपनी बनाई फिल्म का प्रदर्शन गढ़बेंगाल में किया। गाँव के सब लोगों ने देखा, वे नाच रहे थे, उनके देव-धामी, देवता खेल रहे थे, नगाड़ा बजा रहे थे, चेन्दरू बाघ के साथ खेल रहा था और भी बहुत कुछ था उस फिल्म में जिसे बनाने में उनका योगदान था। फिल्म दूसरी भाषा में होने से गाँव के लोगों को समझ में तो नहीं आया परन्तु अपने लोगों को उन्होने फिल्म में जरूर देखा।

सत्तेरसिंह नेताम बताते हैं कि यही एक दिन था जब हम चेन्दरू को खुश देखे उसके बाद तो जैसे उसे साँप सूँघ गया था, किसी से बोलना नही, हँसना गाना तो वह भूल गया था। काम धाम भी कुछ नही करता था, नदी के किनारे जाकर अकेला लेटे रहता था। पता नही उसे क्या हो गया था एक विदेशी फिल्म का हीरो गुमनामी का जीवन जी रहा था और आज से दो वर्ष पूर्व वह स्वर्ग सिधार गया। हीरो का अन्त हुआ।

लोक शिल्पी

देवनाथ पाण्डे : टेरा कोटा

मिट्टी से बनाये जाने वाले खिलौने, बर्तन का ग्रामीण लोक जीवन में काफी महत्त्व है। ये आदिकाल से जनजीवन की आवश्यकता बनी हुई है। खाना पकाने के बर्तन हो, पानी रखने की हण्डी हो चाहे बच्चों के खेलने के खिलौने हो ग्रामीण परिवेश में सभी मिट्टी से बनाई जाती है। इन्हे एक जाति विशेष कुम्हार जाति के लोगों के द्वारा बनाया जाता है। आदिवासी संस्कृति में अधिकतर कुम्हार जाति के लोगों के द्वारा बनाये गये बर्तन, दीये, धूपदानी, आरती, कलश, छोटे-छोटे बर्तन मिट्टी के घोड़े, हाथी आदि पूजा के लिये प्रयोग किये जाते है। इसी तरह शादी-विवाह में भी मिट्टी के बर्तनो का उपयोग होता है। अबूझमाड़ के कुछ गाँव में कुम्हार जाति के लोग आबाद है, नारायणपुर के कुम्हारपारा में, ग्राम एड़का, तारागाँव, बावड़ी, आदि गाँवों में ये लोग निवासरत हैं। इस जाति के लोग प्राय: उन स्थानों में निवास करते हैं, जहाँ हण्डी बनाने की मिट्टी आसानी से उपलब्ध होती है। जिससे ये मिट्टी के बर्तन आदि बनाकर आस-पास के हाट-बाजार में बेंचकर

अपना जीवनयापन करते हैं।

ऐसा ही एक गाँव नारायणपुर के उत्तर-पूर्व के मध्य १० कि. मी. पर एड़का स्थित हैं, जहाँ आज से दस वर्ष पूर्व तक मृदा शिल्पी देवनाथ पाण्डे निवास करते थे। जिनकी मृत्यु १० वर्ष पहले १०५ वर्ष की दीर्घ आयु में हो गई। देवनाथ मृदा शिल्प के बेजोड़ शिल्पी थे, इनकी बनाई गई श्रृगांरित हाथी के कारण इस ग्राम एड़का को देश ही नही विदेशों में भी जाना जाता है। अपने पारम्परिक पेशे हटकर इनके द्वारा श्रृगांरित हाथी अपनी कल्पना से बनाई गई, जिसे पहले इस क्षेत्र में निवासरत आदिवासी समाज अपने देवगुड़ी (मंदिर) में बड़ी श्रद्धा से विराजित करते रहे, जो बाद में लोगों की सिर चढ़कर ड्राइंग रूम की शोभा बनी। देवनाथ अपने पारम्परिक पेशे को इस कदर आत्मसात किये हुये थे कि उनके द्वारा बनाये गये मिट्‌टी के बर्तन हाथों हाथ बिक जाया करते थे और बचे हुये समय में वे श्रृगांरित हाथी बनाया करते, यह काम बड़ी नफासत और मेहनत का होता था। इसे बनाने में दो दिन लगते थें। पहले जिस गाँव में जातरा या देव गुड़ी में हाथी की स्थापना की जानी होती थी, उस गाँव के लोग रसोई (चाँवल, दाल) लेकर आते और देव काम हेतू हाथी की मांग करते, उन्हे कम कीमत पर हाथी देने की परम्परा थी। इन्ही देव गुड़ी से श्रृगांरित हाथी का प्रचार-प्रसार हुआ और इसकी ख्याति देश-विदेश तक फैल गई।

अपने जीवनकाल में देवनाथ जी बड़े गर्व से बताया करते थे कि उन्हे हाथी बनना उनके ससुर जी रतनसिंह पाण्डे ने सिखाया था। उनका जन्म ग्राम एड़का में ही आज से लगभग १२५ साल पहले हुआ था (यह मात्र अनुमान है, क्योंकि उनकी मृत्यु १०५ वर्ष की उम्र में सन् २००५ ई० में हुई थी) उस समय नारायणपुर सघन वन आच्छादित क्षेत्र था, आवागमन का कोई साधन भी नही था। प्राथमिक शिक्षा के लिये पैदल नारायणपुर आना पड़ता था। उनके अध्ययन के दौरान घर में किसी बात को लेकर वाद विवाद हुआ और वे १०-१२ साल की उम्र में घर छोड़कर बनियागाँव (धनोरा) तहसील केशकाल जिला कांकेर अपने मामा के घर चले गये। उनके मामा को भी एक मजबूत हाथ की जरूरत थी, उन्होने देवनाथ को अपने पास रख लिया। उनके मामा ने उन्हें खेती बाड़ी से लेकर अपने पारम्परिक व्यवसाय के सारे गुर सिखाये। उस समय रतनसिंह एक मात्र कुम्हार हुआ करते थे जो आदिवासी

समाज के देव काम के लिये हाथी और घोड़ा बनाया करते थे, उन्होने हाथी बनाने की कला देवनाथ को दिया और वचन लिया की देव काम के लिये ज्यादा दाम नही लेना। देवनाथ के मामा ने अपने पारम्परिक व्यवसाय के साथ ही अपनी लड़की का विवाह उनके साथ कर दिया, इस प्रकार देवनथ बड़े लगन और मेहनत से अपने पारम्परिक व्यवसाय और खेती बाड़ी का काम करने लगे।

देवनाथ जी का वैवाहिक जीवन सुखपूर्वक बीत रहा था। यह समय ज्यादा दिन नही रहा, अचानक बीमारी में उनकी धर्म पत्नी का स्वर्गवास हो गया और देवनाथ अकेले हो गये थे। इस विपरित परिस्थिति से वे काफी विचलित हो गये थे तब उन्हे उनके माँ-बाप ने एड़का नारायणपुर लाकर पुन: विवाह करवा दिया। अब देवनाथ यहाँ के होकर रह गये। उन्होने अपना पुश्तैनी काम और खेती-बाड़ी का काम अपना लिया, परन्तु उनके मन में एक इच्छा थी वह अपने पारम्परिक व्यवसाय से कुछ अलग करे, तब उनके द्वारा पहली बार हाथी बनाया गया। यह हाथी दूसरे हाथियों से अलग था, जो एक ही बार में ग्रामीण जनता को पसन्द आया। इसके बाद प्रारंभ हुआ देवनाथ के बनाये हाथियों का देव गुड़ी में विराजित करने की। यहाँ से इनके द्वारा बनाये हाथियों का प्रचार-प्रसार हुआ और देव गुड़ी से अलग देवनाथ की बनाई हाथी लोगों के घरों को सजाने लगा। इन हाथियों को लोग अपने मेहमान, राज नेता और अधिकारियों को तोहफे में देने लगे। इससे देवनाथ द्वारा बनाया गया हाथी देश-विदेश तक जाने लगा, ललित कला अकेदमी नई दिल्ली, बम्बई जैसे प्रसिद्ध आर्ट गेलरियों की आज भी शोभा बनी हुई है।

देवनाथ के बड़े पुत्र बताते हैं कि मेरे पिता बहुत ही शान्त स्वभाव के थे, वे अपने काम से संतुष्ट थे। उन्हे किसी से किसी भी बात की कोई शिकायत नही थी। मगर हमे इस बात का दुख: है कि इतने अच्छे कलाकार होने के बाद भी उन्हे कोई पुरस्कार नही मिला। पारम्परिक व्यवसाय से अलग कुछ करने की लगन ने आज इस कला को उन्होंने बहुत आगे बढ़ाया। उन्होने अपने गाँव के लड़कों को भी हाथी बनना सिखाया। आज बहुत से लोग इस कला को अपना पेशा बनाकर काम कर रहे हैं। यह कार्य समय खाऊ है, एक जोड़ी हाथी बनाने में दो दिन लग जाता है। पहले सब भाग को चाक से बनाने के बाद उनका

जोड़ लिया जाता है, फिर सूखने के लिये रखतें है। श्रृगांरित हाथी को छाँव में सूखाया जाता है, सूखने के बाद पकाने के लिये आवा में उसे उस स्थान पर रखा जाता है, जहाँ वह धुएँ से काला न हो। इतनी प्रक्रिया के बाद तैयार होता है श्रृगांरित हाथी, यह बड़ा धैर्य का काम है। देवनाथ अपने गाँव के लड़कों को हाथी बनाते देख बहुत खुश होते थे।

आज देवनाथ के विरासत को उनका बड़ा पुत्र बहादुर नाग ने सम्हाल लिया है, वे अपने सरनेम नाग गोत्रीय होने के कारण लिखते है। उनके द्वारा बनाया गया हाथी देवनाथ की हाथी का प्रतिरूप लग रहा था। वे बताते है कि मेरे पिता के समय प्रशिक्षण का काम जनपद पंचायत के द्वारा चलाया जाता था, अब यही काम जिला पंचायत कर रहा है। मुझे अभी छः माह का प्रशिक्षण देने का काम मिला है। उनसे बात करने के दौरान उनके मुख मण्डल पर पीड़ा साफ झलक रही थी कि १०५ वर्ष के जीवन काल में कोई भी पारखी देवनाथ पाण्डे के कला का मूल्याकंन नही किया।

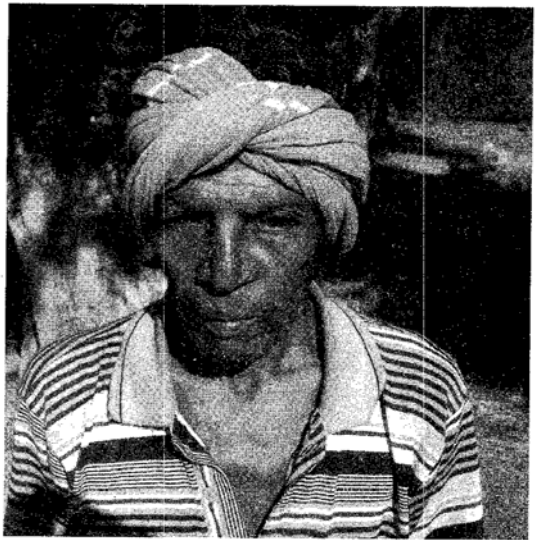

बेलगुर मण्डावी : भित्ति आर्ट

अबूझमाड नारायणपुर का यह क्षेत्र प्राचीन समय से ही कलाकारों के लिये जाना जाता रहा रहा है। आदिम संस्कृति का जानने उसका अध्ययन करने के लिये विदेश से लोग आते रहे है। यहाँ के आदिवासियों के रहन-सहन, भाषा-बोली, तीज-त्यौहार आदि अन्य लोगों के लिये सदैव से कौतुहल का विषय रहा है और इन सबका केन्द्र घोटुल हुआ करता था। घोटुल को आदिवासी समाज के सामुदायिक जीवन जीने की कला सिखाने वाली पाठशाला कहा जाता है और लगातार आदिवासियों के जीवन में झांकने के लिये देश-विदेश से विद्धान, कला पारखियों का आना जाना होता रहा है। इन लोगों ने आदिवासियों की कला को देखा, परखा, पसन्द किया उसके विषय में अखबारों में लिखा जिससे उसका प्रचार-प्रसार हुआ और आम लोग इनके विषय में जानने लगे। ऐसे ही कलाकारों को जानेगें जिन्होने अपनी कला से इस अबूझमाड़ क्षेत्र का नाम यश, कीर्ति देश ही नही विदेशों में भी रोशन किया है।

कला के क्षेत्र में एक जाना पहचान नाम बेलगुर का है, अबूझमाड़ के एक मात्र शहर नारायणपुर से दक्षिण ३ कि.मी. पूर्व में स्थित ग्राम गढ़बेंगाल में बेलगुर निवास करता है। यह गाँव पहले से ही कला के कारण ख्यातिनाम है,

यही स्वीडन के लोगों ने चेन्दरू के उपर फिल्म बनाई है। आदिवासियों के जीवन के पूर्व अध्ययनकर्ता वेरियर एल्विन (मुरिया और उनका घोटुल) का यह पसन्दीदा गाँव रहा। आज से ५५ वर्ष पूर्व जन्मे बेलगुर भी आम आदिवासी नवयुवकों की तरह घोटुल का सदस्य रहे, जब उसने पहली बार दीवाल पर चित्र बनाया था। तब उन्हे भी नही मालूम था कि उसके १५ साल की उम्र में बनाये गये चित्र उसे एक ख्याति नाम चित्रकार बना देगा और उसे भित्ति आर्ट के कुशल चितेरे के रूप में जाना जायेगा।

बेलगुर बताते हैं कि वह भी आदिवासी युवक-युवतियों की तरह ८-१० वर्ष की उम्र में घोटुल जाने लगे थे,उसे भी अन्य लोगों की तरह श्रृगांर का शौक था। एक बार उसने बालों में खोचने वाला पनिया (ककुआ) बनया यह प्राय: लकड़ी का बनाया जाता है। उसके बनाये गये पनिया को लड़कियों ने इतना पसन्द किया कि सब उसके बनाये पनिया से ही श्रृगांर करना चाहती थीं। बेलगुर भी जिसके लिये पनिया बनाता उसे अपने लिये तलाकासरा (मनिहारी मोती का माला) बनाने के लिये कहता और वे सहर्ष बना कर देती थीं। पनिया बनाते बनाते जब वह थक जाते थे, तो दीवार में पालतु पशुओं का चित्र बनाते थे, जिसे लोग उसके साथी बहुत पसन्द करते थे। पहले उसने अपने घर के दीवार में चित्र बनाया फिर उसे घोटुल के दीवारों पर चित्र बनाने को कहा गया, बाद में गाँव के बड़े लोगों ने देव गुड़ी में उससे चित्र बनवाया। इस तरह पनिया बनने से प्रारंभ हुआ सफर चित्र बनाने के साथ जारी रहा।

कहतें हैं न कि कला को पारखी निगाहों की आवश्यकता होती है, बेलगुर की कला के लिये पारखी निगाहे, घोटुल में लोक नृत्य देखने भारत भवन भोपाल के स्वामी नाथन और कोण्डागाँव के विश्व प्रसिद्ध वेल मेटल शिल्पी स्व.जयदेव बघेल जी आये । उन्होंने घोटुल में बने चित्रों को देखा उन्हे गुफा चित्र और शैल चित्र जैसे दिखने वाले उन चित्रों के बनाने वाले के विषय में पूछा, तब बेलगुर को उनसे मिलाया गया। उन्होंने उन चित्रों की सराहना की और बताया कि इसे भित्ति आर्ट कहते है। उन लोगों ने बेलगुर को भारत भवन भोपाल म.प्र. आने का निमंत्रण दिया और अपने गाँव के बाहर पहली बार चित्र बनाया। बेलगुर बताते है कि वह गाँव में पारम्परिक रंगों से चित्र बनाया करते थे, वे रंग ज्यादातर सेम के पत्ते को पीस कर बनाया जात था, जो

हरा रंग होता था। कभी-कभी लाल रंग बनाने के लिये फरसा फूल (टेसू) का या लाली का तथा काला रंग के लिये पुराने सेल का तोड़कर प्रयोग में लाता रहा। भारत भवन में पहली बार उसे वाटर कलर और ब्रस से साक्षात्कार हुआ, नही तो उसने तो दातौन की कूची से ही चित्र बनाने के लिये प्रयोग किया था।

इसके बाद बेलगुर मण्डावी ने कभी पीछे मुड़कर नही देखा, उसने दिल्ली, बम्बई, कलकता, मद्रास तामिलनाडु आदि कई बड़े शहरों के आर्ट गेलरियों में अपने चित्र बनाये और अपनी कला का प्रदर्शन किया। वे बताते हैं कि उन्हे चित्र बनाना किसी ने नही सिखया वे स्वयं अपनी कल्पना से चित्र बनाते है। आज से २५ साल पहले उन्हे भारत भवन भोपाल की ओर से चक्रधर फेलोशीप पुरस्कार मिला था और एक हजार रू. प्रति माह मिलता था। उसके चार पाँच साल बाद शिखर सम्मान मिला था २०१२ में आये भयांनक बाढ़ में सब मेडल और कागज पत्र जिसे सम्हाल कर रखा था सब बह गये। वे बताते है कि मुझे भी एक बार विदेश जाने का मौका मिला था, परन्तु बीमार होने के कारण नही जा सका, मगर मै खुश हूँ। गढ़बेंगाल नदी के किनारे अपने पारम्परिक निवास में बैठे बेलगुर ने अपना यह घर नही छोड़ा आज भी वे यहीं रह रहे है। बाढ़ आने के बाद सब अपने शासन द्वारा मिले भूखण्ड में घर बनाकर रहने लगे परन्तु बेलगुर कहते हैं मै यहीं रहूँगा। ये जगह ये दीवार तो मेरी पहचान है।

बेलगुर मण्डावी साक्षात्कार दिनाँक १२-०२- २०१६

पण्डी राम मण्डावी : काष्ट शिल्प

आदिवासी पारम्परिक कला को गढ़बेंगाल के पण्डी राम मण्डावी ने एक अलग पहचान दी और पारम्परिक कला को देश-विदेश में ख्याति दिलवाई। नारायणपुर अबुझमाड़ का यह गाँव गढ़बेंगाल पहले से ही कला का केन्द्र रहा है। नारायणपुर से तीन कि.मी. की दूरी पर स्थित होने के कारण यहाँ कला प्रेमियों का लगातार आना जाना होता ही रहता था। श्रृगांर के सामान सबसे अधिक इसी गाँव के लोगों द्वारा बनाया जाता था, जिसे लोक नृत्य देखने आने वाले लोग खरीदकर ले जाते थे। पण्डी राम बताते हैं कि उसके द्वारा बनाये गये डण्डे के आकार की वाँसुरी, उसको बजाने का तरीका लोग खूब पसन्द करते है और खरीद कर ले जाते है। वाँसुरी को गोंडी बोली में उसुड़ कहा जाता है। इसे जिस प्रकार पहलवान लाठी भांजते हैं, उसी प्रकार सिर के उपर से घुमाकर बजाया जाता है। घुमाते समय बाँसुरी के छिद्र को हवा की दिशा में रखा जाता है। जिससे उसमें से बहुत ही मधुर ध्वनि निकलती है, जो लोगों को बहुत भाती है।

पण्डी राम मण्डवी बताते हैं कि उस समय जब गाँव के लोगों के पास रोशनी करने के लिसे टार्च नही होती थी, तब अन्धेरे में चलने के लिये

आगी लूठा (जलती हुई लकड़ी) लेकर एक व्यक्ति सामने चलता था और पीछे चलने वाला उसुड़ घुमाते हुये चलता था। उसुड़ की आवाज से कीड़े-मकोड़े, साँप-बिच्छू पास नही आते थे। हम इसे अपनी रात में सुरक्षा के लिये बजाते थे, परन्तु यह लोगों के लिये कुछ नया वाद्य हो गया और इसे बहुत पसन्द किया जाने लगा। पण्डीराम के पिता भी कलाकार थे वे मुँह से बजाने वाली बाँसुरी बजाया करते थे। उन्होने स्वीडन फिल्म में चेन्दरू के साथ काम किया है। फिल्म में आदिवासी संगीत में उनकी बजाई बाँसुरी की धुन है। वे देव जातरा में भी बाँसुरी बजाया करते थे, तब देवता उन्हे खेलने के लिये अपना ताल बजाने के लिय कहते थे। पण्डीराम कहतें हैं कि उनके पिता एक बहुत अच्छे कारीगर थे, वे लकड़ी में चित्र उकेरा करते थे। घोटुल के दरवाजे, चौखट पर खोदाई कर जंगली जानवर आदि के चित्रों की खोदाई करते थे जिसमें मै भी उनका साथ देता था। मेरे पिता मन्देर बेलगुर को रविन्द्र भवन भोपाल के स्वामी नाथन भोपाल लेकर गये साथ में मैं भी गया, वहाँ बेलगुर ने दीवाल में चित्र बनाया और हम दरवाजा चौखट में खोदाई किये। यहाँ से कला का शुरू हुआ सफर आज तक जारी है।

पण्डीराम बताते हैं वह काष्ठ कला का काम करते थे, जो उनके पिता ने उन्हे सिखाया था। उन्होने अपने बचपन में अपने घर के सामने अपने पिता के मित्र मांहगूराम जिन्हें उईका डोकरा कहते थे को घुमाकर बजाने वाली बाँसुरी बजाते देखा था। उसी समय से उसके मन में वैसी बाँसुरी बनाने की इच्छा थी और उसने बनाया। इसे बनाना उसे किसी ने नही सिखाया पण्डीरम ने खुद से ही यह बाँसुरी बनाया। हर शाम उसे लेकर बजाते हुये घोटुल जाया करते थे। इसी बीच उन्हे आदिवासी लोक कला परिषद के कार्यक्रम जिला धार म.प्र. में भाग लेने का निमंत्रण प्राप्त हुआ। पण्डीराम ने काष्ठ शिल्प के साथ १०-१५ बाँसुरी भी ले गये। उस कार्यक्रम में भारत के सभी प्रान्त के आदिवासी अपनी पारम्परिक कला साथ लेकर आये थे। तीन दिनों तक चलने वाले इस मेले में किसी की भी कलाकृति नही बिकी। यही से प्रगति मैदान दिल्ली की प्रदर्शनी में जाना हुआ, यहाँ उसकी सभी बाँसुरी अच्छे दाम में बिक गई। यह पण्डीराम के लिये उत्साहवर्धक रहा उसके आदिवासी वेशभूषा भोलापन कला लोगों ने बहुत पसन्द किया । इसके बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़ कर नही देखा। वे आदिवासी कला से प्यार करते रहे और कला उनको सम्मान

दिलाती रही। उनकी काष्ठ कला और बाँसुरी की मांग बढ़ती गई और वे अपने ही घर में एक कार्यशाला की स्थापना की। गाँव के अपने लोगों को जो थोड़ा बहुत भी काम जानते थे, उनसे अपने निर्देशन में काष्ठ कलाकृति और बाँसुरी बनाकर बिक्री करने लगे। इससे एक फायदा यह हुआ कि लोग आते और पण्डीराम की कलाकृति एक साथ देखकर खरीददारी करते।

पण्डीराम की कलाकृति भारत में ही नहीं विदेशों में भी सम्मान पाने लगी, उन्हे कई बार विदेश जाने का मौका मिला। दो बार इटली जाकर अपने कला का प्रदर्शन किया, मास्को, हालेण्ड भी जाने का अवसर प्राप्त हुआ। वे जापान के टोक्यो शहर में पहली बार अपने पिता के साथ गये । "गढ़ बेंगाल जैसी छोटी जगह से विदेशों का सफर उन्होंने किस प्रकार तय किया" पूछने पर उन्होने बताया कि आदिवासी विकास परिषद जिला-धार के प्रोग्राम से जितेन्द्र जैन ने प्रगति मैदान के कार्यक्रम में उन्हें दूरदर्शन के सबसे लोकप्रिय प्रोग्राम सुरभि के प्रस्तूतकर्ता सिद्धार्थ कॉक से उनकी मुलाकात करवाई, उन्होंने उसके बाँसुरी वादन का फिल्माकंन कर प्रसारण किया जिससे उसकी लोक प्रियता बढ़ी और लोग जानने लगे।" इसके बाद लोग पण्डीराम से कुछ खरीदने नही मिलने आते थे। जिन स्वामीनाथन ने पण्डीराम को कला जगत में प्रस्तूत किया उसी स्वामीनाथन के नाम उन्हे सन् २०११ में ललित कला अकादेमी केरल द्वारा स्वामीनाथन पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

देश विदेश घुमने इतना बड़ा सम्मान पाने के बाद भी पण्डीराम मण्डवी के जीवन में कोई खास बदलाव नही आया। वे आज भी गढ़बेंगाल के गुडरी पारा के अन्तिम छोर में अपने पुश्तैनी मकान में अपने कुछ गाँव के लड़कों के साथ मिलकर मुक्तागंन छ० ग० में बने घोटुल के माडल के लिये घोड़ोन्दी (गेड़ी) बनाने में जुटे हुये है।

पण्डीराम मण्डावी साक्षात्कार दिनाँक १२-०२-२०१६

अबुझमाड और माओवाद

अबूझमाड सघन वन से आच्छादित भू-भाग है। यही करण है कि माओवादी इसे शरण स्थली के रूप में पसन्द करते हैं। इस भू भाग में इनका आना लगभग ८० के दशक के शुरू आत में हुआ। यहाँ के निवासियों के लिये ये किसी अजूबा से कम नहीं थे। इन्हे नाम दिया गया गुफा पलटुन, न तो ये हल्बी का शब्द है न ही गोण्डी का, न ही गुफा पलटन का हिन्दी में कोई विशेष अर्थ ही बनता है। इसका प्रचलन भी किसी क्षेत्र विशेष में नहीं है, न ही किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह के लिये प्रयुक्त ही होता है। यह शब्द हमारी उस प्रवृति को दर्शाता है, जिसमें हम किसी व्यक्ति या स्थान को जानने पहचानने के लिये उसको नाम दे देते हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति समूह या घटना अचानक ही सामने आ जाये तब एकाएक जेहन में एक नाम कौंध जाता है। यह गुफा पलटन भी एक ऐसा ही शब्द है। जो बस्तर के भोले-भाले आदिवासियों के बीच जब नक्सली अचानक आ गये होगें उनके कल्पना से जुदा, पहनावा, रौब, हथियार सब अलग उनको कोई न कोई नाम तो देना ही था, तो यह नामाकरण किया गया होगा। गुफा से आशय छुपने के स्थान से रहा होगा और पलटन से सैनिक, मतलब छुपी हुई सेना, गुफा पलटन का अर्थ हिन्दी, हल्बी, गोण्डी भाषी लोगों को असानी से समझ में आ गया होगा। गुफा पलटन का प्रयोग बस्तर के लोग बड़े गर्व से १९१० में हुये भूमकाल के समय जल, जंगल, जमीन के लिये संघर्षरत अपने आदिवासी भाइयों के लिये करते रहे हैं।

यह शब्द जब मेरे सामने आया तब मैं भी अवाक रह गया, हुआ यह कि अबूझमाड़ के पश्चिम क्षेत्र कोहकामेटा के रानी बेड़ा गॉव में कुछ परिवार दण्डामी माड़ियों का बसा हुआ है। ये लोग लोहण्डीगुड़ा के मारडुम से विस्थापित लोग हैं। जो यहॉ आकर धान, कोदो, कोसरा, और दलहन की खेती कर अपना जीवनयापन करते हैं। इन्हीं के रिस्तेदार भी आ कर जंगल साफ करके रहने के लिये झोपड़ा बनाये, यही बात वन विभाग के कर्मचारियों को नागवार लगी। इन्होंने झोपड़ा हटाने को कहने के बाद भी जब वे बात नहीं माने तब झोपड़ियों मे आग लगा दिया। जिसके विरोध में नारायणपुर आकर बहुत लिखा पढ़ी कर

शिकायत की गई, परिणाम कुछ हासिल नहीं हुआ। कहीं से कोई सुनवाई नहीं होने पर उन्होंने कहा कि अब हम गुफा पलटन के पास जाकर अपनी फरियाद करेगें यही इस शब्द से मेरा साक्षात्कार हुआ, जिसका अर्थ इनके जाने के बाद बताया गया कि वे अपनी बात लेकर नक्सलियों के पास जाने वाले हैं और गये भी। परिणाम सामने था, नक्सलियों ने वन कर्मचारियों की पिटाई कर उन आदिवासियों का विश्वास जीत लिया।

यह समय नक्सली आमद का शुरूआती दौर था, अस्सी का दशक समाप्ति पर था और नब्बे का दशक शुरू हो रहा था। इस समय नक्सलियों ने नारायणपुर क्षेत्र में दस्तक दिया, तब लोग इन्हे जानते नही थे। इस समय नक्सली दक्षिण बस्तर में सक्रीय थे, इस क्षेत्र के लोग इन्हें या तो किताबों में पढ़ते रहें हैं या कहानी जैसे सुनतें रहे हैं। इन्हें जानकार लोग महिमा मंडित कर प्रचारित करते रहे, कोई कहता कि ये लोग गलती करने पर सजा देते हैं। असमानता की खाई को पाटने आये हैं। नक्सलियों को राबिन हुड की संज्ञा दी जाने लगी, अमीरों से छीन कर गरीबों में बांटने वालों के रूप में प्रचारित किया जाने लगा। सब लोग मिलने के लिये लालायित रहते, यदि कोई मिल लेता तो उस दिन का वह हीरो होता, वह बताता कि उससे वे किस तरह व्यवहार किया बैठने को बोले, विस्तार से क्षेत्र को जानने का प्रयास किया वगैरह,वगैरह। इस क्षेत्र के लोग परिणाम से अनजान गाहे-बगाहे हर समय नक्सलियों की मदद करने को तत्पर रहते और उनका भी लक्ष्य जनता से सरोकार रखने वाले विभाग ही होता था। इस दौर में वन विभाग भरपूर कार्य कर रहा था, सम्पूर्ण काम का वन विभाग आधा से अधिक कार्य करता था। नक्सलियों ने उस समय की निर्धारित मजदूरी दिलाने से अपने काम की शुरूआत की तब लोग इन्हे अपना हित संरक्षक मानने लगे।

ऐसा नहीं था कि नक्सलियों के लिये यह क्षेत्र इतना आसान था। एक ऐसा भी समाज था जो इनके क्रिया-कलाप को बहुत ही निर्लिप्त भाव से देख रहा था। उसकी खामोशी का नव आगत नक्सली कोई अन्दाजा नहीं लगा पा रहे थे, इस क्षेत्र का आदिवासी समाज एकाएक उन्हें स्वीकारने को तैयार नहीं था, यही नक्सलियों के मार्ग पर सबसे बड़ी बाधा थी। आदिवासी समाज अपने जीवन में किसी भी प्रकार की दखलअन्दाजी बरदास्त नहीं करता, इसलिये वह इन पर

भी विश्वास नहीं कर रहा था। नक्सली अपने भाषणों में अपने व्यवहार से लगातार आदिवासी हितैषी होने का दावा करते रहे पर आदिवासी समाज उन पर विश्वास नहीं किया। इसके बाद नक्सलियों ने अपनी रणनीति में परिवर्तन किया और उन गॉवों की ओर अपना रूख किया जहॉ आदिवासी समाज के साथ अन्य समाज के लोग निवासरत थे। इसका लाभ भी उन्हें मिलने लगा, अन्य समाज के लोग जो गैर आदिवासी होने से शासकीय योजनाओं में अपनी उपेक्षा का दंश झेल रहे थे, वे लोग नक्सलियों की ओर आकर्षित होते चले गये और यहीं से इस शब्द गुफा पलटन के मायने बदलने लगा। अब नक्सलियों के साथ लोग अपने बच्चों को भी देख रहे थे। जिन्हे नक्सलियों ने नाम दिया था संघम सदस्य और अपने को दादा व महिला नक्सलियों को दीदी कहते थे।

उत्तर बस्तर में यह समय नक्सलियों के लिये स्वर्ण युग था, इस क्षेत्र में पुलिस बल कम था, यहॉ तक की थानों में पर्याप्त बल मौजूद नही था। अच्छी पुलिसींग नहीं होने से नक्सलियों को अपना संगठन खड़ा करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इस क्षेत्र में एक दल १३ नक्सलवादियों का आया था, इन्होने १३ दलम बना लिया और अपनी रीति-नीति का प्रचार प्रसार करने लगे। इस संमय तक ये लोग दूरदराज के क्षेत्र में सक्रीय थे और अपने खाने का पैसा भी गॉव के लोगों को देते थे। अभी तक इस क्षेत्र का सबसे बड़ा रहवासी आदिवासी समाज इनसे नहीं जुड़ा था, यह बात नक्सली लोग भी जानते थे। ये यह भी जानते थे कि जब तक आदिवासी उनके साथ नहीं आयेगा तब तक उनकी मुहीम पूरी नहीं होगी। नक्सलियों ने महसूस किया कि आदिवासी बाहुल्य गॉवों में एक सामाजिक संगठन घोटुल के रूप में मौजूद है, जो युवक-युवतियों पर अपना अच्छा खासा पकड़ रखता है और इनके उपर घोटुल का कानून चलता है। सब एक-दूसरे के कार्य व्यवहार को नियंत्रित करतें हैं। नक्सलियों को इस क्षेत्र में पैर पसारने के लिये इस संगठन को प्रभावित करना आवश्यक था।

इसके लिये नक्सलियों ने घोटुल के क्रिया-कलापों का जानना समझना प्रारम्भ किया, आदिवासी युवक-युवतियों को नाच गाना पसंद था। नक्सली भी नाच गा कर अपने आचार-विचार का प्रचार करते थे और इनकी आवा-जाही

घोटुल में होने लगी। अच्छे गाने वाले लोगो को छांटकर उनकी अलग टोली बनाने लगें उन्हे जनवादी गीत सीखाने लगे। इन लड़के-लड़कियों को एक गॉव से दूसरे गॉव ले जाया जाने लगा घोटुल के बचे हुये लोगों को या पदाधिकारियों को यह बात खटकने लगी वे चाह कर भी इस क्रिया-कलाप को रोक नहीं पा रहे थे। इस समय तक भी वे नक्सलियों के साथ पूरी तरह से नहीं थे। इसे रोकने के लिये उन्होने ने गॉव के सियान लोगों से सलाह किया, किसी को कुछ सूझ नहीं रहा था, बाद में तय किया गया कि रात में लड़कियों का आना जाना घोटुल में बन्द किया जाये। इसका कड़ाई से पालन किया गया, नियम था कि लड़कियॉ तोड़ी की आवाज में घोटुल तो आयेगीं पर वहॉ रात रूकेगीं नहीं, अपनी उपस्थिति के लिये पान और दातुन रख कर अपने अपने घर चली जायेगीं तथा सुबह आकर यहीं पर दातुन करेगीं। यह व्यवस्था लड़के-लड़कियों को ठीक नहीं लग रहा था पर यह निर्णय पूरे गॉव का होने से उसे मानना उनकी मजबूरी थी। इधर घोटुल में नक्सली आमद बढ़ गई थी, लड़के भी उनके ओर आकर्षित होने लगे थे। पॉच-पॉच कि.मी. तक के लोगों को बैठकों में बुलाया जाने लगा था।

नक्सलियों ने अपना प्रभाव जमाने के लिये हिंसा करना शुरू कर दिया था, उन्होंने उन लोगों को अपना निशाना बनाया, जिनका गॉव और उसके आस-पास अच्छा खासा प्रभाव था। अब लोग इनसे डरने लगे थे, पहले नक्सलियों से जुड़ कर हर कोई काम करना चाहता था, परन्तु जबसे ये जंगल और गॉव में होने वाले कामों को रोकना शुरू किया तबसे इनके प्रति लोगों का मोह भंग होना प्रारम्भ हुआ। न चाहते हुये भी लोग डर के कारण इनसे जुड़े रहे। लड़के-लड़कियॉ महसूस करने लगे थे कि जिन गॉवों में नक्सलियों का प्रभाव नहीं था वहॉ विकास के काम हो रहे थे, परन्तु उनके गॉवों में काम नहीं हो रहा था। उन्हे इस बात का एहसास होने लगा था कि नक्सलियों के डर के कारण शासकीय कर्मचारी गॉवों में आना बन्द कर दिये हैं। उनके गॉवों में शासकीय योजनाओं का लाभ मिलना बन्द हो गया है। जनप्रतिनिधी और पंचायत के चुनें हुये लोगों को काम करने में कठिनाई हो रही थी, गॉव के बुजुर्ग भी महसूस कर रहे थे कि घोटुल में लड़के नहीं आ रहे थे। यह नब्बे का शुरूआती दौर था, वन विभाग के सारे काम बन्द हो गये थे पी.डब्ल्यू.डी, ने अपना हाथ खींच लिया था, सब काम ढप्प हो गये थे। अब गेन्द शासन के

पाले में थी, उसने इस क्षेत्र में अर्ध सुरक्षा बलों की तैनाती करना प्रारम्भ कर दिया और शुरू हुआ एक अघोषित छद्म युद्ध।

यह समय बस्तर और यहॉ के आदिवासियों के लिये संक्रमण काल था, आदिवासी या तो पुलिस के हाथों या फिर नक्सलियों के हाथों मारे जा रहे थे। गॉव का नवयुवक, नक्सलियों के साथ था या फिर पुलिस के साथ, या गॉव से पलायन कर गया था। आधे से ज्यादा युवा नक्सली सहयोगी होने के नाम पर जेल में बन्द थे। आदिवासी समाज समझ नही पा रहा था कि इस स्थिति से कैसे निकला जाये, दोनो ओर से उसके ही लोग मर रहे थे। आदिवासी समाज जहॉ एक ओर घोटुल बन्द होने का खामियाजा अपने बच्चों के उच्छश्रृंखल होने के रूप में भुगत रहा था, वहीं दूसरी ओर दोनों तरफ से अपनों के मरने का दुख: था, पलायन का दंश था और बच्चों के जेल में होने की पीड़ा थी। सभी प्रकार के सामाजिक कार्य बन्द हो गये थे पुरूष मुश्किल से देव काम कर रहे थे महिलाओं के उपर घर का सारी जवाबदारी थी। जो नक्सलवाद खुजली के मिठ्ठे एहसास के साथ प्रारंभ हुआ था, वह घाव बनकर नासूर का रूप ले लिया था

आज बस्तर के लोगों का नक्सलवाद से मोह भंग हो चुका है, जो लोग उनसे जुड़े हुये थे वे उनके साथ रहने से अच्छा जेल में रहना पसंद कर आत्म समर्पण कर रहे है। पुलिस के अधिकारी भी नक्सलवाद से मोह भंग हुये युवाओं को अपनी ओर मिलान के लियं तरह-तरह के जतन कर रहे है। यहॉ फिर एक बार गुफा पलटन का मायने बदल जाता है। जो लोग नक्सलियों के साथ रहकर पुलिस के पास आ रहे है वे अब पुलिस मुखबीर कहला रहे हैं, कुछ दिन के बाद उन्हे गोपनीय सैनिक की उपाधि दे दी जाती है। यहॉ गुफा पलटन या गोपनीय सैनिक का मतलब सूचना देने वाले से है, पुलिस की भाषा में मुखबीर। जो पुलिस का मुखबीर बनता उनके परिवार को नक्सली गॉव से भगा देते है, देखते ही देखते इन परिवारों का एक पूरी बस्ती नारायणपुर में बन गई और इसको नाम दिया गया मुखबीर पारा। यह कैसी विडम्बना थी कि प्रकृति की छॉव में निशंक विचरने वाला आदिवासी काल कोठरी जैसे छोटी-छोटी खोली में जीवन-यापन करने को मजबूर था। बस्तर का आत्मनिर्भर आदिम समाज जो अन्य समाज से कपड़ा तेल नमक के लिये

जुड़ता था, वह आज उसकी चाकरी कर जी रहा है। दर-दर की ठोकरें खा रहा है, यह स्थिति नारायणपुर में सरे आम देखी जा सकती है।

आज बस्तर का आदिवासी अभिशप्त जीवन जीने को मजबूर है, जानवरों की तरह पुलिस और नक्सलियों से मार खा रहा है। अपनी छोटी-छोटी जरूरतों के लिये दूसरों का मुँह ताक रहा है और जेल में बन्द अपने नव युवकों का बाट जोह रहा है। यह शब्द गुफा पलटन जिसे अपने साथियों के जल जंगल जमीन क लिये संधर्ष गाथा का पर्याय मानने वाला आदिम समाज उसके पल-पल बदलते मायने को देख रहा है और हर बार की तरह अपने आपको ठगा महसूस कर रहा है। यह उसकी नियति तो नहीं?.....

आदिवासी समाज और चुनौतिया

आदिवासियों की अपनी अनूठी संस्कृति है, जो बस्तर की जनजाति को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पहचान दिलाती है। इस बात को आदिवासी समाज भी बखूबी जानता है। उनके पूर्वजों ने आदिकाल से जिसे सहेज कर रखा और उसी रूप में उसे सौंपा था। उसे सम्हाल कर रखना वर्तमान समय में आदिवासी समाज के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है। आदिकाल में उनके पूर्वज विभिन्न आध्यात्मिक संस्कृति एवं भिन्न-भिन्न राजघरानों के साथ और प्रकृति के साथ सामंजस्य बिठा कर जीवन-यापन करते हुये भी इस संस्कृति को बचाये रखा है और उसी तरह आने वाली पीढ़ी को हस्तगत किया है। जो आज की पीढ़ी के लिये अनुकरणीय है। इसे बचाये रखना उनकी जवाबदारी बनती है। समाज प्रमुख समाज के पदाधिकारी इसे बचाने के लिये चिन्तन-मनन कर बड़े ही ईमानदारी से लगे हुये हैं। उनके अन्दर इसे बचाने की अकुलाहट साफ परिलक्षित होती है। यह सुखद है।

इस सस्कृति को सबसे ज्यादा खतरा इनके समाज के उन लोगों से है, जो थोड़ा बहुत लिख पढ़ लेने के बाद बेरोजगार हैं और कुछ करना भी नहीं चाहते। जो लगातार बाहरी जीवन के सम्पर्क में रह कर बाहरी जीवन से प्रभावित होकर आदिवासी समाज को हीन दृष्टि से देखते हैं। उनकी ऐसी सोच है कि हमारे मान्यता और परम्परा के कारण हमारा समाज प्रगति नहीं कर रहा है। दूसरे समाज को आये कुछ दिन हुये हैं और उनके द्वारा घर गाड़ी सभी ले लिया है और हमारा समाज आज भी वैसा है। जैसा उसके पूर्वज थे। इसी सोच ने उनका स्वभाव को विद्रोही बना दिया हैं। इसका प्रमुख कारण वे आदिवासी समाज में प्रचलित शराब को मानते है। उस तबके का मानना है कि शराब आदिवासियों की संस्कृति से इस कदर जुड़ा है कि पूरे समाज को अन्दर ही अन्दर खोखला कर रहा है। वे अपने बुजुर्गों के सामने कितने ही तरीके अपनी बात रखतें हैं। ऐसे सोच रखने वालों की बात आदिम समाज अनसुनी कर देता है और अपने जीवन मे मगन रहता है।

एक ऐसी घटना का यहां जिक्र आवश्यक हो जाता है। जो पच्चीस साल पहले घटी थी, इन कम पढ़े लिखे लड़को की तरह सोच रखने वाले अधिकारियों का नारायणपुर आगमन हुआ वे अधिकारी उन तरह के लड़को का एक समूह बनाया और उन्हे प्रशासनिक संरक्षण देना प्रारंभ किया। इसका नतीजा यह हुआ की यह समूह प्रत्येक इतवार नारायणपुर में भरनें वाले साप्ताहिक बाजार में जाकर गाँव से लाये हुये लोगों के शराब, सल्फी, लान्दा के बर्तनों को तोड़ने लगे। इन्हे कोई रोकने-टोकने वाला नहीं था। क्योंकि इस समूह को पुलिस और प्रशासन का वरदहस्त प्राप्त था। कुछ दिन ऐसा ही चला, इस समूह का हौसला बढ़ता गया, ये लोग दूसरे बाजारों में भी जाने लगे निरंकुशता ने इन्हे अति करने पर प्रेरित किया। अब वे शराब, सल्फी, लान्दा के बर्तनों को तोड़ने से पहले उसे चख कर देखतें कि उसमें रखा पेय कैसा है?अच्छा द्रव्य को रख लेते और जो पसन्दीदा नहीं होता उसे तोड़ देते और अच्छा पेय से बाजार स्थल से कुछ दूरी पर उसे सभी मिलकर पीते। आदिवासियों को लगता यह तो अन्याय है।, आदिवासी समाज शान्ति प्रिय, सहनशील होता वह एक हद तक सहता है। उसके बाद क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य देता है।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि इस समूह के सभी लोग आदिवासी समाज से आते थे। जिन लोगों का नुकसान होता उन्हे समझ नहीं आ रहा था कि उनके बच्चे उनका नुकसान क्यों कर रहे हैं। हद तो तब हुई, जब एक रविवार को सबने शराब सल्फी का छक कर सेवन किया और गढ़बेंगाल, मुंजमेटा, टीमनार और मरकाबेड़ा के घोटुलों में जाकर बहुत उत्पात मचाया लड़कियों से अभद्रता की, लड़कों से मारपीट की, यही अति हो गई। पौ फटते ही इन सभी गाँवों में रात हुये घटना की चर्चा हुई, बड़े बुजुर्गों को बताया गया। तय यह हुआ कि प्रभावित गाँव के लोग भूमकाल (बैठक) बनायेगे और इन आतताइयों को बुला कर ये सब करने का कारण पूछा जायेगा। तयशुदा दिन बैठक में इन गाँवों के सैकड़ो लोगों ने भाग लिया। यह समूह भी आमंत्रित था। एक ही प्रश्न था ऐसा तुम लोग क्यों कर रहे हो और किसके कहने से कर रहे हो। इन लोगों द्वारा तरह-तरह के कुतर्क दिये गये जो आदिवासी समाज के कुछ समझ में नहीं आया और बात बिगड़ गई। इस समूह की घोटुल के लड़कों ने बेदम पीटाई की, कुछ मार खाकर वहीं पड़े रहे कुछ जान बचाकर भाग

गये। इसके बाद आज तक किसी समूह या व्यक्ति ने ऐसी हिम्मत नहीं दिखाई।

इस घटना का जिक्र यहां इसलिये आवश्यक था कि आदिवासी समाज अपने नियम, कानून और परम्परा से इस कदर जुड़कर जीवन जीने का आदी हो चुका है कि उससे वह चाह कर भी विलग नहीं हो पाता। तब यह मान लेना की इस संस्कृति को बाहर से कोई खतरा है बेमानी होगी। यह संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हस्तगत होती है। जैसे एक गाँव के किसी घर का कोई मुखिया का अवसान होता है, तब उस घर का लड़का चाहे वह छोटा ही क्यों न हो सब प्रकार के सामाजिक काम, देव काम में अपने घर के मुखिया की तरह अनिवार्य रूप से भाग लेता है। वह उन सब कार्यो को देखता, सुनता, समझता है। इस तरह वह अपने बुजुर्गों द्वारा किये गये काम को सीख कर अपनी पीढ़ी के साथ करता है। आदिवासी समाज के सामुदायिक जीवन में इस तरह की अनिवार्यता होती है। जिससे इनकी अपनी संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तगत होती चली आती है।

वर्तमान समय नारायणपुर के आदिवासी समाज के लिये मुश्किलों से भरा है और इसकी शुरूआत ८० के दशक से माओवादियों के आगमन के साथ हो चुका था। यह वो समय था जब आदिवासी प्रकृति के छाँव तले स्वच्छन्द विचरण करता था। अलमस्त जीवन अपने ढ़ंग से जीता था, उसे अपने जीवन में बाहरी दखल बिलकुल भी पसन्द नहीं था। एक बारगी तो वह इन माओवादियों को भी नजरअन्दाज कर दिया। इसलिये इन लोगों ने उन गाँवों की ओर रूख किया जहां मिश्रित जाति वर्ग के लोग निवासरत थे। आदिवासी गाँवों के उन चार चट्टुओं को अपने साथ मिलाया जिन्हें आदिवासी समाज गाँव का बेकार आदमी मानता था। इन लोगों ने माओवादियों को रास्ता दिखाया और पैर पसारने में मदद की गाँव के लोगों को मिटिंगों में बुलाना गाँव की सब बातें बतलाना इनका काम था। माओवादियों ने महसूस किया कि आदिवासी गाँवों में एक मजबूत सामाजिक संगठन मौजूद हैं घोटुल के रूप में जिसके रहते वे अपना संगठन नहीं बना सकते और उन्होंने यहाँ दखल देना प्रारंभ किया, फलस्वरूप घोटुल बन्द होने लगे और गाँव का सामाजिक ताना-बाना बिखरने लगा।

आज १०- १२ वर्षो से घोटुल बन्द है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव आदिवासी समाज पर पड़ा, उनके लड़के-लड़कियाँ या तो माओवादियों के साथ गये या तो पुलिस के साथ, आधे जेल में, बचे खुचे तटस्थ रह कर जीवन यापन कर रहे है। आदिवासी समाज का उनकी संस्कृति का दारोमदार इन्ही जवान कन्धों पर है। पुलिस और नक्सलियों की वर्तमान लड़ाई में जिस तरफ भी लोग मर रहे है, वे आदिवासी ही हैं। इस लड़ाई में आदिवासीयों का जीना दूभर हो गया है। इस क्षेत्र की तरक्की थम सी गई है। सब चल रहा है केवल सामाजिकता मर गई है। नारायणपुर में दूसरे बाहर के लोग लड़की देना नहीं चाहते, कहते हैं विधवा होने लड़की कौन देगा। इसी तरह कोई नारायणपुर में बरात लेकर आना नहीं चाहता, गरज है तो लड़के वाले जहाँ कहे वहाँ ले जाकर शादी करो। कुछ एक समाज में तो ४०-५० के लड़के कुवाँरे बैठे है। इस समाज के लोग अपने लड़कों के लिये लड़की जिन समाज के साथ उनका लेन-देन कभी नहीं चलता था, उस दूसरे समाज से ला रहे हैं।

अदिवासी समाज की दुश्वारी यहीं नही थमी, इनके सामाजिक बिखराव का परिणाम यह हुआ कि अन्य समस्याओं ने पैर फैलाना प्रारम्भ कर दिया। इनकी तरूणाई जो घोटुल के मर्यादा में बन्धी थी। वह निरंकुश हो गई वे किसी की बात नहीं सुनते अपने मन की करते ऐसे में बहुत वर्षो से एक धर्म विशेष के धर्म प्रचारकों को मौका मिला और वे गाँव-गाँव जाकर लड़के-लड़कियों को अपने धर्म में सम्मलित कराने लगे। ये वही लोग थे जो अपनी दुश्वारियों का हल इस धर्म में तलाश रहे थे। नये बने आदिवासी इतने कट्टरता से इस धर्म का पालन करने लगे कि अपनी देव परम्परा अपनी संस्कार सबको छोड़कर पूर्ण रूप से धर्म विशेष के बन गये । हर ईतवार प्रार्थना में भाग लेना, शादी व्याह इस धर्म के अनुसार, मृत्यु होने पर इस धर्म के कब्रस्थान में दफनाना, गाँव के देव काम एवं सामाजिक काम में सम्मलित नहीं होना, इन कार्यो के लिये तय चन्दा नही देना। इनके ऐसे व्यवहार से आदिवासी समाज के धार्मिक आस्था और विश्वास को गहरी चोट पहुँची। उसके पास मन मसोसकर रह जाने के सिवाय कोई विकल्प नही था।

इस धर्म विशेष के खिलाफ अनेक हिन्दू संगठन आदिवासी क्षेत्रों में काम कर रहे है। इन संगठन से जुड़े आदिवासी अपने सामाजिक कार्य और देव

काम में शामिल होते हैं, सहयोग करते है मगर उस तरह से उन उत्सव या कार्य को नही करते जिस तरह से आदिवासी समाज करता है। इनके करने के तरीके में आदिम समाज की मूल भावना एवं आदिवासी अवधारणा कहीं दिखलाई नहीं पड़ती। इन लोगों के तौर-तरीके, रहन-सहन, पहनावा इनकी आदिवासी समाज से अलग दिखने की प्रवृति को दर्शाता हैं। ये लोग आदिम समाज के देवी-देवताओं से अधिक हिन्दू देवों के प्रति आस्थावान होते हैं। इनके कर्मकाण्ड वैदिक रीति से संपन्न होते हैं। विवाह सामूहिक यज्ञ मंडप में करते हैं और हिन्दूओं की तरह मुण्डन जनेऊ आदि धारण करते हैं। इनमे एक बात अच्छी है कि ये इन संस्कारों के बाद गाँव में भोज देते हैं। इन सबके बावजूद गाँव में सामाजिकता का ह्रास होता है, सामुदायिक जीवन पद्धति नष्ट होती है, तथा आदिम संस्कृति की मूल भावना का लोप होता है।

इन सबके बीच एक वर्ग ऐसा भी है जो आदिम संस्कृति को बचाने के प्रयास में लगी हुई है। लगातार सामाजिक बैठकों में साथ मिलकर मनन-चिन्तन कर रहे हैं। अपने इस कार्य को मूर्त रूप देने के लिये गाँव-गाँव जा रहे हैं। इनके द्वारा किये जा रहे कार्यों का सकारात्मक परिणाम दिखलाई पड़ रहा है। ये सब जिला सामाजिक संगठन के पदाधिकारी हैं। इन्होंने सबसे पहले गाँवों में जाकर बचे-खुचे लोगो के मन में यह भावना जगाई कि हमारी संस्कृति खत्म हो रही है। इसे बचाने की जवाबदारी हम बचे हुये लोगों की है। अपनी बोली-भाषा में समझाई गई बात का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ा, सबने एक स्वर में पूछा "क्या करना पड़ेगा"?तब एक घोटुल जैसे संगठन बनाने में बल दिया गया और आज गाँव-गाँव में एक संगठन मौजूद है। हालाकि इस संगठन में दूसरे धर्म में गये लोगो को भी जोड़ने की बात थी, जिसे अस्वीकार कर दिया गया। इससे हुआ ये कि उन गाँवों की सामुदायिक जीवन की परिकल्पना साकार हो उठी और एक उमंग का माहौल बनने लगा।

अपनी सफलता से उत्साहित इस सामाजिक संगठन ने एक और प्रयोग किया सब गाँव के लोगों से इन्होने हर सप्ताह प्रति रविवार को गाँवों की गुड़ी (मंदिर) में सेवा करने का निवेदन किया। वैसे आदिवासी मंदिरों में सेवा या तो मंगलवार को या शुक्रवार को होता है। यहाँ इतवार रखने के पीछे उस दिन नारायणपुर का साप्ताहिक बाजार होने से सब उपलब्ध रहेगें यह सोच है।

यह भी पहले जैसा ही सफल रहा पहले ही गाँव में यह घोषणा कर दी गई थी कि सेवा में एक नारियल के साथ जो भी दूसरे धर्म में चले गये हैं। गुडी में देवता के समक्ष सिर झुकायेगा उसे आदिवासी समाज स्वीकार कर लेगा। इसमें समाज की यह धारणा थी कि जिस प्रकार अपने देव पर अविश्वास करके दूसरे देव को मानने लगे हो उसी प्रकार लौटकर हमारे देव के शरण में आओ। इसका और भी सुखद परिणाम हुआ और सप्ताह दो सप्ताह में लोग नारियल ले कर आने लगे आदिवासी समाज आश्चर्यचकित है। जो उन्हाने नहीं सोचा था। वह सब अपने आप हो रहा है। बिना प्रलोभन के बिना दवाव के ।

आदिवासी समाज आशान्वित है उसके समाज के दिन बहुत जल्दी बहुरेगें। एक बार फिर चान्दनी रात में मांदर की थाप में रिलो रोयो रिला की स्वर लहरी गुंजेगी गलबहियाँ डाले गाँव की तरूणाई रात को थका देने तक नृत्य करेगें । ऐसा होगा जरूर विश्वास रखें ।

विकास गढ़ता अबूझमाड़

बहुत लम्बे अरसे के बाद आखिरकार विकास की किरण ने इस बियावान बीहड़ में अपना दस्तक दे ही दिया। सन् १९७८ में अबूझमाड़ विकास प्राधिकरण के गठन के बाद ही इस समूचे क्षेत्र को मावोवाद ने अपने चपेट में ले लिया था, इसलिये यहाँ ८० के दशक में काम करना असम्भव हो गया था, एक समय तो ऐसा लग रहा था कि मावोवाद की इस शरण स्थली का विकास करना नामुमकिन है। जिला का गठन सन् २००७ ई. में किया गया, दो तहसील वाले नव गठीत जिला के समक्ष विकास सबसे बड़ी चुनौति थी। जिला मुख्यालय को ही विकास के लिये चुना गया, इस समय केवल तीन कि.मी. की परिधी में ही कार्य किया जा सकता था। सबसे बड़ी समस्या जिला कार्यालयों के लिये भवन, अधिकारियों, कर्मचारियों के लिये आवास और सुरक्षा बलें के लिये सुविधायुक्त जगह उपलब्ध कराने की थी। जिला अस्पताल के प्रथम माले से जिला कार्यालय का संचालन किया जाने लगा, इस समय आवासीय भवन और जिला कार्यालय निर्माण कार्य प्रगति पर था, शासन ने जिला पंचायत का भी गठन कर दिया जिसे कृषि कार्यालय से प्रारम्भ किया गया। अब विकास की बारी थी, जिला प्रशासन और पुलिस प्रशासन का समन्वय स्थापित हुआ, इसके साथ ही पुलिस प्रशासन ने हर १० कि.मी. में सुरक्षा बलों का केम्प लगाकर सुरक्षा देना प्रारम्भ किया।

जिला नारायणपुर विकास की करवट ले रहा था, किन्तु जो भी कार्य हो रहे थे, वे अधोसंरचना के कार्य थे, जो लोगों को नजर नहीं आ रहे थे। समय बितता जा रहा था, अबूझमाड़ विकास के लिये छटपटा रहा था। इधर मावोवादी भी कहर ढा रहे थे, सोनपुर, कोहकामेटा, कुतुल क्षेत्र से ग्रामीण पलायन कर नारायणपुर आ रहे थे, जिन्हें बसाने की चुनौति भी मुँह बायें खड़ी थी और पुलिस और जिला प्रशासन ने नारायणपुर में एक गाँव ही इन लोगों का बसा दिया। अभी तक सुरक्षा बलों के केम्प तक पक्का डामरीकृत सड़क का निर्माण किया जा चुका था। कुरूषनार तक सड़क बनने

की देरी थी, प्रशासन ने धूर नक्सली क्षेत्र बासिंग में सुरक्षा बल का केम्प की स्थापना किया और जहाँ से सबसे ज्यादा पलायन हुआ था, उसी क्षेत्र बासिंग में विकास मेला २०१५ का आयोजन किया गया। यह पहला अवसर था जब प्रशासन की पहुँच सीधे नक्सल प्रभावित क्षेत्र में हुई थी। इस आयोजन में जिला प्रशासन और पुलिस प्रशासन की दलीय भावना काम कर रही थी, जिला प्रमुख श्रीमान टामनसिंह सोनवानी के कुशल नेतृत्व में छोटे-बड़े कर्मचारियों में अभूतपूर्व उत्साह था और यह प्रयोग सफल रहा।

विकास मेला २०१५ के लिये जितना उत्साह अधिकारी कर्मचारी में था, उससे कहीं ज्यादा क्षेत्र की जनता उत्साहित थी। इस आयोजन से एक बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आयी थी कि अबूझमाड़ को मावोवाद नहीं विकास पसन्द है। मेले में उमड़ा अपार जन समूह इसकी बानगी थी। विकास मेला २०१५ की सफलता की गूँज सम्पूर्ण छत्तीसगढ़ में सुनाई दिया और मुख्यमंत्री जी ने कलक्ट्रेट कान्फ्रेंस में तत्कालिन कलेक्टर टामन सिंह सोनवानी और एस.पी अभिषेक मीणा को बधाई दी। माननीय मुख्यमंत्री डा. रमनसिंह जी का जिला नारायणपुर पसन्दीदा जिला बन गया था। बासिंग से ही उन्होने लोक सुराज अभियान की शुरूआत की। इसके बाद तो शासन ने भी जिले में होने वाले कामों को प्रोत्साहित करना प्रारम्भ किया, इससे उत्साहित जिला प्रशासन अबूझमाड़ ब्लॉक मुख्यालय में एक मॉट की स्थापना की जिसमें हर जरूरत का सामान एक छत के नीचे स्थानीय बेरोजगार बेचने लगे। इसके बाद जिला प्रशासन ने धूर नक्सली क्षेत्रों में जिला स्तरीय जन समस्या निवारण शिविर का आयोजन किया, जहाँ कभी प्रशासन तो क्या आम लोग भी जाने से कतराते थे। सोनपुर, कोहकामेटा, दण्डवन, छीनारी, करमरी, आकाबेड़ा सुलेंगा धौड़ाई धनोरा, ओरछा ये सब ऐस गाँव थे जहाँ प्रशासन ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और शोषित प्रताड़ित लोगों का विश्वास हासिल किया।

अब तो विकास कार्य जमीन में भी दिखने लगा था। विकास का सफर पक्की सड़क से जारी था, जिसकी कल्पना नहीं की जा रही थी वह मार्ग कुरूषनार से आगे कुन्दला से कोहका मेटा तक बारहमासी बनकर तैयार है। दूसरी ओर गढ़बेंगाल से धौड़ाई तक डामरीकृत और ओरछा तक पक्की सड़क बन गई है। आकाबेड़ा केम्प बनने के बाद कुतुल तक जाना

सुगम हो गया है। इन्हीं मार्गो से विकास अन्दरूनी क्षेत्रों में पहुँच रही है और अबूझमाड़ विकास की नई इबारत लिख रहा है।

सड़क, पुल-पुलियों और भवन निर्माण-:

जिला गठन के साथ ही समन्वित विकास के कार्य पग्रति पर है। इसके तहत लोक निर्माण विभाग द्वारा सड़क, भवन और पुल-पुलियों का निर्माण किया गया है। जिला कार्यालय भवन, जिला पंचायत भवन, १०२ नये आवासीस भवन, २२ नये छात्रावास भवन, एक अधिकारी ट्राजिट भवन, आई.टी.आई. भवन के साथ बालक और बालिका छात्रावास भवन, देवगाँव, हलामी मुंजमेटा तथा गुरिया में हाई स्कूल भवन का निर्माण, नारायणपुर जिला मुख्यालय में आदर्श बुनियादी बालक एवं कन्या आवासीय विद्यालय भवन, १०० सीटर कन्या आश्रम कन्हारगाँव में ५० सीटर छात्रावास, पालिटेक्निक कालेज एवं लाइलीहुड कालेज भवन का निर्माण, छोटेडोंगर, बिंजली, फरसगाँव, एड़का, महिमागवाड़ी, बाकुलबाही, तथा महावीर चौक में उच्चत्तर माध्यमिक शाला का निर्माण, इसके साथ नारायणपुर मुख्यालय में आडिटोरियम, मॉडल स्कूल, कोआर्डिनेशन सेन्टर १०० सीटर छात्रावास निर्माण का कार्य प्रगति पर हैं। पल्ली से ओरछा तक सड़क निर्माण प्रारम्भ किया गया है।

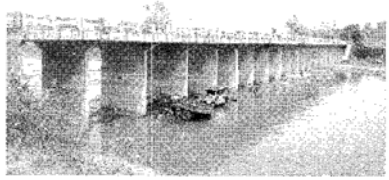

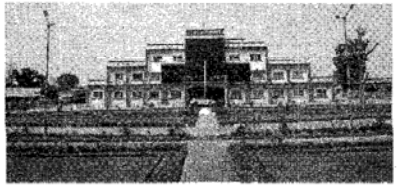

ईन्टीग्रेटेड काउन्सलिंग एण्ड टेस्टिंग सेन्टर तथा क्लीनिक की सुविधा उपलब्ध है। जिले में एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र एवं ८ स्वास्थ्य केन्द्र संचालित किये जा रहे हैं, अन्दरूनी ग्रामिण क्षेत्रों में ६४ उप स्वास्थ्य केन्द्र से चिकित्सा दी जा रही है। जिले में एक राष्ट्रीय मोवाईल यूनिट एवं चार १०८ से आपात कालीन चिकित्सा सुविधा दी जा रही है। विगत वर्षो में बहुउद्देशीय महिला स्वास्थ्यकर्ता प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना कर महिलाओं को प्रशिक्षण दिया जा रहा है और १२ वीं पास युवाओं को प्रशिक्षण देकर स्वास्थ्य साथी बनाकर अन्दरूनी गाँवों में प्राथमिक चिकित्सा उपलब्ध कराई जा रही है।

शिक्षा -:

जिला गठन के समय नारायणपुर जिले की साक्षरता का प्रतिशत १८ था, वहीं वर्तमान में साक्षरता प्रतिशत बढ़कर ४९.५९ हो गया है, जो शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धी है। बर्तमान में जिला नारायणपुर में उच्चशिक्षा के लिये एक महाविद्यालय तथा छात्रावास संचालित किया जा रहा है। जिले में २० हायर सेकन्ड्री स्कूल, १० हाई स्कूल, १३७ माध्यमिक शालायें, ४२८ प्राथमिक शालायें सहीत २ मॉडल स्कूल संचालित किया जा रहा है। शाला त्यागी बच्चों के लिये जिला मुख्यालय नारायणपुर में तथा ओरछा में ५००-५०० सीटर के दो पोटा केबिन संचालित किया जा रहा है। इसी तरह माध्यमिक एवं हाई स्कूल कक्षा की बालिकाओं के लिये २००-२०० सीटर के नारायणपुर और ओरछा में कस्तुरबा गांधी विद्यालय संचालित किया जा रहा है। सभी शालाओं में बालिकाओं के लिये शौचालय निर्माण किया गया है।

कृषि और वानिकी -:

जिला नारायणपुर आदिवासी बाहुल्य जिला है, यहाँ का मुख्य व्सवसाय कृषि उपज एवं वनोपज है परन्तु प्रगतिशील कास्तकार दलहन- तिलहन के अलावा सब्जी- भाजी उगा कर अच्छी कमाई कर रहे है। सिचाई नलकूप के माध्यम से खरीफ और रवि के उत्पादन रकबा में बढ़ोतरी हुई है। जिला गठन के बाद खरीफ फसल का रकबा बढ़कर जहाँ २४ हजार ३३२ हेक्टर हुआ, वहीं

सिचाई सुविधायें-:

जिला निर्माण के समय जिले की सिचाई का मात्र २ प्रतिशत ही था जो आज उल्लेखनीय प्रगति कर १७ प्रतिशत को पार कर गया है। आज की स्थिति में ६० ऐनीकट-स्टापडेम, सिचाई तालाब के साथ अन्य ५० जल सम्वर्धन संरचना निर्माण किया गया है। इनसे लगभग ४०६ हेक्टर भूमि सिंचित होती है। खड़ीबहार, कांकेरबेड़ा, महिमागवाड़ी में स्टापडेम का निर्माण। बोरपाल मरोलीपारा, कुरूषनार, तारागाँव, ब्रहेबेड़ा में निर्मित एनीकट से लगभग ४०५ हेक्टर भूमि को सिचाई सुविधा उपलब्ध कराई गई है। ग्राम कोंगेंरा तथा गुदाड़ी जलाशय के निर्माण से सिचाई सुविधा में वृद्धि हुई है। बेनूर, केवंरामुंडा, बाकुलबाही सिचाई तालाबों का तथा छेरीबेड़ा स्टापडेम का पुनर्निर्माण कराया गया है, जिससे जिले में खरीफ और रवि फसल के साथ दलहन-तिलहन के पैदावार में वृद्धि हुई है।

शुद्ध पेयजल योजना-:

जिले के अन्दरूनी क्षेत्र में जीवन की मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति करना चुनौतिपूर्ण कार्य था, जिसे जिला गठन के पूर्व से प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा था। जिला गठन के पूर्व सम्पूर्ण जिले में १९९८ नलकूप का खनन किया जाकर पेयजल उपलब्ध कराया जा रहा था। जिला गठन के बाद इसमें इजाफा कर ५१४ नलकूप का और खनन किया गया। पूर्व में दो नलजल प्रदाय योजना के तहत पेयजल उपलब्ण कराया जा रहा था, जो आज की स्थिति में बढ़कर ९ हो गया है। जहाँ पूर्व में ११३ स्कूल और ६५ आंगन बाड़ी केन्द्रों में नलकूप स्थापित किया गया था, जो आज बढ़कर ५१४ स्कूल और ३०३ आंगनबाड़ी केन्द्रों नलकूप स्थापित किये गये हैं। विधुत विहीन गाँवों में १८८ सोलर पम्प से पेलजल उपलब्ध कराया जा रहा है, वहीं ३४ गाँवों में सोलर नल-जल योजना के तहत शुद्ध पेयजल दिया जा रहा है।

स्वास्थ्य सेवायें-:

जिला नारायणपुर में एक जिला अस्पताल संचालित है, जिसमें युबोर्न युटिलाईजेशन यूनिट, न्यू बर्न केयर कार्नर, सोनोग्राफी, ई,सी,जी, एक्स-रे,

रवि फसल का रकबा तीन हजार हेक्टर पहुँच गया है। जिले के किसान उन्नत बीज, खाद का उपयोग कर आधुनिक कृषि कर लाभान्वित हो रहे हैं। सिचाई कूप खनन के लिये ६३ किसानों को तथा डिजल व विधुत सिचाई पम्प हेतू १४८३ किसानों को आर्थिक सहायता देकर स्वालम्बी बनाया गया है। जिला नारायणपुर में कृषि विज्ञान केन्द्र की स्थापना की गई है, इसके माध्यम से किसानों प्रशिक्षण, प्रदर्शन देकर आधुनिक तकनिक की कृषि को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिसका सकारात्मक परिणाम मिल रहा है। कृषि विज्ञान केन्द्र द्वारा कृषि के अनुशांगिक धंधों को अपनाने के लिये कौशल विकास का प्रशिक्षण दिया जा रहा है, जिसमें मशरूम उत्पादन, टिखुर उत्पादन, बीज उत्पादन कुकुटपालन, बकरी पालन, साग-सब्जी उत्पादन एवं प्रसंस्करण से किसान लाभान्वित हो रहे हैं।

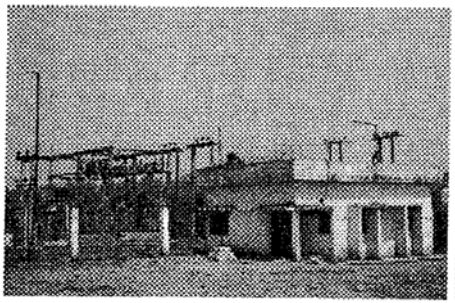

विधुतीकरण और अक्षय उर्जा-:

ग्रामीण विधुतीकरण योजना के अन्तर्गत अभी तक १७५ गाँवों पहुँचाई गई है। निर्बाध रूप से विधुत आपूर्ति हेतू नारायणपुर से अन्तागढ़ विधुत लाईन पूर्ण हो चुका है। इसी तरह बेनूर और छोटेडोंगर में दो विधुत उप-केन्द्र बनाकर ग्रामीण क्षेत्र में विधुत पहुँचाई जा रही है। जिला गठन के पूर्व ३१३ विधुत वितरण ट्रांसफार्मर थे जो बर्तमान में ६८७ हो गये हैं। इसी तरह सौर उर्जा का संयंत्र लगाकर विधुत विहीन गाँव को रौशन किया जा रहा है।

उपरोक्त उपलब्धी २०१४ से २०१६ तक केवल तीन वर्षे की है, जबसे वर्तमान जिलाध्यक्ष श्रीमान टामनसिंह सोनवानी जी पदस्थ हुये हैं। आज विषम परिस्थिति से उबर कर अबूझमाड़ विकास गढ़ रहा है, उच्च शिक्षा के लिये कोचिंग सेन्टर स्थापित कर बेरोजगार नवयुवकों को आगे पढ़ने एवं नौकरी के लिये प्रतियोगिता परिक्षा के लिये तैयार किया जा रहा है। रोजगार करने के इच्छुक नवजवानों को कौशल विकास कार्यक्रम के तहत प्रशिक्षण दिया जा रहा है। अब वह दिन दूर नहीं है, जब अबूझमाड़ भी अन्य विकसीत जिलों के साथ कदम ताल करने लगेगा। थोड़ा इन्तजार किजिये वह दिन आयेगा जरूर।

शिव कुमार पाण्डेय

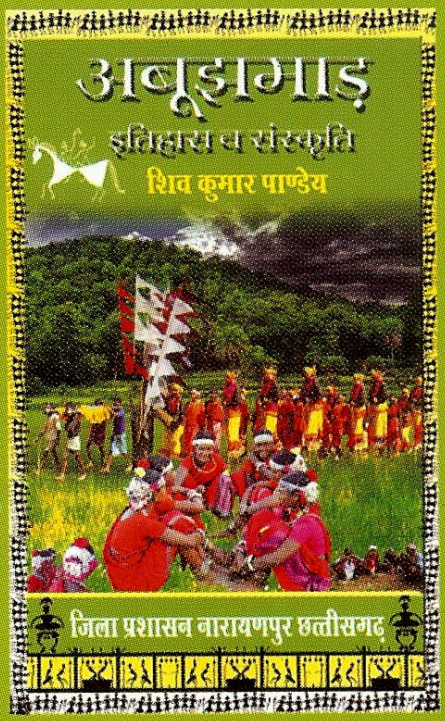

स्व.सत्य नारायण पाण्डेय एवं स्व.श्रीमती यशोदा देवी पाण्डेय के घर 20 अप्रेल 1959 को जन्म हुआ,बचपन से मेधावी छात्र रहे, कला में स्नातक करने करनें के बाद विधि स्नातक में उपाधि प्राप्त किया साहित्य के प्रति इनका जुनून अभूतपूर्व है और उसी ललक ने उन्हें लेखन की प्रेरणा दी लेखन के साथ रंगमंच के मंजे अभिनेता है !

हल्बी व हिन्दी मे कविता,कहानी लेखन भी किया,देश के नामी पत्र-पत्रिकाओं में इनकी रचनायें प्रकाशित होती रही है !

इनके लेखन में 'बाल साहित्य का भारत पुस्तक न्यास नई दिल्ली से प्रकाशन' एक अभूतपूर्वक कार्य है!

'अबुझमाड़ : इतिहास व संस्कृति', इनकी पहली प्रकाशित कृति है!

नारायणपुर मे आज शिवकुमार अधिवक्ता के पेशे मे कार्यरत है !

Email- shivkumarpandey69@gmail.com
पता- शिव कुमार पाण्डेय मेन रोड नारायणपुर
मोबाईल नं.9425260997